संवर्ग – 1

इकाई – 1

पानीपत का तृतीय युद्ध : कारण एवं परिणाम

1.0 पानीपत युद्ध की पृष्ठभूमि
1.1 पानीपत के तीसरे युद्ध के कारण
1.1.1 भारत में राजनीतिक शून्यता
1.1.2 दिल्ली पर प्रभाव जमाने हेतु संघर्ष
1.1.3 अब्दाली का भारत की राजनीति में हस्तक्षेप
1.1.4 अब्दाली की सैन्य सफलताएं
1.1.5 उत्तर भारत की अस्थिर राजनीति
1.1.6 पंजाब में अफगान–मराठा संघर्ष
1.2 पानीपत के युद्ध की घटनाएं
1.3 पानीपत में मराठों की पराजय के कारण
1.3.1 प्रतिद्वन्दी सेनानायक
1.3.1 प्रतिद्वन्दी सेनानायक
1.3.2 प्रतिद्वन्दी नायक
1.3.3 प्रतिद्वन्दी सेनायें
1.3.4 सैनिक शिविरों की स्थिति
1.3.5 खाद्यान्न व्यवस्था
1.3.6 तोपखाना
1.3.7 गम्भीर भूलें
1.3.8 कूटनीतिक असफलता
1.4 बोध प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1739 में नादिरशाह के आक्रमण से मुगल सत्ता इतनी अशक्त हो चुकी थी कि अब उसके लिए अन्य किसी आक्रामक शक्ति पर आश्रित होना आवश्यक हो गया। नादिरशाह के अत्याचारों से परेशान ईरान के लोगों ने उसकी हत्या कर दी और अहमदशाह अब्दाली को अपना शासक बनाया। अब्दाली भी नादिर की तरह आक्रामक एवं साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का था। 27 अप्रैल, 1748 को मुगल बादशाह मुहम्मदशाह ने अन्तिम सांस ली। ताराचन्द ने जिक्र किया है कि नया सम्राट् एक अच्छी प्रकृति का बुद्धू था, जिसने युद्ध एवं प्रशासन की कोई शिक्षा नहीं ली थी। अतः राजकीय सत्ता उसके वजीर मन्सूर अली खानसफदरजंग के हाथों में आ गई। सफदरजंग अपनी शक्ति का उपयोग रोहिल्लों (रूहेलखण्ड शासक) की शक्ति को नष्ट करने में करना चाहता था, लेकिन स्वयं सफदरजंग ने रोहिल्लों का दमन करने में अपने को असक्षम पाया और उसने सिन्धिया व होल्कर की सहायता की याचना की। इनकी संयुक्त सेनाओं ने 19 अप्रैल, 1751 में हुसैनपुर के युद्ध में रोहिल्लों को परास्त किया। रोहिल्लों ने अहमदशाह अब्दाली को अपना रक्षक माना। जी.एस. सरदेसाई के अनुसार – 'रोहिल्लों ने वजीर की शक्ति को समाप्त करने के लिए उसे (अहमदशाह) आमन्त्रित किया।'

1.0 पानीपत युद्ध की पृष्ठभूमि :

नादिर की मृत्यु के पश्चात् अहमदशाह ने पंजाब पर अपने अधिकार की मांग की। लाहौर एवं मुल्तान के सूबेदार जकरिया खाँ के दोनों पुत्रों के परस्पर युद्ध व छोटे भाई शाहनबाज खाँ के विद्रोही कारनामों ने अहमदशाह के भारत अभियान की पृष्ठभूमि तैयार की। लाहौर पर अधिकार कर वह सर हिन्द की और अग्रसर हुआ और मानपुर मे एकत्र शहजादा अहमद की शाही सेनाओं को घेर लिया। इस युद्ध में मुगल सेना ने अब्दाली की टुकड़ियों के पैर उखाड़ने की कोशिश की स्थिति की गंभीरता को समझ कर अब्दाली वापस लौट गया। लेकिन वह सरहिन्द मे अपनी पराजय को नही भूल पाया और भारत पर आक्रमण के लिए बहाने की तलाश में था।

अहमदशाह ने सन् 1752 में दूसरा आक्रमण किया और मुल्तान व लाहौर पर अधिकार जमाया। अब्दाली की पंजाब विजय से बादशाह का सर्तक होना स्वाभाविक था। बादशाह के नये वजीर गाजीउद्दीन इमाद–उल–मुल्क ने मुगल सत्ता की सुरक्षा हेतु मराठा संरक्षण को स्वीकार किया। 12 अप्रैल, 1752 को सिन्धियाँ एवं होल्कर के साथ सम्पन्न हुए समझौते के अनुसार

1. पेशवा ने बाह्य व आन्तरिक शत्रुओं से मुगल साम्राज्य की रक्षा का आश्वासन दिया।
2. मुगल सम्राट ने मराठों को इस रक्षा के बदले 50 लाख रूपये देने का वचन दिया।
3. पेशवा को इस समझौते के तहत पंजाब, सिंध व दोआब से चौथ वसूल करने का अधिकार मिला।
4. पेशवा को आगरा व अजमेर की सूबेदारी प्रदान की गई।
5 पेशवा के स्वयं मुगलों की सुरक्षार्थ उपस्थित न होने पर सरदारों को सहायतार्थ भेजे जाने का आश्वासन दिया। 23 अप्रैल, 1752 को मुगल बादशाह ने इसकी पुष्टि की। इस समझौते ने अफगानों एवं पेशवा के बीच संघर्ष को आवश्यक बना दिया था, जिसका निर्णय पानीपत युद्ध में हुआ।

छत्रपतिशाहू के काल से ही मराठा–मुगल सहयोग मराठा नीति का स्वीकृत सिद्धान्त बन चुका था। मराठे उत्तर की और अपनी प्रसारात्मक नीति की सफलता हेतु मुगल सत्ता के उपयोग से वाकिफ हों जी.एस.सरदेसाई ने मराठों की नीति को इन शब्दों में व्यक्त किया है, 'पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य को पुनर्जीवित करना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए यदि हम आक्रामक तरीका अपनाते है तो इससे सभी पड़ौसियों से हमारी शत्रुता हो जाएगी जिसके फलस्वरूप हम चारो और से अनावश्यक रूप से संकटग्रस्त हो जायेंगे। अतः वर्तमान परिस्थिति में हमारे लिए सर्वाधिक बुद्धिमानी का मार्ग यही है कि हम पूरी तौर से प्रचलित शासन व्यवस्था को सहयोग दें और अपने लिए राज्य के अमीर–उल–उमरा के रूप में केवल प्रशासनिक व्यवस्था का दायित्व ही प्राप्त करें।' दूसरे शब्दों में मराठा सत्ता भी मुगलों का सहयोग करने को तत्पर थी। उत्तर में अपने प्रभाव–क्षेत्र की वृद्धि हेतु मराठे मुगलों को ढाल के रूप में उपयोग करना चाहते थे, इसी क्रम में अब्दाली के आक्रमण का मुकाबला करना उनका उद्देश्य बना।

पानीपत युद्ध के चतुर्थ कारण में पंजाब क्षेत्र की समस्या को शामिल करना होगा। पंजाब के सूबेदार मीरमन्नू की 3 नवम्बर, 1753 को निधन होने से, वहां अव्यवस्था फैल गई। इन परिस्थितियों में वजीर शहाबुद्दीन ने पंजाब पर कब्जा करने का निश्चय किया। ग्रांटडफ ने इस बात का संकेत किया है कि मीरमन्नू की एक लड़की से शहाबुद्दीन की मंगनी हुई थी। दोआब के सूबेदार अदीना बेग को साथ लेकर फरवरी, 1755 में शहाबुद्दीन पंजाब गया एवं मृत सूबेदार की पत्नी मुगलानी बेगम व अल्पायु पुत्री उम्दा बेगम को पकड़ लिया तथा अदीनाबेग को पंजाब में नियुक्त कर, दिल्ली आ गया। सरदेसाई जानकारी देते है कि मुगलानी बेगम ने दिल्ली स्थित मुगल हरम की मलिक जमानी तथा नजीबुद्दौला के साथ मिलकर फरवरी, 1756 में पत्र द्वारा अहमदशाह अब्दाली से सहायता की याचना की।

सम्भवतः युद्ध को टालने की दृष्टि से अब्दाली ने अक्टूबर, 1756 में अपने दूत कलन्दर खाँ को मामले को सुलझाने हेतु भेजा। किन्तु मुगल वजीर गाजीउद्दीन ने इस और ध्यान नहीं दिया। परिणाम यह हुआ कि अब्दाली ने लाहौर पर अधिकार कर लिया एवं जनवरी, 1757 में दिल्ली एवं मथुरा में (सैनिकों ने) खूब लूट–पाट कर अत्याचार किये। सूचना मिलने पर राघोबा (रघुनाथ राव) ने पूणे से उत्तर की और प्रस्थान किया। जब तक राघोबा उत्तर में पहुँचा अब्दाली अपने पुत्र तैमूरशाह को पंजाब का गवर्नर नियुक्त कर काबुल लौट गया। मार्च से जुलाई 1758 के बीच मराठा सेना ने सरहिन्द लाहौर एवं अटक पर अधिकार कर लिया। तैमूरशाह भागने में सफल हुआ और नजीबुद्दौला जिसे राघोबा एवं मल्हारराव ने बंदी बना लिया था, किसी तरह छूकर अब्दाली से जा मिले।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अहमदशाह ने मराठों के विरूद्ध प्रस्थान किया और 10 जनवरी, 1760 दत्ता जी को हराकर दिल्ली पर कब्जा कर लिया। दत्ता जी मृत्यु एवं दिल्ली बादशाह पर आये खतरे को देखकर पेशवा ने अपने चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ एवं इब्राहिम को तोपखाने के साथ 14 मार्च, 1760 को उत्तर की और भेजा। पानीपत युद्ध के इतिहासकार शेजवाल्कर टी.एस. भारत भारतीयों के लिए हो तथा भारतीयों द्वारा शासित हो' के सिद्धान्त को लेकर लड़ाई हेतु गये। बादशाह से 1752 मे हुए समझौते के निर्वहन हेतु भी उन्हें लड़ना था। लेकिन उनका उद्देश्य भौतिक उपलब्धि प्राप्त करना नहीं था। कई अन्य इतिहासकार शेजवाल्कर के मत को अधिक युक्ति संगत नहीं मानते।

भाऊ दिल्ली के निकट कुंजपुरा में 19 अक्टूबर को पहुंच गया और इस पर आधिपत्य कर लिया। अब्दाली कुंजपुरा की रक्षा नहीं कर पाया। शेजवाल्कर (पानीपत, 1761) के अनुसार मराठे अपने आवश्यकताओं की काफी पूर्ति कर पाये तथापि उन्हें भरतपुर शासक सूरजमल जाट का समर्थन नहीं मिला जबकि अवध का नवाब शुजाउद्दौला अब्दाली के खेमे में जा पहुँचा, उसने चारों और से मराठों की रसद बंद करवा दी। इसे मराठों की विपत्ति का पूर्व संकेत ही कहा जायेगा कि अन्तिम व निर्णयक युद्ध होने से पूर्व ही 7 दिसम्बर, 1760 को बलवन्त राव की मृत्यु हो गई। 14 जनवरी, 1761 को प्रातः 9 बजे युद्ध प्रारम्भ हुआ। अपने आक्रमण में मराठों ने घमासान युद्ध किया और अफगान सेना को पर्याप्त हानि पहुंचाई। यकायक तीन बजे स्थिति बिगड़ने लगी और चार बजे स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई। मल्हारराव होल्कर, गायकवाड़, विट्ठल शिवदेव आदि कुछ सैनिकों के साथ बच निकले। इब्राहिम गार्दी व जनकोजी को कैद कर लिया गया और उनका वध कर दिया गया। विश्वासराव व सदाशिवराव भाऊ मारे गये और मराठों को पराजय देखनी पड़ी।

1.1 पानीपत के तीसरे युद्ध के कारण :

पानीपत के युद्ध की घटनाओं का वर्णन करने से पूर्व संक्षेप में उनकारणों का वर्णन करना समीचीन होगा, जिनके फलस्वरूप पानीपत का युद्ध हुआ था –

1.1.1 भारत में राजनीतिक शून्यता :

एक लम्बे समय तक, दिल्ली के शासक भारत की राजनीति पर छाये रहे। दिल्ली के बादशाह की प्रभुता, भारत की अन्य शक्तियां स्वीकार करती थी। जब तक केन्द्रीय सत्ता शक्तिशाली रही, भारत के उत्तर–पश्चिम से आक्रमणों का भय नहीं रहा। सीमा सुरक्षा की अग्रगामी नीति अपना कर मुगलों ने काबुल तक अपना अधिकार बनाये रखा। किन्तु औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल सत्ता कमजोर हो गई और शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता के अभाव में सारा देश एक ऐसा अजायबघर बन गया जिसके सभी पिंजरों के द्वार खेल दिये हो। अतः देश मं रजनीतिक शून्यता दिखाई देने लगी। राजनति का यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि ऐसी शून्यता भरने का अन्य शक्तियां प्रयास करती है। 18वी शताब्दी के मध्य में दो शक्तियां ने इस शून्यता को भरने तथा अपना वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास किया। ये दो शक्तियां थीं – मराठे और अब्दाली।

1.1.2 दिल्ली पर प्रभाव जमाने हेतु संघर्ष :

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल सम्राट शक्तिहीन अवश्य हो गया था, किन्तु उसकी प्रभुता को वैधानिक तौर पर सभी शक्तियां मुगल सम्राट पर अपना प्रभाव बनाये रखना चाहती थी, ताकि मुगल सम्राट पर अपने प्रभाव का उपयेग अपने हित में कर सकें। 1749 ई. से वजीर तथा मीर बख्शी की नियुक्तियों में हैदराबाद का निजाम, अवध के नवाब, मराठे तथा अब्दाली रूचि लेने लगे। 1749 ई. में अवध का नवाब सफदरजंग वजीर था। जब अब्दाली ने उसे हटाकर निजाम के पुत्र नासिकजंग को वजीर बनाना चाहा तो सफदरजंग ने मराठों से सहयता मांगी। लेकिन 1753 ई. में जब मुगल सम्राट और वजीर सफदरजंग के बीच वैमनस्य उत्पन्न हुआ तब मराठों ने सफदरजंग के विरोधी गुट की सहायता की और उसे अपदस्थ करवाकर इन्तिजामउद्दौला को वजीर बनवाया। तत्पश्चात् निजाम का पुनः गाजीउद्दीन मराठों के समर्थन से वजीर बन गया। 1755 ई. में अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया और वापिस लौटते समय नजीब खाँ को अपदस्थ कर अहमदशाह बंगश को मीर बख्शी नियुक्त कर दिया। इन घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है। कि मराठों ने दिल्ली दरबार में अपना प्रभाव बनाये रखने के लिए अब्दाली का विरोध किया, क्योंकि वे मुगल सम्राट पर अब्दाली का प्रभाव सहन करने को तैयार नहीं थे।

1.1.3 अब्दाली का भारत की राजनीति में हस्तक्षेप :

1745 ई. से ही अब्दाली भारत की राजनीति में हस्तक्षेप कर प्रबल होने का प्रयास करने लगा था। 1752 ई. में उसने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मुइन–उल–मुल्क को पंजाब का सूबेदार नियुक्त किया। 1756 ई. में उसने दिल्ली तक धावा मारा और मथुरा व वन्दावन को बुरी तरह लूटा। लौटते समय वह नजीब खाँ को मीर बख्शी व अपने पुत्र तैमूरशाह को पंजाब का सूबेदार नियुक्त कर गया। पंजाब पर उसका पहले ही अधिकार था, अब उसने रोहिल्लों पर भी अपना प्रभाव स्थापित किया। यद्यपि रोहिल्ला सरदार नजीब खाँ और अवध का नवाब सफदरजंग एक–दूसरे के शत्रु थे, किन्तु अब्दाली ने अपनी कूटनीति से नकेवल नजीब खाँ को अपनी और मिलाया, बल्कि अवध के नवाब सफदरजंग को भी अपनी और मिला लिया। मराठे, अब्दाली की प्रगति को रोकना चाहते थे, अतः दोनों में युद्ध अवश्यम्भावी था। मराठा इतिहासकार टी.एस. शेजवलकर का मत है कि पानीपत के इस युद्ध का प्रमुख कारण यह था कि मराठे इस विदेशी को भारत से बाहर कर देना चाहते थे।

1.1.4 अब्दाली की सैन्य सफलताएं :

1752 ई. से 1757 ई. के बीच अब्दाली को लगातार सैन्य सफलताएं मिलती गई। अब्दाली से बढ़ती हुई शक्ति से अन्य शक्तियां अत्यधिक प्रभावित हुई और यह समझा जाने लगा कि अब्दाली की सेनाएं अजेय है। उत्तरी भारत की किसी राज्य को यह विश्वास नहीं रहा कि मराठों की सेना अब्दाली की सेना के विरूद्ध सफल हो सकती है। यही कारण है कि किसी भी प्रमुख भारतीय राज्य ने पानीपत के युद्ध में मराठों का साथ नहीं दिया। वस्तुतः इस समय तक मराठा शक्ति केवल लूटमार करने वाली शक्ति बन चुकी थी और उनकी इस प्रवृत्ति के कारण राजपूत, जाट, रूहेले, अवध के नवाब आदि मराठों से नाराज हो चुके थे। एसी परिस्थितियों में मराठों का मनोबल गिरा। इसके विपरीत अब्दाली की सैन्य सफलताओं के कारण अफगान सेना का सदा मनोबल ऊँचा रहा।

1.1.5 उत्तर भारत की अस्थिर राजनीति :

उत्तर भारत की अस्थिर राजनीति के कारण कोई भी पक्ष यह अनुमान नहीं लगा सका कि कौनसी शक्तियां किसका साथ देगी। अगस्त, 1760 ई. में अब्दाली और मराठों के बीच कूटनीतिज्ञ युद्ध आरम्भ हुआ जिसमें दोनों पक्षों स्थानीय शक्तियों को अपने पक्ष में करने का का प्रयास किया। अब्दाली ने घोषणा की उसका उद्देश्य भारत में रहने का नहीं, बल्कि उत्तर भारत को मराठों के प्रभूत्व से मुक्त कराकर मुगल बादशाह शाहआलम को, जो इस समय अवध में था, दिल्ली के सिंहासन पर बैठाने का है। इसके विपरीत मराठा सैना का नेतृत्व करने वाले सदाशिवराव भाव ने यह प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि यह युद्ध भारतीयों का विदेशियों के विरूद्ध है। भाव की इस घोषणा से मुसलमानों का सहयोग प्राप्त नहीं हो सका। नजीब खाँ तो मराठों का कट्टर शत्रु था ही, लेकिन नजीब खाँ और अवध के नवाब सुजाउद्दौला के बीच शत्रुता थी और यह आशा की जाती थी कि वो दोनों एक पक्ष की और से युद्ध नहीं करेंगे। किन्तु भाव के प्रचार से सुजाउद्दौला भी अब्दाली के पक्ष में चला गया। इससे अब्दाली का हौसला बढ़ गया।

1.1.6 पंजाब में अफगान–मराठा संघर्ष :

युद्ध की परिस्थितियों का वर्णन करते समय यह बताया जा चुका है कि मुगल सम्राट ने मराठों को पंजाब से चौथ वसूल करने का अधिकार दे दिया था। किन्तु इसके बाद अब्दाली ने पंजाब पर अधिकार करके अपने पुत्र तैमूरशाह को वहां का शूबेदार नियुक्त कर दिया। 1758 ई. में मराठों ने तैमूरशाह को वहां से भागा दिया। यह अब्दाली को प्रत्यक्ष चुनौती थी। अतः अफगान सेनाओं ने नवम्बर, 1759 में पंजाब पर पुनः आक्रमण कर मराठों को पीछे धकेल दिया। इस समय पेशवा, पंजाब पर अब्दाली के अधिकार को स्वीकार करके कोई कूटनीतिज्ञ समझौता कर सकता था। किन्तु ऐसा करने से मराठों के प्रभूत्व एवं प्रतिष्ठा को धक्का लग सकता था। अतः पेशवा ने सदाशिवराव भाव के नेतृत्व में एक सेना उत्तर भारत की और भेजी। ऐसी परिस्थितियों में मराठों व अब्दाली के बीच संघर्ष अवश्यम्भावी हो गया।

मराठों द्वारा पंजाब की विजय और उस प्रान्त से अब्दाली के अधिकारियों को निष्काषित किये जाने पर अहमदशाह आग–बबूला हो गया। उसने पुनः आक्रमण की तैयारियां शुरू कर दी। उधर पेशवा ने उत्तर भारत की व्यवस्था को ठीक करने का दायित्व सिंधिया परिवार को सौपा और मलहारराव होलकर को सिंधिया की सहायता करने को कहा गया। परन्तु न जाने किस कारण मल्हारराव होल्कर ने पेशवा के आदेशों का पालन नहीं किया और वह दत्ताजी सिंधिया की पराजय तथा मृत्यु के बाद ही दिल्ली गया। दत्ताजी सिंधिया ने दिल्ली पहुंचने के बाद नजीबउद्दौला को पकड़ने का प्रयास किया। नजीब ने पुनः अब्दाली से सहायता की मांग की। अब्दाली ने पेशावर में डेरा लगाया और जहान खाँ को लाहौर पर अधिकार जमाने के लिए भेजा। साबाजी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सिन्धिया ने उसे परास्त करके वापिस खदेड़ दिया। इसी समय 30 नवम्बर, 1759 ई. को वजीर गाजीउद्दीन ने सम्राट आलमगीर द्वितीय एवं भूतपूर्व वजीर इंतिजामउद्दौला तथा अन्य मुगल अमीरों का वध करा दिया, जिसे अब्दाली और भी क्रूद हो उठा। वह पंजाब की तरफ बढ़ा। उसके आगमन का समाचार सुनकर दत्ताजी ने नजीब का पीछा छोड़कर अब्दाली की तरफ प्रयाण किया। परन्तु अब्दाली दत्ताजी को चकमा देकर दिल्ली पहुंच गया। नजीब भी अपनी सैना सहित अब्दाली से जा मिला। जनवरी, 1760 ई. में बराली घाट के युद्ध में दत्ताजी सिंधिया परास्त हुआ और मारा गया। वजीर गाजीउद्दीन सूरजमल जाट की शरण में चला गया। अब्दाली ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। नजीब के विशेष अनुरोध पर अब्दाली ने कुछ समय और भारत में रूहना स्वीकार कर लिया। दत्ताजी की मृत्यु के बाद मल्हारराव होल्कार ने दिल्ली की तरफ प्रस्थान किया, परन्तु उसे अफगानों के हाथों बुरी तरह परास्त होकर राजस्थान की और भागना पड़ा।

अब्दाली की हाथों मराठों की दुर्दशा से पेशवा को बहुत अधिक दुःख हुआ और उसने अपने चचेरे भाई सदाशिवराव भाउ को एक विशाल सेना के साथ दिल्ली अभियान के लिए भेजा। इस अभियान का औपचारिक नेतृत्व पेशवा के बड़े लड़के विश्वासराव को सौपा गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सदाशिवराव एक योग्य एवं पराक्रमी सैनिक था। परन्तु उसमें दम्भ की मात्रा अधिक थी और कूटनीति का पर्याप्त ज्ञान न था। अब्दाली ने घोषित किया कि वह दिल्ली के मुस्लिम राज्यों को दक्षिण के मराठों की लूटमार से बचाने के लिए भारत में रूका हुआ है। इसके विपरीत सदाशिवराव ने विदेशियों को भारत से खदड़ने में सभी से सहयेाग की मांग की। परन्तु मराठों की लूटमार तथा बलात चौथ वसूली ने उत्तरी भारत की सभी शक्तियों को मराठों का शत्रु बना दिया था। सूरजमल जाट को छोड़कर सभी की सहानुभूति अब्दाली के साथ थी। अब्दाली और नजीब की कूटनीति के कारण भारत के अधिकांश मुस्लिम शासक अब्दाली के शिविर में उपस्थित हो गये। अवध का सुजाउद्दौला भी अब्दाली के पक्ष में चला गया। शुरू में केवल सुरजमल जाट ने मराठों को साथ दिया परन्तु पानीपत के युद्ध के पूर्व ही मराठों का साथ छोड़कर चला गया।

7 मार्च, 1960 सदाशिवराव दक्षिण से चला और अगस्त, 1760 ई. में उसने अब्दाली के अधिकारियों से दिल्ली छीन ली। अगस्त से अक्टूम्बर तक का समय भाव ने व्यर्थ ही खो दिया। इस बीच अब्दाली ने मराठों से सन्धि वार्ता करनी चाही। परन्तु नजीब खाँ ने रूकावट पैदा कर दी। इसके बाद भाउ दिल्ली के निकट अफगानों के प्रमुख केन्द्र कुंजपूरा पर अधिकार कर लिया। यहां से प्राप्त सामग्री से मराठों की स्थिति काफी सुधर गई। अब्दाली के लिए यह घातक प्रहार था उसने यमुना को पार कर मराठों के पीछे से आक्रमण करने की योजना बनाई और सेना सहित पानीपत जा पहुंचा। सदाशिवराव को इसकी सूचना मिल गई और वह भी सेना सहित पानीपत जा पहुंचा। नवम्बर, 1960 ई. में दोनों सेनाएं एक दूसरे के सामने हो गई। परन्तु दोनों में अन्तिम निर्णायक युद्ध 14 जनवरी, 1761 के दिन लड़ा गया।

1.2 पानीपत के युद्ध की घटनाएं :

नवम्बर, 1759 ई. में अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब के तत्कालीन मराठा शासक साबाजी सिन्धिया को पराजित कर, पंजाब पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह तेजी से दिल्ली की और बढ़ा। दिल्ली से 10 मील दूर लौनी के निकट जनवरी, 1760 में दत्ताजी सिन्धिया का अब्दाली से आमना–सामना हुआ। दत्ताजी मारा गया, मराठों की हार हुई और अब्दाली ने आगे बढ़ कर, दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

इन खबरों से पेशवा बालाजी बाजीराव चौकन्ना हो गया। उससे अपने चचरे भाई सदाशिवराव भाऊ के नेतृत्व में एक विशाल मराठा सेना भेजी जिसने अस्त, 1760 ई. में उस समय दिल्ली पर अपना अधिकार जमा लिया जब अब्दाली वहां से जा चुका था। अब्दाली और सदाशिवराव ने निर्णयक युद्ध से पूर्व अपने–अपने पक्ष को मजबूत करने के लिए उत्तर भारत के विभिन्न सरदारों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। युद्ध की घड़ी निकट आती गई क्योंकि दोनों ही पक्षों के पास रसद की कमी होने लगी। अन्त में, युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर मराठे नतम्बर, 1760 ई. में ही दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हो गई, किन्तु युद्ध 14 जनवरी 1761 ई. को हुआ।एक अनुमान के अनुसार मराठा सेना में 55,000 घुड़सवार, 15,000 पैदल और विभिन्न किस्मों की दो सौ तोपें थी। दूसरी और अफगान सेना में 41,8.. घुडवार, 30,000 पैदल और 70 तथा 80 के बीच तोपें थी। इस प्रकार दोनों सेनाएं संख्या में लगभग बराबर थी। सरदेसाई ने लिखा है कि हाल में हुए अनुसन्धानों के अनुसार उस युद्ध में वास्तविक सैन्य संख्या 60 हजार मुसलमान तथा 45 हजार मराठे थे। रण–कौशल में अब्दाली भाऊ से श्रेष्ठ था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अब्दाली ने मराठों की खाद्य पंक्ति काट दी, अतः मराठों ने 14 जनवरी को प्रातःकाल अफगान फौजों पर भीषण आक्रमण कर दिया। डॉ. सेन के अनुसार, "मराठे अश्वसेना और तोपखाने की दृष्टि से श्रेष्ठ थे, शत्रु की पैदल सेना श्रेष्ठ थी और उसे उत्तम सेनानायकत्व का भी लाभ प्राप्त था।" दोनों पक्षों में 9 बजे से 4 बजे तक घमासान युद्ध हुआ। 2 बजे तक मराठों का पलड़ा भारी रहा, पर अन्त में मराठों की निर्णायक पराजय हुई। पेशवा का बड़ा लड़का विश्वासराव, सेनापति सदाशिवराव, तुकोजी सिन्धिया आदि युद्ध में काम आए। अफगानों ने मराठों का भीषण नरसंहार किया तो दूसरे दिन तक भी होता रहा। सम्पूर्ण महाराष्ट्र में सम्भवतः एक भी परिवार ऐसा नहीं था जिसने अपने किसी न किसी व्यक्ति की मृत्यु पर शोक न मनाया हो। युद्ध में लगभग 28,000 मराठे और 20,000 अफगान मारे गये। 35,000 मराठे बन्दी बनाए गए जिनका बाद में वध कर दिया गया। लगभग 50,000 घोड़े हाथी विजेता के हाथ लगे।

कर्नल गौतम शर्मा ने लिखा है – "लगभग 4 बजे लड़ाई रूक गई और मुकाबला पूरी तरह समाप्त हो गया। जब मराठे भाग रहे थे तो अफगानों और उनके साथियों ने लगभग 20 मील तक उनका पीछा किया। इसके बाद एक नरसंहार शुरू हो गया। लड़ाई रात में बहुत देर तक चलती रही, क्योंकि चांद बहुत देर में छुपा। अब्दाली अपने जगह टिका रहा और उसने अपने आदमियों को नियन्त्रण में रखा। कम से कम 30,000 मराठे युद्धभूमि पर हताहत हुए। अगले दिन पानीपत की और बढ़ने के आदेश दिए गए और कत्लेआम के हुक्म जारी हुए। पानीपत में और उसके आसपास लगभग 50,0000 लोगों को काट डाला गया। लगभग 1,00,000 भारवाही पशु छोड़ गए जिनमें 3,000 ऊँट और 300 हाथी शामिल थे। भारी मात्रा में साज–सामान, शस्त्रास्त्र, गोला–बारूद और कीमती चीजें छूट गई। मराठा शिविर में खुली लूट मची। हजारों घायल तेज ठण्ड से युद्धभूमि में मर गए। इस दिन महाभारत की तरह योद्धाओं की पूरी एक पीढ़ी समाप्त हो गई। अफगानों के लगभग 20,000 आदमी मरे।

1.3 पानीपत में मराठों की पराजय के कारण :

पानीपत में मराठों की पराजय के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे। प्रो. एच.आर. गुप्ता ने निम्नलिखित कारणों को अधिक महत्वपूर्ण माना हैं –

1.3.1 प्रतिद्वन्दी सेनानायक :

निसन्देह सदाशिवराव भाऊ एक महान और पराक्रमी सैनिक था और पिछले कुछ वर्षों में उसने दक्षिण भारत मे लड़े गये युद्धों में शानदार सफलताएं भी प्राप्त की थी, परन्तु उसको उत्तरी भारत के लिए वह एक अजनबी था। उसे यहां के मामलों तथा भौगोलिक स्थिति की पर्याप्त जानकारी नहीं थी। दुर्भाग्यवश उसे उस युग के सर्वोच्च सेनानायक अब्दाली से सामना करना पड़ा। अब्दाली सदाशिवराव से कई अधिक अनुभवी तथा रणकुशल सैनानायक था। उसने भाऊ की भांति अपनी सेना के किसी एक भाग का व्यक्तिगत रूप से नेतृत्व नहीं किया, अपितु कुछ दूरी से पूर्ण शान्ति के साथ सम्पूर्ण युद्ध का निरीक्षण करता रहा और अन्तिम दाव के लिए 10,000 सैनिकों का एक दस्ता सुरक्षित रख छोड़ा थां इसी सुरक्षा दस्ते ने युद्ध का पासा पलट दिया।

1.3.2 प्रतिद्वन्दी नायक :

अब्दाली के पास जहानखाँ, शाहपसन्दखाँ, अताईखाँ, करीमखाँ, शाहवलीखाँ सेनानायक थे, जो एक से एक–बढ़–चढ़कर थे। भाऊ के पास उनकी टक्कर का एक भी नायक नहीं था। बूढ़ा मल्हारराव होल्कर और नवयुवक जनकोजी सिन्धिया तथा अन्य मराठा नायक विभिन्न अवसरों पर अब्दाली के हाथों परास्त होकर अपना आत्मविश्वास खो चुके थे। इब्राहीम गार्दी और उसके सैनिकों के प्रति भाऊ की विशेषज्ञ कृपा से मराठा सेनानायकों में इतना गम्भीर मतभेद पैदा हो गया कि वे अन्तिम समय तक ठोस कदम न उठा पाये। मल्हारराव होल्कर पर तो यह आरोप भी लगाया गया है कि वह पहले से ही नजीब तथा शाहपसन्द खाँ से सांठ–गांठ किए हुए था।

1.3.3 प्रतिद्वन्दी सेनायें :

मराठा सेना सामन्तवादी संगठन के दूषित रोग से पीड़ित थी। आपस में लड़ने वाले तथा एक–दूसरे से घृणा करने वाले सेनानायकों के नेतृत्व में मराठा सेना अपना अनुशासन खो चुकी थी। शिवाजी के समय में मराठा सेना एक राष्ट्रीय सेना थी। अब उसका राष्ट्रीय स्वरूप भी जाता रहा और वह भाड़ैतों की सेना बन गई, जिसे महीनों वेतन भी नहीं चुकाया जाता था और सैनिक लोग लूटमार से प्राप्त धन से गुजारा चलाते थे। उनकी लूटमार और अत्याचारों ने उत्तरी भारत में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उन्हें घृणा का पात्र बना दिया और स्थानीय जनता से उन्हें किसी प्रकार का सहयोग नहीं मिल पाया था। इसके विपरीत अब्दाली की सेना पूर्णतः अनुशासित थी और उनके नायकों में भी एकता थी। अफगान सेना एक सर्वोच्च सेनानायक के आदेशों पर चलती थी। अवज्ञाकारी तथा अनुशासनहीन अफगान सैनिकों को सख्त सजा दी जाती थी।

1.3.4 सैनिक शिविरों की स्थिति :

पानीपत में भाऊ का शिविर भीड़–भाड़ से भरा हुआ था। मराठा अधिकारियों की पत्नियां, रखैलें, नौकरानियों के अलावा दक्षिण भारत में तीर्थयात्रा पर आने वाले असंख्य नर–नारी भी शामिल थे। मराठा शिविर में हजारों जानवरों की उपस्थिति भी कठिनाई सिद्ध हुई। युद्ध में भाग लेने वाले मराठा सैनिकों की संख्या कम थी। वे अब्दाली के 60,000 सैनिकों के मुकाबले मे केवल, 45,000 सैनिक ही जुटा पाये। अफगानों के पास लगभग 10,000 द्वितीय श्रेणी के सैनिक थे, जबकि मराठों के पास केवल 15,000 ही थे।

1.3.5 खाद्यान्न व्यवस्था :

खाद्य पदार्थों की अपर्याप्त व्यवस्था मराठों की पराजय का एक प्रमुख कारण सिद्ध हुई। दक्षिण से कूच करने के समय से युद्ध के समय तक भाऊ को इस विषय में निरन्तर कठिनाई का सामना करना पड़ा। पानीपत में भाऊ को सर्वाधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। मराठा शिविर में दुर्भिक्ष की सिथति पैदा हो गई और भूखों मरने की अपेक्षा युद्ध में वीरगति प्राप्त करना अधिक अच्छा मानकर भाऊ को अचानक आक्रमण करने का निर्णय लेना पड़ा। इसके विपरीत भारतीय मुसलमान नेताओं की सहायता के कारण अब्दाली की सेना को खाद्य पदार्थों की कभी कमी नहीं रही। इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि पानीपत के मैदान पर जिस मराठा सेना ने अफगानों का सामना किया था, वह अधमरे देशी टट्टुओं पर भूख से पीड़ित कमर झुकाये सैनिकों का झुण्ड था।

1.3.6 तोपखाना :

मराठों के पास भारी वजन की तोपें थीं, जिन्हें इधर–उधर घुमाना तथा निशाना बाधंना आसान काम न था। युद्ध के प्रत्यक्षदर्शी इतिहासकार काशीराज ने लिखा है कि उनके गोले अफगान सैनिकों के ऊपर से होते हुए लगभग एक मील की दूरी पर पार्श्व भूमि पर गिरते थे। बारूद की कमी के कारण इन तोपों का समुचित उपयोग भी नहीं हो पाया। आमने–सामने की लड़ाई के अवसर पर यह वजनदार तोपखाना निरर्थक था। इसके विपरीत अब्दाली का तोपखाना हल्का तथा गतिशील था। उसने हल्की तोपों को ऊँटों पर लदवा दिया और उन पर बैठे 400 तोपचियों ने मराठा सेना की कमर तोड़ दी। अब्दाली के साधारण तोपचियों की बन्दूकें भी मराठों की बन्दूकों से श्रेष्ठ थी। अफगान सैनिक आग्नेय अस्त्रों के संचालन में मराठों से कहीं अधिक निपुण थे।

1.3.7 गम्भीर भूलें :

पानीपत में मराठों की पराजय के लिए उनके द्वारा समय–समय पर की गई गम्भीर भूलें भी कम उत्तरदायी न थीं। कुंजपुरा की तरफ अभियान पर जाते समय भाऊ ने राजधानी दिल्ली की सुरक्षा के लिए कसी महत्वपूर्ण सेनानायक को न रखकर गम्भीर भूल की थी। क्योंकि अफगानों ने पीछे से आकर दिल्ली पर नियंत्रण कर लिया और भाऊ का दक्षिण से सम्पर्क तोड़ दिया। यमुना नदी के घाटों और पुलों की निगरानी के सम्बन्ध में भी भाऊ ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया, जिससे अफगानों को यमुना पार करने में विशेष प्रतिरोध का समना नहीं करना पड़ा। भाऊ की योजना अब्दाली की नाकेबन्दी करके उसे भूखों मारना थी, परन्तु वह स्वयं ही इस स्थिति में फंस गया। इस पर भी उसने स्थिति का सही मूल्यांकन नहीं किया और व्यर्थ में ही समय नष्ट करता रहा। युद्ध के लिए भी कोई ठोस योजना नहीं बनाई गई।

1.3.8 कूटनीतिक असफलता :

पानीपत में मराठों की पराजय का एक प्रमुख कारण उनकी कूटनीतिक असफलता है। पेशवा बालाजी ने अपनी स्वार्थ नीति के द्वारा उत्तरी भारत की लगभग सभी प्रमुख शक्तियों की सहानुभूति को खो दिया। उसके उत्तरी अभियानों का ध्येय बिना किसी भेदभाव के सभी से अधिक से अधिक धन बटोरना था। राजपूत शासकों को आशा थी कि मुगलों से प्रतिरोध लेने में मराठा उनकी सहायता करेंगे। परन्तु मराठों ने उन पर मुगलों से भी अधिक जुल्म ढाये। परिणाम यह निकला कि वे मराठों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शत्रु बन गये और पानीपत के अवसर पर उन्होंने मराठो को किसी प्रकार का सहयोग नहीं दिया। सूरजमल जाट ने शुरू में मराठों का साथ दिया था, परन्तु मराठे उसे भी सन्तुष्ट नहीं रख पाये और वह युद्ध के पूर्व ही मराठा शिविर छोड़कर चला गया। अवध के शुजाउद्दौला को अपने पक्ष में लाने के लिए कोई कारगर कदम नहीं उठाया गया। इसके विपरीत अब्दाली को नजीबखाँ जैसे व्यक्ति की सेवाएं उपलब्ध हो गई थीं, जिसने बुद्धिमत्तापूर्ण प्रचार और इस्लाम की रक्षा की अपील के द्वारा उत्तरी भारत के सभी प्रमुख मुसलमानों को अपने झण्डे के नीचे एक करने में सफलता प्राप्त की। मराठों की पराजय का मूल कारण वस्तुतः भारतीय मुसलमानों को अब्दाली से मिलने से न रोक पाना और हिन्दू शक्तियों का सहयोग प्राप्त न कर पाना था।

अन्तिम कारण सदाशिवराव भाऊ द्वारा अपना संयम खो देना था। पेशवा के पुत्र विश्वासराव के मरते ही सदाशिवराव अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठा और बिना आगे–पीछे सोचे शत्रु सेना के भीतर घुसता गया और मारा गया। यदि भाऊ व्यक्तिगत भावनाओं पर काबू रखकर सेनापति के उत्तरदायित्व को निभा पाया होता तो मराठो को इतना विनाश नही देखना पड़ता।

पेशवा माधवराव (1761–1772) : पानीपत की पराजय के कुछ ही महीने बाद पेशवा बालाजी बाजीराव की मृत्यु हो गयी और उसका 17 वर्षीय पुत्र माधवराव पेशवा बना तथा उसका चाचा रघुनाथराव, माधवाराव का संरक्षक नियुक्त हुआ। रघुनाथराव (राघोबा) सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथ में रखना चाहता था, किन्तु पेशवा माधवराव ने उसकी आकांक्षाओं पर पानी फेर दिया। वह सर्वाधिक योग्य सैनिक एवं शासकीय प्रतिभा का व्यक्ति था। पानीपत की घोर पराजय के बाद उसने न केवल महाराष्ट्र को सुरक्षा प्रदान की, अपितु मराठों की खोयी हुई प्रतिष्ठा को भी पुनः स्थापित किया। उसने सेना को पुनर्गठित किया तथा अपने शत्रुओं को परास्त किया और मुगल सम्राट पर पुनः अपना प्रभाव कायम किया। संक्षेप में पानीपत के मैदान में जो कुछ खोया था, उसे माधवाराव ने पुनः हासिल कर लिया। अतः कुछ विद्वानों की मान्यता है कि पेशवा माधवराव की मृत्यु मराठों के लिए पानीपत से भी अधिक घातक सिद्ध हुई थी।

1.4 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – नादिरशाह ने भारत पर कब आक्रमण किया?

(अ) 1735 ई. (ब) 1737 ई.

(स) 1738 ई. (द) 1739 ई.

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – पानीपत की युद्ध की घटनाओं पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – पानीपत के युद्ध के कारण और परिणाम बताईयें?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 2

मराठों का उत्थान : महादजी सिन्धिया एवं नाना फडनवीश के नेतृत्व में

2.0 महादजी सिन्धियां
2.1 सैन्य प्रशिक्षण
2.3 दिल्ली का संकट
2.4 राजपूतो से संघर्ष
2.5 महादजी का मूलयांकन
2.6 नाना फड़नवीस एवं मराठा राजनीति
2.7 टीपू के प्रति नीति
2.8 खरडा की लड़ाई
2.9 उत्तराधिकार का सवाल
2.10 नाना एवं मराठा संघ
2.11 नाना फड़नवीस का मूल्यांकन (1742)
2.12 बोध प्रश्न

2.0 महादजी सिन्धियां :

पानीपत के युद्ध की पराजय से मराठा शक्ति को गरा धक्का लगा था। किन्तु 1782 की साल्बाई की सन्धि तक मराठा सरदारों ने अपनी खोयी प्रतिष्ठा को काफी अंशों तक पुनः प्राप्त कर लिया था। इस सन्धि के बाद मराठों के सामने प्रमुख रूप से दो कार्य थे – प्रथम तो टीपू की बढ़ती हुई शक्ति पर नियन्त्रण स्थापित करना और दूसरा उत्तर भारत में, विशेषकर दिल्ली में मराठों की सत्ता को पुनः स्थापित करना। इन दोनों कार्यों को पूरा करने का दायित्व मराठा राज्य के तत्कालीन दो महान् राजनीतिज्ञों ने अपने ऊपर लिया। इन दोनों ने पेशवाई के लड़खड़ाते हुए पैरों को बल प्रदान किया तथा अन्धकार में पड़े हुए मराठा राज्य को नवप्रकाश प्रदान किया। ये दोनों राजनीतिज्ञ थे – महादजी सिन्धियां और नाना फड़नवीस।

सिन्धिया वंश का प्रथम व्यक्ति राणोजी था। राणोजी को पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने एक जागीर प्रदान की थी और यहां से सिन्धिया वंश का उत्थान आरम्भ हुआ। राणोजी के पांच पुत्र थे, जिनमें से जयप्पा तथा दत्ताजी उनके वैध पुत्र थे और अन्य तीन–तुकोजी, महादजी तथा जोतिबा उसके अवैध पुत्र थे। महादजी के चारों भाई रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुए थे। पानीपत के युद्ध में महादजी किसी तरह बचकर भाग निकले। रास्ते में कुछ अफगान घुड़सवारों ने उन पर आक्रमण किया। इसमें यद्यपि महादजी के प्राण तो बच गये, किन्तु उनका एक पैर जीवनभर के लिए खराब हो गया सिन्धिया वंश में अब महादजी के अतिरिक्त कोई नहीं बचा था, अतः वे सिन्धिया वंश की जागीर के उत्तराधिकारी बने।

महादजी प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने पाश्चात्य ढंग से प्रशिक्षित सेना के महत्त्व को समझा। अतः उसने अपनी सेना का पुनर्गठन किया। महादजी ने फ्रांसीसी सेनानायक डा. बायन ाके अपनी सेना में नियुक्त किया, जिसके निरीक्षण में सेना को पाश्चात्य ढंग से प्रशिक्षित किया गया। इस प्रकार महादजी ने शीघ्र ही एक सुदृढ़ सेना का गठन कर लिया। 1772 में महादजी के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप मुगल सम्राट् शाहआलम को दिल्ली के तख्त पर पुनः आसीन किया गया। पेशवा नारायणराव की हत्या के बाद पूना दरबार में जो संघर्ष आरम्भ हुआ, उसके कारण महादजी को दस वर्ष तक दक्षिण में रहना पड़ा। साल्बाई की सन्धि के बाद महादजी ने पुनः उत्तर भारत की और ध्यान दिया।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.1 सैन्य प्रशिक्षण :

मराठा राज्य को अंग्रेजों के प्रभाव से बचाये रखने हेतु सेना को आधुनिक ढंग से प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक था। गुल बादशाह की सुरक्षा का दायित्व भी महादजी पर ही था और विरोधी शक्तियों पर नियंत्रण बनाये रखने हेतु प्रशिक्षित सेना ही कारगर हो सकती थी। गोहद के राना से संघर्ष के दौरान महादजी की दृष्टि दि बायने की विलक्षण सैनिक प्रतिभा पर पड़ी और 1784 ई. के प्रारम्भ में दि बायने का शिन्दे (सिंधिया) की सेवा में प्रवेश हो गया। सरदेसाई ने उल्लेख किया है – "महादजी ने उसको अपनी सेवा में नियुक्त करने पर सर्वप्रथम युद्धों के लिए पैदल सैनिकों के दल तैयार करने का काम दिया। उसने अपना कार्य इस निपुणता से किया कि वह शनैः शनैः शिन्दे की दृष्टि में ऊँचा उठता गया। उसने सुन्दर सेना का एक नवीन रूप संगठित कर लिया और अन्त में उच्चतम पूर्णता तक पहुँचा दिया। इसी सुन्दर नवीन उपाय के द्वारा महादजी ने अपने जीवन की अधिकांश विजयों को प्राप्त किया।"

2.3 दिल्ली का संकट :

आगरा किले के रक्षक दल मुहम्मद बेग हमदानी ने अक्टूबर, 1784 में दो मुगल मंत्रियों की हत्या कर दी तथा मुगल बादशाह के विरूद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। दिल्ली में वह मराठा प्रभाव का घोर विरोधी था। नजबखाँ के पुत्र अफ्रस्याब खाँ ने इस विद्रोह का दमन करने के लिए महादजी से सहायता चाही। मुहम्मद बेग के विद्रोह का 1785 ई. में महादजी ने दमन कर दिया तथा और 1787 ई. के लालसोट युद्ध में मारा गया इस प्रकार दोआब, आगरा, अलीगढ़ आदि महादजी ने अपने अधिकार में ले लिये। मुहम्मद बेग पहले इस क्षेत्र का सूबेदार था। इत्तफाक से अफ्रस्याब खाँ की भी हत्या हो गई और मुगल सम्राट् शाहआलम को मुगल सत्ता के समस्त अधिकार महादजी को सौपने पड़े। यही नहीं उसने महादजी को वकील–ए–मुतलक' महादजी ने कहा कि सत्ता के ये चिन्ह् उसको पेशवा के नाम पर दिये जाएं, जिसका वह प्रतिनिधि है। परन्तु महादजी के उत्तर में सम्राट् ने पेशवा का नाम न लिखकर महादजी का ही नाम लिखा। सम्राट के इस स्पष्टीकरण तथा इसके प्रति महादजी की सहमति से नाना फड़नवीस बहुत रूष्ट हुआ।" नाना ने महादजी पर स्वतंत्र रूप से कार्य करने के आरोप लगाये। मराठों का आपसी संघर्ष तीव्र हो गया था जिससे मराठा शक्ति बिखराव की ओर अग्रसर हुई।

सिंधिया ने गवर्नर जनरल मैक्सफर्सन से बंगाल प्रदेश के खिराज की शेष राशि अदा करने के लिए कहा गया, जो न्यायसंगत था लेकिन अंग्रेजों ने यह प्रचारित किया कि महादजी उत्तरी भारत में एक पृथक–राज्य स्थापित करना चाहता है नाना फड़नवीस बहुत सन्देहशील प्रवृत्ति का था उसके समक्ष भी इसी तरह के विचार रखे जाते रहे, फलस्वरूप उसने उत्तरी भारत में सहायता कम कर दी। सिंधिया ने मुगल बादशाह से पदवी पेशवा के लिए ही प्राप्त की थी और यह स्थिति तब स्पष्ट हुई जब महादजी को 'नायब–ए–वकील–मुतलक' की उपाधि मिली।

2.4 राजपूतों से संघर्ष :

उत्तरदायित्व में वृद्धि के साथ परेशानियों में इजाफा स्वभाविक तथ्य है। मुगल बादशाह की सुरक्षा का दायित्व आने से, राजपूतों से खिराज की माग की गई, किन्तु जयपुर नरेश ने कर का भुगतान करने से इन्कार किया। महादजी को जयपुर तथा जोधपुर की संयुक्त सेना से तुंगा (लालसोट जयपुर से दक्षिण पूर्व में) के मैदान में टकराना पड़ा। यद्यपि युद्ध निर्णायक नहीं रहा लेकिन राजपूत अपने को विजयी बताते रहे।

किसी एक मसले को रफा–दफा करने से पूर्व ही महादजी को दूसरी परेशानी तैयार मिलती। रूहेले पठान जाबित खाँ के लड़के गुलाम कादिर ने जून, 1788 में अलीगढ़ जीतकर दिल्ली में लूटपाट शुरू कर दी, वह बादशाह से रूहेलखण्ड की जागीर तथ अमीरूल उमर की उपाधि प्राप्त करने को उत्सुक था। बादशाह को उसने अंधा करवा दिया तथा दिल्ली को अपने कब्जे में ले लिया एवं मराठा सेना भी पीछे धकेल दी गई।

ऐसे अवसर पर पेशवा से सहयोग की अपेक्षा करना स्वभाविक ही कहा जायेगा, आर्थिक परेशानियों से भी महादजी त्रस्त थे। तुकोजी होल्कर को नाना ने सहायतार्थ भेज दिया। सिंधिया ने गुलाम कादिर का दमन किया, इस कार्यवाही में हजारों रूहेले मारे गये। अन्धे बादशाह को सिंधिया ने पुनः दिल्ली का सिंहासन सौप दिया। यद्यपि वास्तविक नियंत्रण महादजी के हाथों में था। उसका राज्य अब सतलज से नर्मदा तक विस्तृत था।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Madhun

सिक्ख एवं राजपूतों के दमन में होल्कर ने सिंधिया का सहयोग करना वांछित नहीं समझा, वस्तुतः महादजी का बढ़ावा प्रभाव उसके लिए असह्य होता जा रहा था। अकेले ही महादजी ने बायनी द्वारा प्रशिक्षित सेना से मेड़ता में एकत्र राजपूतों की संगठित सेना को 1790–91 ई. में बुरी तरह हराया। परिणामतः जोधपुर शासक ने खिराज देना स्वीकार किया तथा अजमेर पर उसका आधिपत्य हो गया। सिंधिया की राजपूताने में विजय के कारण होल्कर अपनी ईर्ष्या को रोक नहीं पाया और 1 जून, 1793 को कोटा के निकट लाखेरी के मैदान में दोनों सेनाएं आपस में भिड़ गई, जिसमें होल्कर की पराजय हुई।

सिंधिया पिछले बारह वर्षों से पुणे नहीं जा सका था। एकता को अक्षुण्ण बनाये रखेन तथा मराठा राज्य को अंग्रेजों से सुरक्षित रखने की चर्चा के उद्देश्य से वह पुणे पहुंचा। महादजी ने पूर्व में व्याप्त संदेह एवं शंकाओं को दूर करने को कोशिश की। कहा गया है कि नाना इतना अधिक सन्देह करता था कि उसने कार्नवालिस से बम्बई रेजिमेंट की सेवाएं उपलब्ध करवाने के लिए भी कह दिया था, जैसे उसे महादजी के सैनिक आक्रमण का भय थाा। नाना का यह अदूरदर्शितापूर्ण व्यवहार अनुचित एवं अशोभनीय ही कहा जायेगा। महादजी 1792 से 1794 तक पुणे में रहा। इसी दौरान दी बायने ने होल्कर की सेनाओं को लाखेरी में हराया था। यह स्वाभाविक है कि सिंधिया की प्रतिष्ठा बढ़ी। 12 फरवरी, 1794 में बीमारी से उसकी मृत्यु हो गई। महादजी के कोई सन्तान नही थी, अतः उसके 13 वर्षीय भतीजे दौलतराव को उसका वारिस नियुक्त किया गया।

2.5 महादजी का मूल्यांकन :

यदि यह कहा जाये कि महादजी पानीपत युद्ध (1761 ई.) के बाद सबसे अधिक कुशल सेनानायक एंव कूटनीतिज्ञ था, तो अतिश्योक्ति न होगी। उत्तरी भारत में उसने मराठा शक्ति को ही पुनः स्थापित नहीं किया, अपितु उसकी महत्ता को स्वीकार करते हुए अंग्रेजों ने सालबाई सन्धि (मई, 1782) के बाद उसकी गतिविधियों में हस्तक्षेप की कोशिश नहीं की। इसे मराठा संघ एवं भारतीय राजनीति का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि नाना फड़नवीस एवं अन्य तत्कालीन शासक उसकी योजनाओं को समझ नहीं पाये तथा संगठित प्रयासों का अभाव रहा, जिससे अंग्रेज अपनी सत्ता मजबूती से स्थापित करने में सफल हो पाये। मराठा परस्परा की उच्चतम पराकाष्ठा महादजी के चरित्र में उस समय दिखाई पड़ती है, जब वह मुगल बादशाह के सुरक्षा का दायित्व बखूबी निभा रहा था। उस जैसा अन्य कोई शक्तिशाली शासक सत्ता के सम्पूर्ण अधिकार हस्तगत कर दिल्ली का शासक बन गया होता लेकिन महादजी ने सदैव मुगल बाहदशाह को संकटों से उबारा और अपने को पेशवा का प्रतिनिधि ही स्वीकार किया।

महादजी के चारित्रिक मूल्यांकन हेतु सरदेसाई को उद्धृत करना युक्तिसंगत होगा – ''महादजी के समकालीन मुख्य व्यक्तियों का ध्यान करते ही आप स्वीकार कर लेंगे कि वह उनसे प्रत्येक क्षेत्र में आगे था। नाना फड़नवीस अपने व्यक्तिगत जीवन में पवित्रता के लिए प्रसिद्ध नहीं थ। 1789 में बालाजी विश्वनाथ तथा शाहू ने सिद्धान्त रूप से जो योजना बनाई थी, उसे महादजी ने लगभग अर्द्धशताब्दी के सतत् परिश्रम द्वारा व्यावहारिक रूप से पूर्ण किया। मुस्लिम शासकों में शिवाजी तथा उसके कार्य के सम्बन्ध में जो विरोध भावना थी, वह औरंगजेब की मृत्यु के बाद की शताब्दी में पूर्णतः नष्ट हो गई महादजी द्वारा सम्राट के कार्यों का प्रबन्ध यही प्रकट करता है। महादजी के चरित्र का उल्लेखनीय रूप उसका जाति तथा धर्म के पक्षपात से मुक्त होना था। मुसलमान और हिन्दू समान रूप से उसका आदर करते थे।''

महादजी की एक अन्य विशेषता की ओर जगन्नाथ प्रसार मिश्र ने ध्यान आकृष्ट किया है – ''उसका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। वह अपने साथियों के साथ हंस–मिलकर रहता था। वह बड़ी से बड़ी आपत्ति में शान्त रहता और इस दृष्टि से नाना से कही अधिक महान् था। नाना छोटी छोटी घटनाओं से बहुत जल्दी परेशान हो जाता था। महादजी मराठा संघ की शक्ति के लिए कार्य कर रहा था जबकि नाना फड़नवीस निजी स्वार्थों को महत्त्व देता था।'' सर यदुनाथ सरकार के शब्दों में कहा जा सकता है – ''महादजी सिंधिया अपने समय के उत्तर भारतीय इतिहास में एक दैत्य की भांति था। वह अपने समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सका। वह एक ऐसा सफल शासक था, जिसका कोई मित्र नहीं था, जिसका कोई दल नहीं था केवल अपने कुशल व्यक्तित्व और नेतृत्व के आधार पर ही वह सफल रहा।''

निष्कर्षतः उसकी सफलताओं पर दृष्टि डाली जाये तो इस श्रेणी में, अंग्रेज विरोधी संघ का निर्माण, सालबाई की सन्धि, राजपूतों में वर्चस्व की स्थापना दिल्ली उपद्रवों का दमन, मुगल सत्ता की पुनर्स्थापना और दी बायने द्वारा सेना का प्रशिक्षण तथा अंग्रेजी कूटनीति के प्रत्युत्तर में केवल उसे खड़ा पाते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.6 नाना फड़नवीस एवं मराठा राजनीति :

महाराष्ट्री ब्राह्मण परिवार में फरवरी, 1742 में नाना का जन्म हुआ, बचपन का नाम बालाजी था। पेशवा माधवराव प्रथम ने राज्य की आय–व्यय का हिसाब रखने (फड़नवीस पद) हेतु नियुक्ति किया था। कुशल वित्तीय प्रबन्ध के कारण नाना का महत्त्व धीरे–धीरे बढ़ता गया। माधवाराव की मृत्यु (1772 ई.) के पश्चात् नाना एक प्रमुख मराठा नेता के रूप में उभरने लगा, विशेष रूप से नारायण राव की हत्या के बाद पुणे में राघोबा विरोधी गुट का नेतृत्व नाना के हाथों में था। उसने सखाराम बापू, मोरेबा, पुरूषोत्तम भाऊ, हरिपंत फड़के आदि के सहयोग से 12 सदस्यों (बारा भाई) का दल बनाया, जो मराठा प्रशासनिक व्यवस्था के लिए जिम्मेदार था। कई मराठा नेता नवजात शिशु के स्थान पर राघोबा का समर्थन करने को तत्पर थे लेकिन नाना ने उसे किसी स्थिति में स्वीकार नहीं किया। परिणामतः राघोबा ने अंग्रेजों की शरण ली और इसके साथ ही अंग्रेजों के साथ टकराहट की शुरूआत हुई।

शरीर से दुर्बल तथा सैन्य–संचालन में पूरी तरह अयोग्य होने के कारण उसे सदैव दूसरों पर निर्भर रहना पड़ा। अंग्रेजों से संघर्ष में नाना ने महादजी का सहयोग लिया। यद्यपि आन्तरिक रूप से सदैव उसका विरोध बना रहा। सालबाई सन्धि (1782 ई.) के पश्चात् दक्षिण में मराठा शक्ति का वह केन्द्र बिन्दु बन गया था, जो उसकी नेतृत्व क्षमता को इंगित करता है।

2.7 टीपू के प्रति नीति :

मराठों ने अंग्रेजों के साथ संषर्घ में मैसूर का सहयोग लिया था और महादजी के प्रयासों से अंग्रेज विरोधी गुट का निर्माण सम्भव हुआ। हैदरअली की मृत्यु के बाद सिंधिया टीपू के प्रति मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का समर्थक था। वस्तुतः अंग्रेजों की बढ़ती शक्ति के विरोध में महादजी स्थानीय शक्तियों की एकता का पोषक था, लेकिन नाना अपने स्वार्थ की पृष्टभूमि में समय की मांग को समझने में असफल रहा और उसने टीपू की शक्ति को कुचलने में अंग्रेजो के समर्थन की नीति अपनाई।

टीपू ने मराठा क्षेत्र नरगुंड पर अधिकार कर लिया था, नाना ने तुकोजी होल्कर व बरार के राजा भोंसले के सहयोग से टीपू को 1785–87 ई. में पराजित किया। मार्च, 1787 की सन्धि द्वारा टीपू ने 32 लाख रूपये तत्काल तथा 6 माह बाद देना स्वीकार किया। बादामी, किट्टूर व नरगुंड पेशवा को मिल गये।

अंग्रेज अपने साम्राज्य विस्तार में टीपू को बाधक मानते थे। इस उद्देश्य से कार्नवालिस ने मराठों से सहयोग मांगा। एक जून, 1790 को अंग्रेज प्रतिनिधि मैलेट के साथ हुए समझौते द्वारा टीपू के विरूद्ध नाना ने 10,000 सैनिक अंग्रेजों को उपलब्ध करवाये। टीपू हरा दिया गया और सन्धि के अनुसार मराठों को कुछ प्रदेश मिले। लेकिन टीपू की पराजय मराठों के लिए हानिकारक साबित हुई। अंग्रेजों का प्रबल विरोधी शक्तिहीन हो गया और दक्षिण का शक्ति सन्तुलन गड़बड़ा जाना स्वाभाविक बात थी, मराठे टीपू के सहयोग से अंग्रेजों पर नियंत्रण रख सकते थे। नाना इस तथ्य को समझने में असफल रहा। अन्ततः मराठों को अंग्रेजों से अकेले ही संघर्ष करना पड़ा।

2.8 खरडा की लड़ाई :

मराठों ने खरड़ा के मैदान में निजाम की सेनाओं को हराया था, इस अवसर पर नाना ने परशुराम भाऊ को युद्ध–संचालन का कार्य सौपा। शिन्दे एवं होल्कर की सेना ने निजाम को खरड़ा के दुर्ग में शरण लेने के लिए बाध्य किया और 11 मार्च, 1795 को निजाम ने करारी मात खाई। मराठों के लिए युद्ध का महत्त्व इस बात में निहित है कि इस युद्ध में पेशवा की अधीनता में मराठे एक होकर लड़े थे, जिसे नाना की सफलता कहा जा सकता है।

2.9 उत्तराधिकार का सवाल :

पेशवा माधवराव नारायण ने नाना के नियंत्रण से परेशान होकर अक्टूबर, 1795 में आत्महत्या कर ली। बाजीराव द्वितीय एवं उसके भाई चिमन जी आपा में सत्ता के लिए संघर्ष शुरू हो गया। नाना ने तुकोजी होल्कर, दौलतराव सिंधिया व भौसले के समर्थन से बाजीराव द्वितीय को पेशवा बनाया। इस अवसर पर दौलतराव सिंधिया के श्वसुर सारजीराव ने नाना को बंदी बना लिया था लेकिन बाद में मुक्त कर दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.10 नाना एवं मराठा संघ :

पेशवा माधवराव नारायण नाना की निरंकुशव्यवस्था मे किसी राज कार्य का अनुभव नहीं ले पाया, प्रतिनिधियों से मिलने से सदैव वंचित रखा जाता रहा। दूसरे शब्दों में समस्त सत्ता नाना के हाथों में केन्द्रित थी, पेशवा नाम मात्र का प्रमुख बना रहा। परिणाम यह हुआ कि सिंधिया व होल्कर स्वतंत्र रूप से नीति निर्धारण करने लगे। हम जानते है कि महादजी ने उत्तर में समस्त अभियानों का संचालन स्वंत्र रूप से नीति निर्धारण करने लगे।

भौसले का नियंत्रण बरार क्षेत्र अर्थात् नागपुर से कटक तक बंगाल की खाडत्री के किनारे–किनारे फैला था। मुदों जी भोंसले की मृत्यु के बाद रघुजी एवं उसके छोटे भाई में सत्ता का संघर्ष छिड़ा जिसमें रघुजी को सफलता मिली। पेशवा 5 अर्थात् नाना से रघुजी के मतभेद थे उसने टीपू के विरूद्ध 1794 ई. में मराठों का साथ नहीं दिया। दरअसल नाना मराठा सरदारों की एकता को बनाये रखने में असफल रहा, यद्यपि उसने भोंसले से 10 लांख रूपये युद्ध व्यय के अवश्य वसूल कर लिये थे।

गुजरात एवं काठियावाड़ पूरा क्षेत्र गायकवाड. के अधीन थे। सायाजी की मृत्यु के बाद 1789 ई. में उत्तराधिकार समस्या पैदा हुई। नानाजी राव का पेशवा समर्थन कर रहा था, जबकि गोविन्दराव का सिंधिया। मानाजी का 1792 में निधन हो जाने से गोविन्दराव को सत्ता मिली, किन्तु गोविन्दराव भी अधिक जीवित नहीं रहा और 1800 ई. में गोविन्दराव के बाद उसके पुत्र कान्होजी एवं पेशवा समर्थित अबासिलूकर में टकराहट बनी रही।

मध्य एवं पश्चिमी मालवा का शासक होल्कर था। मल्हार राव होल्कर की 1766 ई. में मृत्यु हो गई उसकी विधवा अहिल्याबाई ने 1795 तक राज्य का प्रशासन संभाले रखा। स्मिथ जैसे कई पाश्चात्य विद्वानों ने उसके शासन की प्रशंसा की है जिक्र आया है कि उसके 30 वर्ष के शासन में राज्य पूर्णतः अशान्ति एवं विदेशी आक्रमणों से मुक्त रहा। उसकी राजधानी इन्दौर का पर्याप्त विकास हुआ एवं प्रजा सरकार के प्रगतिशील एवं कल्याणकारी कार्यों से अभिभूत थी। अहिल्याबाई ने तुकोजी होल्कर को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। रानी का 1795 ई. में निधन हो गया और तुकोजी भी 1797 ई. चल बसा। उसका उत्तराधिकारी यशवंत राव बना, जो पूर्णतः अयोग्य एवं बुद्धिहीन था।

कहा जा सकता है कि मराठा संघ के प्रत्येक घराने में उत्तराधिकार का संघर्ष चल रहा था अथवा अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण भावी संकट दिखाई पड़ने लगा। स्वयं छत्रपति नाममात्र का शासक, जिसे राजनीतिक बंदी की भांति सतारा में रहने को मजबूर किया गया। नाना मराठा संघ में व्याप्त अराजकता, परस्पर शत्रुता एवं अशान्ति को दूर करने में असफल रहा।

2.11 नाना फड़नवीस का मूल्यांकन :

नाना फड़नवीस के जीवन के साफतौर पर दो पक्ष दिखाई पड़ते है। पाश्चात्य विद्वानों ने उसके जीवन के दूसरे पक्ष को अधिक उजागर किया है, जबकि पहला पक्ष उसके जीवन की गम्भीर खामियों को ही उजागर करता है। एम.एस.जैन ने उल्लेख किया है – ''नाना ने किसी सैनिक अधिकारी को अपने साथ नहीं रखा। वह निरन्तर एक–एक को समाप्त करता गया। वह प्रत्येक सैन्य–संचालन को सन्देह की दृष्टि से देखता और उसे पद से हटाने का प्रयत्न करता। इससे मराठा राज्य में कलह और दलबंदी कम होने के स्थान पर बढ़ती गई। इसलिए नाना फड़नवीस मराठा राज्य के पतन में सबसे अधिक उत्तरदायी है।'' अपने स्वार्थ के कारण ही नाना ने पेशवा के चयन में रोड़े अटकाये। सरदेसाई ने कहा है – ''यदि पेशवा की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् नाना फड़नवीस ने शिन्दे, होल्कर, भोंसले, आंग्रेज, पटवर्धनों आदि उत्तरदायी सरदारों का प्रत्यक्ष सम्मेलन किया होता तो पेशवा पद पर अमृतराव का निवार्चन हो जाने की अधिक सम्भावना थी, क्योंकि अंग्रेज भी विद्यमान उत्तराधिकारी व्यक्तियों में उसको सर्वाधिक योग्य व्यक्ति मानते थै। इस प्रकार बाजीराव दूर रखा जा सकता था, परन्तु नाना के उपायों से नीच षड़यंत्र तथा रिश्वतखोरी का जन्म हो गया और निर्विघ्न प्रशासन की आशाएं समाप्त हो गई।'' उसकी मृत्यु 13 मार्च, 1800 के अवसर पर कैप्टिन ब्राउनरिग ने कहा था – ''नाना के साथ ब्राह्मण राज्य अस्त हो गया है। पुणे का पतन हो गया।''

नाना के जीवन केदूसरे पक्ष को पाश्चात्य विद्वानों ने विशेष रूप से उजागर किया है। ग्रांट डफ ने लिखा है – निःसन्देह नाना फड़नवीस महान् राजनीतिज्ञ था। उसके मुख्य अवगुणों का कारण व्यक्तिगत साहस का अभाव तथा उसकी महत्त्वाकांक्षा थी। इनका नियंत्रण सिद्धान्तों द्वारा नहीं होता था। उसका जीवन सदैव जनसाधारण के समक्ष रहता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्यक्तिगत जीवन में वह परम सत्यप्रेमी, दयालु, मिव्ययी तथा उदार था। उसका सारा समय कठोर व्यवस्था द्वारा नियमित रहता था, जो कार्य उसने स्वयं किया वह विश्वास की सीमा से भी आगे बढ़ जाता हे। मराठा जाति द्वारा उत्पन्न किये गये विलक्षण बुद्धियुक्त अन्तिम पुरूष के रूप में नाना निःसन्देह देदीप्यमान है। ग्रांट डफ इस और भी ध्यान आकृष्ट करता है कि, ''वह मराठों के कामों में अंग्रेजी हस्तक्षेप के खतरा समझता था तथा उनके साथ किसी सन्धि के विरूद्ध था। वह अंग्रेजों का आदर करता था किन्तु राजनीतिक शत्रुओं के रूप में उन्हें दूसरा कोई भी उतनी ईर्ष्या और भय के साथ नहीं देखता था,, जितनी ईर्ष्या और भय के साथ वह देखता था।

2.12 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – महादजी सिन्धिया की मृत्यु कब हुई?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – नाना फडनविश की जीवनी पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – मराठों के उत्थान में महादजी सिन्धियां के योगदान को विस्तार से समझाइयें?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 3
आंग्ल–मराठा संघर्ष

3.0 अंग्रेजी नीति
3.1 सूरत की सन्धि
3.2 आरस का युद्ध
3.3 पुरन्दर की सन्धि (1 मार्च, 1776)
3.4 अंग्रेज विरोधी गुट (1779 ई.)
3.5 सालबाई की सन्धि (17 मई, 1782)
3.5.1 सन्धि का महत्त्व
3.6 वेलेजली और द्वितीय मराठा युद्ध
3.6.1 मराठों में आपसी संघर्ष
3.6.2 बसीन की सन्धि का महत्त्व
3.6.3 द्वितीय आंग्ल–मराठा युद्ध
3.6.4 होल्कर से युद्ध
3.7 लार्ड हेस्टिंग्ज व तृतीय मराठा युद्ध
3.7.1 वेलेजली और कार्नवालिस तथा तृतीय मराठा युद्ध
3.7.2 लॉर्ड कार्नवालिस तथा सर जॉर्ज बार्लो की मराठा नीति
3.8 चतुर्थ मराठा युद्ध तथा मराठों का पतन
3.8.1 पेशवा से संघर्ष
3.8.2 भौसले के साथ संघर्ष
3.8.3 होल्कर के साथ संघर्ष
3.8.4 सिन्धियां एवं गायकवाड के साथ नई सन्धियां
3.9 चतुर्थ मराठा युद्ध के परिणाम
3.10 बोध प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पानीपत की पराजय से मराठा शक्ति को भारी आघात पहुँचा था, यदि ईस्ट इण्डिया कम्पनी एवं हैदरअली के उत्थान को पानीपत की हार की अगली श्रृंखला कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। मराठा सरदारों की ऐसी स्पष्ट धारणा नहीं थी तथापित सम्पूर्ण भारत पर मराठा वर्चस्व की स्थापना की बात अब कल्पना बनकर रह गई। दिल्ली के बादशाह शाहआलम को 1772 में अपने अधिकार में राजधानी दिल्ली में स्थापित अवश्य किया गया, किन्तु यह प्रभाव युवा पेशवा माधवराव प्रथम के निध ान के साथ ही धीरे–धीरे फीका पड़ने लगा। जी.एस. सरदेसाई ने जिक्र किया है – ''1772 ई. में पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु से राष्ट्र के भाग्य में महान् परिवर्तन हुआ था उस समय उसे कोई जान नहीं पाया।

माधवराव प्रथम की मृत्यु के साथ ही मराठों में आन्तरिक कलह की शुरूआत हुई। नारायणराव जो माधवराव के बाद नवम्बर, 1772 में पेशवा बना, ने जेल में पड़े राघोबा को मुक्त करवा दिया। राघोबा अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी और स्वयं पेशवा बनने को उत्सुक था। उसने 30 अगस्त, 1773 में नारायण राव की हत्या करवा दी और स्वयं पेशवा बन बैठा, किन्तु नाना फड़नवीस, मोरबा फड़नीज, हरपित फड़के, पुरूषोत्तम भाऊ, सखाराम बापू एवं महादजी सिंधिया आदि उसे नारायण राव का हत्यारा समझते थे और उसके पेशवा बनने का विरोध किया। जी.एस. सरदेसाई के अनुसार, ''छत्रपति ने राघोबा को पेशवा पद से अपदस्थ कर दिया।'' जिसे राघोबा के कारनामों का ही प्रतिफल कहा जायेगा।

इस दौरान नारायण राव की विधवा गंगाबाई ने पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम सवाई माधोराव (या माधउराव नारायण) रखा गया और उसे 28 मई, 1774 को पेशवा नियुक्त कर दिया गया। प्रशासनिक व्यवस्था के संचालनहेतु बारा भाइयों (12 सदस्यों) को दायित्व सौपा गया। राघोबा को गिरफ्तार करने के लिए सेना भेजी गई, क्योंकि उसे हत्या का दोष मान लिया गया था। इसके साथ ही मराठा विवाद की शुरूआत हुई। कहा गया है ''मराठा सरदार दो गुटों में विभक्त हो गये तथा शिवाजी द्वारा स्थापित साम्राज्य की नींव खोदने दौड़ पड़ें।'' राघोबा के विरोध में मुख्य रूप से नाना फड़नवीस था, जो राघोबा को पेशवा स्वीकार करने के लिए तत्पर न था।

3.0 अंग्रेजी नीति :

मराठा राज्य की आन्तरिक अव्यवस्था का लाभ उठाकर अंग्रेज अपने राज्य विस्तार को उत्सुक थे। रेगुलेटिंग एक्ट, 1774, पारित होने से पूर्व मद्रास एवं बम्बई के गवर्नर स्वतंत्र थे अर्थात् दक्षिण एवं मध्य भारत की कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जिनके विवाद में अंग्रेजों ने दखल न की हो। प्लासी की जीत के बाद से ही वे भारत के कई भागों ने अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने को लालायित हो उठे। अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अंग्रेजो ने इस तथ्य को ध्यान में रखा कि निजाम मराठे व हैदरअली कभी एक न हो पायें अर्थात् परस्पर लड़ते रहें। दूसरे, अंग्रेजों की निजाम मराठे व हैदरअली कभी एक न हो पायें अर्थात् परस्पर लड़ते रहें। दूसरे, अंग्रेजों की सदैव यह कोशिश रही हक मराठे आन्तरिक झगड़ों में फंसे रहे। मराठों की महत्त्वाकांक्षा एवं साम्राज्यवादी भावनाओं से वे भली–भांति परिचित थे। तीसरे, भारत के पश्चिमी भाग में विस्तार हेतु अधिक बड़े समुद्र तटीय क्षेत्र की उन्हें तलाश थी जहां से अपनी गतिविधियां संचालित की जा सकें। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अंग्रेजों ने धीरे–धीरे जाल बिछाना शुरू किया। मराठों के आन्तरिक झगड़ों को दृष्टिगत रखते हुए 8 दिसम्बर, 1773 को मॉटसन बम्बई पहुँचा और बम्बई कौसिल के अध्यक्ष हार्नबी को थाना के दुर्ग पर अधिकार करने के लिए उकसाया। 28 दिसम्बर, 1773 को अंग्रेजों ने उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। सरदेसाई ने जिक्र किया है कि, ''अंग्रेजों ने थाने पर आक्रमण की योजना बना ली थी। अंग्रेजों ने पुर्तगाली अधिकार हो जाने से पहले ही उस गढ़ को घेर लेने का बहाना किया।''

3.1 सूरत की सन्धि :

राघोबा अंग्रेजों की सहायता प्राप्त करने हेतु उनके खेमें में जा पहुंचा। 6 मार्च, 1775 में बम्बई सरकार ने सन्धि की। सन्धि की शर्तों के अनुसार –

राघोबा की इच्छा पर 2500 सैनिकों की नियुक्ति की गई, जिसमें तोपखाने के साथ 700 यूरोपियों को रखा गया।

इस दल के खर्च हेतु डेढ़ लाख प्रतिमाह अग्रिम भुगतान किया जाना था।

अंग्रेजों ने 6 लाख रूपये या उसके बराबर के आभूषण अमानत रूप में अपने पास रखे।

बदले में राघोबा ने अंग्रेजों को थाना, बसीन (बसई), सालसेट, सूरत के समीप जम्बूसार तथा औलपद तालुके देने का वचन दिया।

3.2 आरस का युद्ध :

सूरत सन्धि के अनुरूप कर्नल कीटिंग के नेतृत्व में अंग्रेज सेना बम्बई (मुम्बई) से रवाना हुई। 28 मार्च को आरस (अडास) में युद्ध हुआ। नाना फड़नवीस ने हरिपंत फड़के की अधीनता में राघोबा के दमन हेतु सेना भेजी। हरपिंत के प्रहार से 11 उच्च अधिकारी व 300 सैनिक मारे गये। लेकिन युद्ध को निर्णायक नहीं माना गया।

बम्बई सरकार ने सूरत सन्धि तथा आरस युद्ध की सहमति कलकत्ता कौसिल से प्राप्त नहीं की थी। रेगुलेटिंग एक्ट, 1974 द्वारा बंगाल का गवर्नर कम्पनी राज्य का गवर्नर जनरल माना गया और मद्रास (चेन्नई) तथा बम्बई की नीति निर्धारण पर उसका नियंत्रण स्थापित कर दिया गया। वारेन हेस्टिंग्ज सूरत सन्धि (6 मार्च, 1775) को स्वीकृति देने को तत्पर था लेकिन कलकत्ता कौसिल के सदस्य उसे सहमत न हुए, अतः पुणे सरकार से समझौता करने हेतु कर्नल अपटन को भेजा गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.3 पुरन्दर की सन्धि (1 मार्च, 1776) :

सन्धि द्वारा सालसेट (द्वीप) व थाना का दुर्ग अंग्रेजों को सौपे गये।

मराठों ने रघुनाथराव (राघोबा) के कारण किये व्यय के बदले 12 लाख अंग्रेजों को देना स्वीकार किया।

तीन लाख पन्द्रह हजार रूपये वार्षिक खर्च के रूप में राघोबा को राज्य कार्य से अपने को दूर रखने की शर्त पर, देना स्वीकार किया।

गुजरात में अंग्रेजों द्वारा जीता हुआ क्षेत्र उनके अधिकार में रहा।

राघोबा के सहमत न होने से सन्धि निरर्थक साबित हुई। बम्बई सरकार ने भी इसे ''कम्पनी हित एवं प्रतिष्ठा के लिए महान् घातक माना था।'' वारेन हेस्टिंग्ज इससे बिल्कुल सहमत न हुआ उसकी महत्त्वाकांक्षा कहीं अधिक थी। नाना फड़नवीस ने सन्धि के अनुसार राघोबा को पुणे कौसिल को सौपने की मांग की किन्तु कम्पनी ने यह बात स्वीकार नहीं किया। दरअसल अंग्रेज राघोबा को मराठा राजनीति में हस्तक्षेप के साधन रूप में इस्तेमाल करना चाहते थे। मराठे भी अंग्रेजों से निपटने के लिए तत्पर थे। स्थिति उस समय और भी जटिल हुई जब 1778 में फ्रांसीसी सैंटलुबिन (ल्यूबिन) आया और उसने अपने को फ्रांस सम्राट का राजदूत बताया। मराठों ने उसका शानदार स्वागत किया। दूसरी और अंग्रेज मॉटसन के पुणे पहुंचने पर उसे तवज्जो नहीं दी गइ। अंग्रेजों ने यह प्रचारित करने में देर नहीं लगाई कि नाना फड़नवीस ने फ्रांसीसियों से सन्धि कर ली है जबकि नाना इस तथ्य से परिचित था कि ल्युबिन फ्रांस सम्राट् का प्रमाणिक दूत नहीं हे। केवल अंग्रेजों को धमकी देने के लिए ही इसका उपयोग किया गया था। इस दौरान मोरेबा ने राघोवा को समर्थन करने का निश्चय किया और नाना फड़नवीस को पुरन्दर के दुर्ग में पेशवा माधवराव के साथ बन्दी बनाये रखा।

मराठों ने पुरन्दर सन्धि के अनुसार 12 लाख का भुगतान अंग्रेजों को नहीं किया था, अंग्रेजों के लिए यह आक्रमण का उचित समय था। मॉटसन ने गवर्नर को इस आशय का संकेत किया दूसरे और वरेन हेस्टिंग्ज ने बंगाल से कर्नल वेलेजली (लेज्ली) और गोडर्ड के नेतृत्व में सेना भेजी।

अब महादजी सिंधिया की सैनिक सहायता पर सब कुछ निर्भर करता था। महादजी के प्रयत्नों से मोरेबा को बन्दी बना लिया गया। अंग्रेजी खेमें से राघोबा को पेशवा बनाने में सहयोग हेतु काकबर्न के नेतृत्व में नवम्बर, 1778 में सेना पुणे की और भेज, जिसमें 600 यूरोपीय और तैतीस सौ सिपाही थे। 9 जनवरी, 1779 को बड़गांव स्थान पर अंग्रेजी सेना ने समर्पण कर दिया। मराठा शक्ति का नेतृत्व इस समय महादजी सिंधिया के हाथों में था।

विवश होकर अंग्रेजो को बडगाँव की सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। जिसके अनुसार अंग्रेजों ने राघोबा को वापस लौटाना स्वीकार किया।

बम्बई के निकट के समस्त क्षेत्र (सालसेट, थना दुर्ग व गुजरात के इलाके) खाली करने की बात स्वीकार की।

बंगाल से आने वाली सेनाओं को रोकने की बात स्वीकार कर ली।

अंग्रेजों ने इस सन्धि को मान्यता नहीं दी। स्वयं हेस्टिंग्ज ने कहा था : ''जब मै बडगांव समझौते की धाराओं को पढ़ता हूँ, तो मेरा सिर लज्जा से झूक जाता है।'' अंग्रेजों ने युद्ध जारी रखा।

3.4 अंग्रेज विरोधी गुट (1779 ई.) :

आंग्ल–मैसूर संघर्ष के क्रम में मैसूर, निजाम एवं मराठों के संयुक्त संघ का उल्लेख किया गया है। जी.एस. सरदेसाई के अनुसार इस संघ के निर्माण में नाना फड़नवीस का योगदान था। लिखा है : ''पूना सरकार के लिए सुदूर गुजरात में अंग्रेजों से युद्ध करना सरल कार्य नहीं था, ऐसे संकटमय अवसर पर नाना फड़नवीस की राजनायिक प्रतिभा प्रकाश में आयी। वह अवसर के अनुकूल योग्य सिद्ध हुआ। उसने ब्रिटिश आक्रमण का विरोध करने के लिए चार शक्तियों का विशाल संघ स्थापित किया। ये चार शक्तियां थीं – पेशवा की सरकार, हैदराबाद का निजाम, मैसूर का हैदरअली और नागपुर का भौसले।'' कई विद्वान सरदेसाई के मत से सहमत नहीं है। प्रो. एन.के. सिन्हा के अनुसार इस गुट के निर्माण में हैदरअली का योगदान था। डॉ. जैन की धारणा है कि, ''अंग्रेजों के माही पर अधिकार करने से पूर्व हैदर अंग्रेज विरोधी नहीं था, अतः हैदर के लिए अंग्रेज विरोधी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गुट निर्माण का प्रश्न ही नहीं था। हैदराबाद के निजाम ने भी इस गुट के निर्माण का श्रेय लेने का प्रयास किया है और हेस्टिंग्ज और फ्रांसिस ने इस मत को सही मान लिया था। किन्तु निजाम ने 1780–82 ई. के दौरान अंग्रेज विरोधी कोई कार्य नहीं किया, बल्कि वारेन हेस्टिंग्ज ने उसकी शिकायतों को दूर करके उसको तटस्थ करने का प्रयत्न किया। इस गुट का वास्तविक निर्माता महादजी सिंधिया था। जून, 1779 में राघोबा के भाग जाने के पश्चात् सिंधिया सक्रिय हुआ और तीन महिने के भीतर यह गुट बन चुका था।'' इस संगठन द्वारा अंग्रेजों ने जाल किया कि भारतीय शासक संगठित रहे तो कभी सफल नहीं होंगे। परिणामतः युद्ध के दौरान ही गुट के सदस्यों को अलग करने की कोशिश शुरू हो गई। डॉ. देवधर ने अपने शोध–ग्रंथ (नाना फड़वीस) में दर्शाया है कि, ''निजाम और कुदाजी को इस संघ से अलग करने में वारेन हेस्टिंग्ज पारस्परिक द्वेष के कारण सफल हुआ। उसके अनुसार इस संघ का आधार राष्ट्रीय चेतना नहीं था। यह केवल अवसरवादियों का संघ था, जो अपने व्यक्तिगत कारणों एवं स्वार्थों से इस संघ के सदस्य बने थे।''

संघ की शक्ति एवं भिन्न–भिन्न मोर्चों के कारण ही हैदरअली मद्रास में अंग्रेजों की स्थिति खराब करने में सफल रहा। उत्तर भारत में भी अंग्रेज सेना को अधिक सफलता नहीं मिली। मध्य भारत को पारकर गोडार्ड ने अहमदाबाद पर अधिकार जमाया तथा दिसम्बर, 1780 में बसई (बेसीन) को हस्तगत किया। लेकिन वह पुणे की और बढ़ रहा था उस समय अप्रैल, 1781 में पराजित हुआ और पीछे धकेल दिया गया। सरदेसाई ने लिखा है : ''जब 1781 के ग्रीष्म में पूना की सेनाएं पनवेल तथा कल्याण के मध्यवर्ती क्षेत्र में गोडार्ड को परास्त कर रही थीं, तब महादजी मालवामें घोर युद्ध कर रहा था। महादजी ने अपनी स्थिति संभाल ली तथा नाना को लिखा कि किसी भी कारण से वह गोडार्ड से शान्ति की शर्तों की याचना न करे। 1 जुलाई को सीपरी के समीप उसने कर्नल म्यूर को बुरी तरह पराजित किया। ब्रिटिश परिस्थिति के विषय में वारेन हेस्टिंग्ज अत्यन्त भयभीत हो गया था। उसकी उत्कट इच्छा थी कि वह मराठा–युद्ध को समाप्त कर शक्ति हैदरअल पर केन्द्रित कर दे।''

3.5 सालबाई की सन्धि (17 मई, 1782) :

महादजी को अंग्रेजों की फूट डालने की नीति तब समझ आई जब वारेन हेस्टिंग्ज एवं भोंसले को तटस्थ बनाने में सफल रहा। हैदर का अंग्रेजों पर काफी दबाव था और हैदर से ही शान्ति स्थापित किये जाने की सम्भावना अधिक थी। उस स्थिति में मराठों को अंग्रेजों से अकेले युद्ध करना पड़ता और वह स्थिति मराठों के लिए घातक होती। ऐसे ही कुछ तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए महादजी ने सन्धि करना मुनासिब समझा।

अंग्रेज सन्धि के लिए क्यों तत्पर हुए, युद्ध के हालात से सहज ही अनुमान किया जा सकता है। हैदर के भंयकर प्रहार से उनकी हालत पतली हो चुकी थी। दूरी और इंग्लैण्ड अमरीकी उपनिवेशों के संघर्ष में उलझा हुआ था। मराठों से समझौता करना अंग्रेजों की विवशता थी। 17 मई, 1782 में सालबाई (ग्वालियर से 20 मील दक्षिण) स्थान पर महादजी एवं एण्डरसन के सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। सन्धि से 17 धारायें थीं, उनमें तीन प्रमुख है –

वे समस्त मराठा प्रदेश जिन्हें 1779 ई. के बाद अंग्रेजों ने जीता था सन्धि पर हस्ताक्षर होने के बाद दो माह की अवधि में लौटा दिये जायेंगे, किन्तु सालसेट एवं एलीफेन्टा द्वीप अंग्रेजों के पास रहेंगे। इसे अतिरिक्त गुजरात में जो प्रदेश राघोबा द्वारा दिये गये थे वे सब मराठों को लौटा दिये जायेंगे। गुजरात में अंग्रेजों द्वारा विजित प्रदेश पेशवा तथा गायकवाड़ को वापस दिये जायेंगे, जिन पर उनका अधिकार था।

अंग्रेज राघोबा का साथ छोड़ देगे और उसे किसी प्रकार की सहायता न देने का वायदा किया। वह अपना स्थान चुन लेगा और पेशवा द्वारा उसे पच्चीस हजार रूपये मासिक पेशन दी जायेगी। गायकवाड़ को पेशवा के अधीन स्वीकार किया गया।

दोनों ने भविष्य में एक–दूसरे पर आक्रमण न करने का आश्वासन दिया और महादजी सिंधिया इस सन्धि के उचित पालन के लिए उत्तरदायी बनाये गये।

3.5.1 सन्धि का महत्त्व :

पाश्चात्य लेखकों ने सन्धि को वारेन हेस्टिंग्ज की महान् सफलता माना है। स्मिथ ने जिक्र किया है कि, ''इस सन्धि ने भारत में अंग्रेजी प्रभुत्व को पुनः स्थापित किया। वारेन हेस्टिंग्ज स्वयं ने स्वीकार किया था कि ''मैने निजाम एवं मुदो भोंसले से गुप्त रूप से सम्बन्ध स्थापित किये और इन्हें अपना मित्र बनाया, और तीसरे (महादजी सिंधिया) को समझौते आदि द्वारा शान्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का साधन बनाया।'' पाश्चात्य लेखक यह स्वीकार करते है कि अंग्रेजों को एक इंच भी भूमि नहीं मिली। वस्तुतः यह सन्धि अंग्रेजों की असफलता की प्रतीक थी, उन्होंने समस्त जीते हुए क्षेत्र मराठों को लौटाये। अंग्रेजों की सफलता केवल इस बात में निहित है कि विकट परिस्थितियों में गुट के सदस्यों को तोड़ने में सफल रहे तथा जब उनकी स्थिति खराब थी। तत्काल सन्धि करना उचित समझा जो उनकी दूरस्थ राजनीतिक सूझबूझ को इंगित करती है भारत में पहली बार विस्तृत स्तर पर युद्ध करने के बावजूद उनके हौसले पस्त नहीं हुए थे।

जहां तक मराठों का सवाल है विपरीत परिस्थितियों में एकता बनाये रखी गई। विद्वानों की धारणा है कि 'मराठों के साथ बीस वर्षों तक सन्धि रही। इस अवधि ने अंग्रेजों को टीपू और फ्रांसीसियों जैसे दूसरे शत्रुओं से लड़ने तथा निजाम एवं अवध के नवाब को अपने नियंत्रण में लाने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया। परिणामतः मुगल बादशाह शाहआलम द्वारा अपने को पूरी तरह मराठों के हाथों में सौपना उसकी विशेष नीति का अंग बनी। दूसरी और अंग्रेजों की वास्तविक राजनीतिक स्थिति को स्वीकार करते हुए बंगाल पर अधिकर एवं अवध पर उनके प्रभाव को सन्धि द्वारा मान्यता मिली। इस युद्ध ने अंग्रेजों को भारी वित्तीय संकट में डाल दिया था इसीलिए चेतसिंह तथा अवध की बेगमों को अनैतिक रूप से लूटकर युद्ध के खर्चे को पुरा करने की कोशिश गवर्नर जनरल ने की।

इस सन्धि का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि अंग्रेजों ने मॉटसन (मोस्टिन) जैसे कूटनीतिज्ञों के माध्यम से मराठों के आन्तरिक मतभेद आदि का अच्छा अध्ययन कर लिया था। संघ की दुर्बलताओं को जान लेने का ही परिणाम था कि मुदोजी भोंसले को वारेन हेस्टिंग्ज तटस्थ रखने में सफल हो गया।

3.6 वेलेजली और द्वितीय मराठा युद्ध :

वारेन हेस्टिग्ज अपने कार्यकाल की समाप्ति के बाद 1785 में इंग्लैण्ड चला गया। हेस्टिग्ज के बाद मेकफर्सन ने 1785–86 तक 21 महीने तक कार्यवाहक गवर्नर जनरल के रूप में कार्य किया। सितम्बर 1786 मे कार्नवालिस गवर्नर जनरल बनकर भारत आया। 1784 मे ब्रिटिश संसद ने पिट्ट इण्डिया एक्ट पारित कर दिया था, जिसमें यह स्पष्ट कर दिया गया था कि भारत मे कम्पनी देशी रियासतों के प्रति अहस्तक्षेप की नीति का पालन करेगी। कार्नवालिस ने भारत मे जहां तक संभव हो सका, इस नीति का पालन किया। 1793 मे वह वापिस इंग्लैण्ड चला गया। 1793 में ही सर जॉन शोर को गवर्नर जनरल पद पर नियुक्त किया गया। उसने भी कार्नवालिस की नीति का अनुसरण किया। 1795 में हैदराबाद के निजाम व मराठों के बीच खरदा का युद्ध हुआ। इस अवसर पर निजाम ने अंग्रेजों से सहायता देने की प्रार्थना की, किन्तु सर जॉन शोर ने अहस्तक्षेप की नीति के कारण निजाम को सहायता देने से इन्कार कर दिया। फलस्वरूप निजाम, मराठो से पराजित हुआ और उसे अपमानजनक सन्धि के लिए विवश होना पड़ा। 1798 में सर जॉन शोर को वापिस इंग्लैण्ड बुला लिया गया और उसके स्थान पर लार्ड वेलेजली को गवर्नर जनरल बना कर भारत भेजा गया।

साल्बाई की सन्धि के बाद 20 वर्ष तक शान्ति रही। इस अवधि में मराठा अपने अन्य शत्रुओं से निपटते रहे। नाना फड़नवीस के नेतृत्व में उत्तरी व दक्षिण भारत में मराठों का प्रभाव फैलने लगा। इस अवधि में महादजी सिन्धिया की शक्ति में वृद्धि हुई तथा पेशवा की शक्ति का ह्रास हुआ। पेशवा माधवराव द्वितीय के काल में नाना फड़नवीस मराठा संघ का सर्वेसर्वा बन गया था 1796 में पेशवा माधवराव द्वितीय की मृत्यु को गई तथा बाजीराव द्वितीय पेशवा की मनसब पर बैठा।

3.6.1 मराठों मे आपसी संघर्ष :

पेशवा बाजीराव द्वितीय सर्वथा अयोग्य था। 13 मार्च, 1800 को नाना फड़नवीस की मृत्यु को गई। जब तक नाना जीवित रहा उसने मराठों में एकता बनाये रखी। किन्तु उसकी मृत्यु के बाद मराठा सरदारों में आवसी संघर्ष प्रारम्भ हो गये। दो मराठा सरदारों – ग्वालियर का शासक दौलतराव सिन्धिया तथा इन्दौर का शासक जसवन्तराव होल्कर के बीच इस बात पर प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हो गयी कि पेशवा पर किसका प्रभाव रहे। पेशवा बाजीराव द्वितीय निर्बल व्यक्ति था, अतः वह भी किसी शक्तिशाली मराठा सरदार का संरक्षण चाहता था। अतः वह दौलतराव सिन्धिया के संरक्षण में चला गया। अब बाजीराव व सिन्धियाने होल्कर के विरूद्ध संयुक्त मोर्चा बना लिया। होल्कर के लिये यह स्थिति असहनीय थी। फलस्वरूप 1802 के प्रारम्भ में सिन्धिया व होलकर के बीच युद्ध छिड़ गया। जब होल्कर मानवा में सिन्धिया की सेना के साथ युद्ध में व्यस्त था पूना में पेशवा ने होल्कर के भाई बिट्ठुजी की हत्या करवा दी। अतः होल्कर अपने भाई का बदला लेने पूना की और चल पड़ा। पूना के पास होल्कर ने पेशवा और सिन्धिया की संयुक्त सेना को पराजित किया और एक विजेता की भांति पूना में प्रवेश कियां होल्कर ने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राघोबा के दत्तक पुत्र अमृतराव के बेटे विनायकराव को पेशवा घोषित किया। पेशवा भयभीत हो गया तथा भागकर बसीन (बम्बई के पास अंग्रेजो की बस्ती) चला गया। बसीन में उसने वेलेजली से प्रार्थना की कि वह उसे पेशवा बनाने में सहायता दे। वेलेजली भारत में कम्पनी की सर्वोपरि सत्ता स्थापित करना चाहता थ। मैसूर की शक्ति नष्ट करने के बाद अब मराठे ही उसके एक मात्र प्रतिद्वन्दी रह गये थे। अतः वह मराठा राजनीति में हस्तक्षेप करने का अवसर ढूंढ रहा था। पेशवा द्वारा प्रार्थना करने पर वेलेजली को अवसर मिल गया। वेलेजली ने पेशवा के समक्ष शर्त रखी कि यदि वह सहायक सन्धि स्वीकार करलें तो वह उसे पुनः पेशव बनाने में सहायता दे सकता है। पेशवा ने बेलेजली की शर्त की स्वीकार कर लिया और 31 दिसम्बर, 1802 को पेशवा और कम्पनी के बीच बसीन की सन्धि हो गयी, जिसकी मुख्य शर्तें निम्न थी –

1. पेशवा अपने राज्य में 6,000 अंग्रेज सैनिक की एकसेना रखेगा तथा इस सेना के खर्चे के लिये 26 लाख रूपये वार्षिक आय का भूभाग अंग्रेजों को देगा।

2. पेशवा बिना अंग्रेजों की अनुमति के मराठा राज्य में किसी अन्य यूरोपियन की नियुक्ति नहीं देगा और न अपने राज्य में रहने की अनुमति देगा।

3. पेशवा सूरत से अपना अधिकार त्याग देगा।

4. पेशवा के जो निजाम और गायकवाड़ के साथ झगड़े है, उन झगड़ों के पंच निपटारे का कार्य कम्पनी को सौप दिया जायेगा।

5. भविष्य में किसी राज्य के साथ युद्ध, सन्धि अथवा पत्र व्यवहार बिना अंग्रेजों की अनुमति के नहीं करेगा।

3.6.2 बसीन की सन्धि का महत्त्व :

बसीन की सन्धि भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण घटना है। इस सन्धि के द्वारा पेशवा ने मराठों के सम्मान एवं स्वतन्त्रता को अंग्रेजों के हाथों बेच दिया था, जिससे मराठा शक्ति की प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा। किन्तु अंग्रेजों के लिए यह सन्धि अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। सिड़नी ओवन ने लिखा है कि इस सन्धि के पश्चात् सम्पूर्ण भारत में कम्पनी का राज्य स्थापित हो गया। वास्तव में इस सन्धि का महत्त्व आवश्यकता से अधिक बताया गया। इस सन्धि का सबसे बड़ा दोष यह था कि अंग्रेजों का मराठों से युद्ध प्रायः निश्चित हो गया, क्योंकि वेलेजली ने मराठों के आन्तरिक झगड़ों को तय करनेका उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था। वेलेजली ने कहा था कि इससे शान्ति तथा व्यवस्था बनी रहेगी, किन्तु उसके परिणामस्वरूप सबसे व्यापक युद्ध हुआ। वेलेजली ने सन्धि का औचित्य बताते हुए कहा था कि अंग्रेजों को मराठों के आक्रमण का भय था, किन्तु जब मराठे स्वयं अपने पारस्परिक झगड़ों में उलझे हुए थे, तब फिर अंग्रेजों पर आक्रमण करने का प्रश्न ही कहां उत्पन्न होता है। वस्तुतः वेलेजली भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार पर तुला हुआ था और वह मराठों को ऐसी सन्धि मं उलझा देना चाहता था जिससे कि ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार निर्बाध रूप से होत रहे। अतः वसीन की सन्धि ने ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा कर दी थी।

3.6.3 द्वितीय आंग्ल– मराठा युद्ध :

बसीन की सन्धि के बाद मई–जून 1803 में बाजीराव द्वितीय को अंग्रेजों के संरक्षण में पुनः पेशवा बना दिया गया। किन्तु बसीन की सन्धि में मराठा सरदारों के आत्म–गौरव पर भारी आघात पहुँचा, क्योंकि पेशवा ने मराठों की इज्जत व स्वतन्त्रता बेच दी थी। मराठा सरदार इसे सहन करने को तैयार नहीं थे। अतः उन्होंने पारस्परिक वैमनस्य को भुलाकर अंग्रेजों के विरूद्ध एक होने का प्रयत्न किया। सिन्धिया और भोंसले तो एक हो गये, किन्तु सिन्धिया व होल्कर की शत्रुता अभी ताजा थी। अतः वह पूना छोड़कर मालवा चला गया। गायकवाड़ अंग्रेजों का मित्र था। अतः उसने भी इस अंग्रेज विरोधी संघ में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार केवल सिन्धिया व भोंसले ने अंग्रेजों के विरूद्ध सैनिक अभियान की तैयारी आरम्भ कर दी। जब वेलेजली को इसकी सूचना मिली तो उसने 7 अगस्त, 1803 को मराठों के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और एक सेना अपने भाई आर्थर वेलेजली तथा दूसरी जनरल लेक के नेतृत्व में मराठों के विरूद्ध भेज दी।

आर्थर वेलेजली ने सर्वप्रथम अहमदनगर पर विजय प्राप्त की। तत्पश्चात अजन्ता व एलोरा के पास असाई नामक स्थान पर सिन्धिया व भोंसले की संयुक्त सेना को पराजित किया। अरगढ़ व अरगांव के युद्धो में मराठा पूर्णरूप से पराजित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हुए। अरगांव में पराजित होने के बाद 17 दिसम्बर, 1803 को भोंसले अंग्रेजों से देवगढ़ की सन्धि कर ली। इस सिन्ध के अन्तर्गत भोंसले ने वेलेजली की सहायक सन्धि की सभी शर्तों को स्वीकार कर लिया। केवल एक शर्त, राज्य में कम्पनी की सेना रखने सम्बन्धी शर्त स्वीकार नहीं की और वेलेजली ने भी इस शर्त को स्वीकार करने के लिये जोर नहीं दिया। इस सन्धि के अनुसार कटक व वर्धा नदी के आसपास के क्षेत्र अंग्रेजों का दे दिये गये।

इधर जनरल लेक ने उत्तरी भारत की विजय यात्रा आरम्भ की। उसने सर्वप्रथम अलीगढ़ पर अधिकार किया। तत्पश्चात दिल्ली पर आक्रमण किया और भरतपुर के शासक से सहायक सन्धि की। भरतपुर से वह आगरा की और बढ़ा तथा आगरा पर अधिकार किया। अन्त में लासवाड़ी नामक स्थान पर सिन्धिया की सेना पूर्णतः पराजित हुई। अब सिन्धिया ने भी अंग्रेजों से सन्धि करना उचित समझा। फलस्वरूप 30 दिसम्बर, 1803 को सुर्जीअंजनगांव की सन्धि हो गयी। इस सन्धि के अनुसारसिन्धिया ने दिल्ली, आगरा, गंगा–यमुना का दोआब, बुन्देलखण्ड, भडौच, अहमदनगर का दुर्ग, गुजरात के कुछ जिले, जयपुर व जोधपुर अंग्रेजों के प्रभाव में दे दिये। उसने कम्पनी की सेना को भी अपने राज्य में रखना स्वीकार कर लिया। अंग्रेजों ने सिन्धिया को पूर्ण सुरक्षा का आश्वासन दिया।

सिन्धिया व भोंसले ने बसीन की सन्धि को भी स्वीकार कर लिया था। इन विजयों से वेलेजली खुशी से उछल पड़ा और घोषणा की कि, "युद्ध के प्रत्येक लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है और इससे सदैव शान्ति बनी रहेगी।" किन्तु वेलेजली का उक्त कथन ठीक न निकला, क्योंकि शांति शीघ्र ही संकटग्रस्त हो गई।

3.6.4 होल्कर से युद्ध :

मराठा राज्य का प्रमुख स्तम्भ होल्कर, जो अब तक इन घटनाओं के प्रति उदासीन था, सिन्धियाव भोंसले के आत्मसमर्पण के बाद अंग्रेजों से युद्ध करने का निर्णय लिया और अप्रैल 1804 में संघर्ष छेड़ दिया। उसने सर्वप्रथम राजपूताना में कम्पनी के मित्र राजयों पर आक्रमण किया। वह अंग्रेजों के लिए चुनौती थी। अतः बेलेजली ने कर्नल मॉन्सन के नेतृत्व में एक सेना भेज दी। कर्नल मॉन्सन राजपूताने के भीतर तक घुस गया। होल्कर ने कोटा के निकट मुकन्दरा दर्रे के युद्ध में मॉनसन को पराजित किया तथा उसे आगरा की और लौटने के लिए विवश कर दिया। तत्पश्चात होल्कर ने भरतपुर पर आक्रमण करके वहां के शासक से सन्धि करली। यद्यपि भरतपुर के शासक ने अंग्रेजों से सन्धि करली किन्तु इस समय उसने अंग्रेजों की सन्धि को ठुकरा दिया तथा होल्कर का समर्थन किया। यहां से होल्कर दिल्ली की और गया तथा दिल्ली को चारों और से घेर लिया, लेकिन दिल्ली पर विजय प्राप्त न कर सका। दिल्ली पर होल्कर के दबाव को कम करने के लिये अंग्रेजों ने जनरल मूरे को होल्कर की राजधानी इन्दौर पर अधिकार कर लिया। जब होल्कर को इन्दौर पतन की सूचना मिली तो वह दिल्ली का घेरा उठा कर इन्दौर की और रवाना हुआ। रास्ते में डी नामक स्थान पर ब्रिटिश सेना से उसका भीषण संग्राम हुआ किन्तु यह युद्ध अनिर्णायक रहा। होलकर को भारी क्षति उठानी पड़ी। तत्पश्चात फर्रूखाबाद में होल्कर पराजित हुआ और पंजाब की तरफ भाग गया। इस युद्ध में भी होल्कर की शक्ति को पूरी तरह से नहीं कुचला जा सका।

भरतपुर के शासक ने होल्कर का समर्थन किया था, अतः जनरल लेक ने भरतपुर के दुर्ग को घेर लिया। जनरल लेक ने दुर्ग पर अधिकार करने के लिए 9 जनवरी से 21 फरवरी, 1805 के बीच चार बार आक्रमण किये, किन्तु उसे कोई सफलता नहीं मिली। अन्त में अप्रैल 1805 में उसे भरतपुर के राजा से शान्ति सन्धि करनी पड़ी। जनरल लेक की यह भंयकर भूल थी कि वह व्यथ ही भरतपुर में उलझा पड़ा रहा। यदि लगे हाथ होल्कर से निपट लिया जाता तो भरतपुर तो स्वतः ही बाद में अंग्रेजों की अधीनता में आ जाता। किन्तु उसकी मूर्खता से न तो होल्कर की शक्ति को ही नष्ट किया जा सका और न भरतपुर पर ही अधिकार हो सका। इस असफलता के कारण ब्रिटिश सरकार व बोर्ड आफ डायरेक्टर्स बड़े चिंतित हुए। इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्र पिट्ट ने भी वेलेजली की कटु आलोचना की। फलस्वरूप वेलेजली को त्यागपत्र देकर जाना पड़ा।

3.7 लार्ड हेस्टिंग्ज व तृतीय मराठा युद्ध :

अगस्त, 1805 में वेलेजली भारत से चला गया। उसके स्थान पर लार्ड कार्नवालिस को पुनः भारत भेजा गया। किन्तु यहां आने के कुछ ही महीनों बाद गाजीपुर में उसकी मृत्यु को गयी। अतः जार्ज बार्लो को गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया। कार्नवालिस व जार्ज बार्लो दोनों ने देशी राज्यों के प्रति अहस्तक्षेप की नीति का पालन किया और मराठों के प्रति उदारता की नीति अपनाई। फलस्वरूप 22 नवम्बर, 1805 को सिन्धिया से एक नई सन्धि की गई, जिसके अनुसार उसे ग्वालियर व गोहद के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दुर्ग तथा उसका उत्तरी चम्बल का भूभाग लौटा दिया। कम्पनी ने राजपूत राज्यों को अपने संरक्षण में लेने का विचार त्याग दिया। फलस्वरूप राज्यों पर पुनः मराठों का प्रभाव स्थापित हो गया। इसी प्रकार 7 जनवरी, 1806 को होल्कर के साथ भी सन्धि करके उसे उसके अधिकांश क्षेत्र लौटा दिये। तत्पश्चात् 1807 में लार्ड मिण्टो गवर्नर जनरल बनकर आया। उसने भी अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया। इन तीनों की नीतियों के फलस्वरूप मराठों ने अपनी शक्ति पुनः संगठित करली। इधर पिंडारी भी, जो आरम्भ में मराठों के सहयोगी थे, अपनी स्वयं की शक्ति बढ़ा रहे थे। ऐसी परिस्थितियों मे 1813 में लार्ड हेस्टिंग्ज गवर्नर जनरल बनकर भारत आया। लार्ड हेस्टिंग्ज मराठा शक्ति को पूरी तरह समाप्त कर राजपूत राज्यों पर ब्रिटिश संरक्षण स्थापित करना चाहता था। लार्ड हेस्टिंग्ज ने सर्वप्रथम पिंडारियों की शक्ति को नष्ट करने की योजना बनायी, क्योंकि उसे भय था कि कहीं पिंडारी, मराठों का पक्ष लेकर युद्ध आरम्भ न करे दे। अतः पिंडारियों से युद्ध करने से पूर्व 27 मई, 1816 में भोंसले के साथ तथा तथा 5 नवम्बर, 1817 में सिन्धिया के साथ समझौता किया गया। इस समझौता में उन्होंने पिंडारियों को कुचलने के लिये अंग्रेजों को समर्थन देने का वादा किया तथा सिन्धिया नेचम्बल नदी से दक्षिण पश्चिम के राज्यों पर से अपना प्रभाव हटा लिया।

3.7.1 वेलेजली और कार्नवालिस तथा तृतीय मराठा युद्ध :

मराठा संघ के तीन स्तम्भों (पेशवा, सिन्धिया और भौसले) के पतन के बाद अब केवल होल्कर ही शेष था जो वेलेजली के चंगुल से बाहर था। इन्दौर के इस मराठा शासक ने द्वितीय मराठा युद्ध में भौसले और सिन्धिया का साथ नहीं दिया था, पर मराठों की इस अपमानजनक पराजय से उसके जातीय अभिमान को इतनी ठेस पहुंची कि उसने अंग्रेजों से बदला लेने का निश्चय कर लिया। उधर वेलेजली भी होल्कर को अपने संरक्षण में लेकर मराठों की बची–खुची शक्ति को नष्ट करने का प्रयास करने लगा। तुरन्त ही उसे युद्ध का बहाना मिल गया। होल्कर ने जयपुर राज्य पर आक्रमण किया जो अंग्रेजों का मित्र था और वेलेजली ने होल्कर की कार्यवाही को अस्वीकार कर उसके विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

जयपुर राज्य की सहायता के बहाने वेलेजली ने होल्कर पर आक्रमण कर दिया। मराठा सरदार ने मराठों की प्राचीन गोरिल्ला पद्धति का प्रयोग करते हुए कर्नल मॉनसन को हराया। होल्कर ने दिल्ली पर अपना अधिकार जमाने का असफल प्रयत्न किया। शीघ्र ही उसे कई युद्धों में बुरी तरह परास्त होना पड़ा। वह पंजाब की तरफ भाग गया। उसने सिक्ख नरेश रणजीतसिंह से सहायता मांगी, किन्तु सिक्ख राजा ने अपने नए साम्राज्य के लिए अंग्रेजों की शत्रुता मोल लेना उचित नहीं समझा, अन्त में, होल्कर भागकर भरतपुर चला गया। भरतपुर का सुदृढ़ दुर्ग जाट राजा के अधिकार में था। जनरल लेक ने चार बार भीषण आक्रमण किया, किन्तु दुर्ग नहीं जीता जा सका। ब्रिटिश सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी। जनरल लेक ने भरतपुर के राजा के साथ सन्धि करली। इसी बीच कम्पनी के संचालकों ने वेलेजली के निरन्तर युद्ध से तंग आकर उसे पुनः इंग्लैण्ड बुला लिया।

3.7.2 लॉर्ड कार्नवालिस तथा सर जॉर्ज बार्लो की मराठा नीति :

वेलेजली के लौटने के बाद लॉर्ड कार्नवालिस पुनः भारत का गर्वनर जनरल बनकर आया। उसने देखा कि भारत की स्थित एकदम परिवर्तित हो गई थी। होल्कर और सिन्धिया पुनः संयुक्त होकर अंग्रेजों के विनाश की योजना बना रहे थे और निरन्तर युद्धों के कारण कम्पनी का कोष रिक्त हो गया था। अतः कार्नवालिस ने युद्ध बन्द कर सन्धि करने की नीति अपनाई। उसने सिन्धिया से छीने गए कुछ प्रदेश लौटाकर उससे सन्धि करली। वह सिन्धिया को दिल्ली भी लौटाने को तैयार था कि इसी बीच 5 अक्टुबर, 1805 ई. को उसकी मृत्यु को गई।

कार्नवालिस के बाद जॉर्ज बार्लो अस्थायी रूप से भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। उसने सिन्धिया के साथ एक नई सन्धि कर उसे ग्वालियर और गोहाद लौटा दिया। चम्बल नदी कम्पनी राज्य और सिन्धिया के राज्य की सीमा निश्चित हुई। कम्पनी ने राजपूताने के राजपूत राज्यों पर से भी अपना संरक्षण हटा लिया। पराजित मराठा सरदार होल्कर के साथ भी एक सम्मानजनक सन्धि की गई। जनवरी, 1806 ई. की इस सन्धि के अनुसार होल्कर ने चम्बल नहीं के उत्तर के अपने सारे प्रदेश अंग्रेजों का दे दिए। चम्बल नदी के दक्षिण में अंग्रेजो ने होल्कर के जो प्रदेश जीते थे, वे सब लौटा दिए।

तृतीय मराठा युद्ध ने मराठों की शक्ति को काफी कम कर दिया और साथ ही मराठों और अंग्रेजों के बीच हुई सन्धियों से राजपूत, जो अंग्रेजों के मित्र थे, मराठों की दया पर छोड़ दिए गए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.8 चतुर्थ मराठा युद्ध तथा मराठों का पतन :

1813 ई. में लॉर्ड हेस्टिंग्ज भारत में कम्पनी के प्रदेशों का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। उसे भारत में इस संकलप के साथ भेजा गया कि वह देशी राज्यो के कार्यों में हस्तक्षेप न करने की नीति का अनुसरण करेगा, लेकिन परिस्थितियो से विवश होकर उसे भारतीय मामलों मे हस्तक्षेप करना ही पड़ा। कई शत्रुओं में ऐसे खतरे थे कि केवल हस्तक्षेप की नीति ही कम्पनी के हितो की रक्षा कर सकती थी। जब 1823 ई. में वह भारत से गया तो कम्पनी के लिए एक शक्तिशाली सम्राज्य छोड़ गया था। उसके काल की मुख्य घटनाएं नेपाल मराठो और पिण्डारियों से युद्ध था। इस इकाई में आंग्ल–मराठा सम्बन्धों की चर्चा की जाएगी।

जब लॉर्ड हेस्टिंग्ज गवर्नर जनरल होकर भारत आया तो कम्पनी की स्थिति सुदृढ़ थी, लेकिन पूर्ववर्ती गवर्नर जनरलों द्वारा निहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण करने से देशी राज्यों को षड्यन्त्रों और कुचक्रों के अवसर मिल गए थे। मराठे अपने पड़ौसी राज्यों से लूट–मार करने लगे थे। वे अपने खोए हुए प्रदेशों को फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। मराठों की शक्ति में वृद्धि अंग्रेजों के लिए गम्भीर चुनौती बन सकती थी। भारत में लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने नेपाल के खोरखों और मध्य प्रदेश, राजपूताना आदि के पिण्डारियों का दमन करने के बाद मराठों के विनाश की ओर ध्यान दिया। पिण्डारियों से संघर्ष करते समय भी लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि कहीं उन्हें मराठों की सहायता और संरक्षण प्राप्त न हो जाए।

बेलेजली ने मराठों की शक्ति को छिन्न–भिन्न कर कम्पनी के राज्य–विस्तार का सफल प्रयत्न किया था, लेकिन उसकी निरन्तर युद्धों की नीति से तंग आकर उसे बीच में ही वापस इंग्लैण्ड बुला लिया गया। लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने भारत में आकर जब समझ लिया कि निहस्तक्षेप की नीति काम नहीं दे सकती तो नेपाल और पिण्डारियों से निपटने के बाद उसने मराठों की शक्ति को समाप्त कर कम्पनी को भारत को सार्वभौम शक्ति बनाने का निश्चय कर लिया। सौभाग्यवश तत्कालीन परिस्थितियां भी लॉर्ड हेस्टिंग्ज के अनुकूल थी।

कारण – शीघ्र ही वे परिस्थितियां पैदा हो गई जिनके कारण अंग्रेजों को मराठों से चौथा और निर्णायक युद्ध छिड़ गया। निम्नलिखित परिस्थितियां चतुर्थ मराठा युद्ध को सन्निकट ले आई –

1. मराठा दूसरे और तीसरे युद्ध की पराजय का प्रतिकार करना चाहते थे। मराठा सरदार अपने इस अपमान का कारण पारस्परिक फूट समझते थे अतः वे परस्पर सुसंगठित होने के प्रयत्नों में संलग्न थे।

2. पेशवा बाजीराव द्वितीय अंग्रेजों के नियन्त्रण से मुक्त होने के लिए मराठों को संगठित करने में व्यस्त था और पूना स्थित अंग्रेज रेजीडेण्ट उसकी गतिविधियों को बड़े सन्देह की दृष्टि से देख रहा था।

3. युद्ध का तात्कालिक कारण यह था कि बड़ौदा का मराठा शासक गायकवाड़ अंग्रेजों के सरक्षण में चला गया था, किन्तु पेशवा पर उसके कुछ दावे थे। पेशवा के साथ अपने विवाद निपटाने के लिए गायकवाड़ ने अपने मन्त्री गंगाधन को पूना भेजा। दुर्भरूवश वहां गंगाधर का वध कर दिया गया। अंग्रेजों ने पेशवा के मन्त्री त्र्यम्बक को हत्या के लिए उत्तरदायी ठहराकर बन्दी बना लिया। त्रयम्बक किसी प्रकार कैदखाने से भाग छूटा और अंग्रेजों के इस षड्यत्र के लिए पेशवा को उत्तरदायी ठहराया।

4. जून, 1818 ई. में पूना स्थित अंग्रेज रेजीडेण्ट ऐल्फिस्टन ने पेशवा को एक सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया जिसके अनुसार उसे मराठों की प्रधानता छोड़ने को विवश कर दिया गया और साथ ही उस पर अनेक कठोर शर्तें आरोपित की गई।

इस घटना–चक्र के कारण स्वभावतः पेशवा ने अपनी स्वतन्त्रता और प्रभुता की रक्षा के लिए अंग्रेजों से युद्ध छेड़ दिया।

उल्लेखनीय है कि इन दिनों मराठा–संघ में पांच प्रमुख सदस्य थे – पेशवा, सिन्धिया, भोंसले, होल्कर और गायकवाड़। चूंकि गायकवाड अंग्रेजों से पहले ही जा मिला था, अतः हेस्टिंग्ज को केवल चार मराठा शासकों – पेशवा ,भौसले, होल्कर और सिन्धिया का अन्त करना था।

3.8.1 पेशवा से संघर्ष :

सर्वप्रथम उपरोक्त कारणवश पेशवा और अंग्रेजों में संघर्ष हुआ। अपनी प्रभुता की रक्षा के लिए पेशवा ने पूना की अंग्रेज रेजीडेंसी पर आक्रमण करके उसमें आग लगा दी और वहां से चार मील दूर किरकी नामक स्थान पर अंग्रेजी शिविर पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आक्रमण कर दिया। लेकिन शीघ्र ही अंग्रेजों की शक्तिशाली सेना ने वहां पहुंचकर पेशवा को परास्त कर, आत्म समर्पण करने को बाध्य कर दिया। लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने पेशवा के साथ बहुत कठोर व्यवहार किया। उसका अधिकांश राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। उसे 8 लाख रूपये वार्षिक पेंशन देकर कानपुर के निकट बिठूर में रहने की आज्ञा दी गई, जाहं 1853 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। पेशवा के राज्य का कुछ भाग शिवाजी के एक वंशज को दे दिया और सतारा उसकी राजधानी बना दी गई। पेशवा के मन्त्री त्र्यम्बकराय को आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया। इस प्रकार लॉर्ड हेस्टिंग्ज नेपेशवा का पूरी तरह विनाश कर दिया।

3.8.2 भौंसले के साथ संघर्ष :

पेशवा के साथ ही हेस्टिंग्ज ने भौसले को भी समाप्त करने का निश्चय किया। 1816 ई. में राघोजी सिन्धिया की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र परसोजी नागपुर की गद्दी पर बैठा। शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता के कारण उसके एक संरक्षक की आवश्यकता थी। संरक्षक के इस पद के लिए राघोजी की विधवा पत्नी और उसे भतीजे अप्पा साहब में गृह–कली शुरू हो गए। लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने इस फूट का लाभ उठाकर अप्पा साहब के साथ एक सहायक सन्धि सम्पन्न की जिससे भौसले की स्वतन्त्रता लगभग समाप्त हो गई। राज्य की शक्ति अपने हाथ में आते ही अप्पा साहब ने पेशवा परसोजी का वध करवा दिया और खुदनागपुर की गद्दी पर बैठ गया।

जब पेशवा बाजीराव से अंग्रेजों का संघर्ष छिड़ा तो अप्पा साहब ने भी स्वयं को अंग्रेजी प्रभाव से मुक्त करने का उपयुकत अवसर समझा। 1817 ई. में उसने भी अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उसे पराजित होना पड़ा। कुछ ही समय बाद नागपुर के कुद्ध में उसकी सेना की करारी हार हुई। निराश होकर वह पंजाब की और भाग गया। भौसला राज्य पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। नर्मदा नदी के उत्तर में स्थित भौसला के प्रदेशों को कम्पनी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया और शेष भाग राघोजी भौसला के पौत्र को दे दिया गया। अप्पा साहब भौसले की, जो पंजाब की और भाग गया था, 1840 ई. में मृत्यु हो गई।

3.8.3 होल्कर के साथ संघर्ष :

लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने होल्कर के राज्य को भी नहीं बख्शा। इस राज्य की दशा दिन–प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। जसवंतराव होल्कर की पत्नी तुलसी बाई की हत्या को जाने के बाद तो राज्य की स्थिति और भी खराब हो गई। पेशवा बाजीराव द्वारा संघर्ष छेड़ देने पर होल्कर ने भी, अंग्रेजों से अपनी रक्षा का उपर्युक्त अवसर देखकर पेशवा के पक्ष में युद्ध की घोषणा कर दी। दिसम्बर, 1817 ई. में अंग्रेजों और होल्कर की सेनाओं में सिपरा नदीं के किनारे महीदपुर नामक स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। होल्कर की सेना पराजित हुई और 6 जनवरी, 1818 ई. को मन्सौर नामक स्थान पर होल्कर को अंग्रेजों के साथ एक सहायक सन्धि करनी पड़ी जिसके अनुसार उसने कम्पनी की अधीनता स्वीकार कर ली और अपने राज्य में अंग्रेजी सहायक सेना रखना स्वीकार कर लिया। होल्कर की सेना की संख्या 3 हजार निश्चित कर दी गई। होल्कर ने राजपूत राज्यों तथा अमीरखाँ पठान के राज्य पर अपना दावा त्याग दिया और सतपुड़ा के दक्षिण का अपना समूचा राज्य कम्पनी को दे दिया। यह भी तय हुआ कि होल्कर अंग्रेजों की अनुमति के बिना किसी राज्य के साथ पत्र–व्यवहार नहीं करेगा।

3.8.4 सिन्धियां एवं गायकवाड के साथ नई सन्धियां :

पेशवा, भौसले और होलकर की शक्ति का अन्त करने के बाद मराठा संघ में केवल सिन्धिया और गायकवाड़ ही शेष रहे। यद्यपि इन दोनों ने ही, न तो अंग्रेजों के विरूद्ध कोई विद्रोह किया और न कोई षड्यन्त्र रचा, तथापि लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने इनको भी अपना शिकार बनाया उसका उद्देश्य तो मराठा शक्ति को समपूर्णत: कुचल देना था। अत: 1817 ई. में पिण्डरियों की सहायता करने का आरोप लगाकर लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने उन्हें पुन: नई सन्धियां करने को बाध्य किया। 1817 ई. में दौलतराव सिन्धिया से जो सन्धि की गई उसके द्वारा राजपूत राज्यों पर सिन्धिया का अधिकार समाप्त कर दिया गया और वे पुन: कम्पनी के संरक्षण में आ गए। सिन्धिया के साथ की गई 1818 ई. की सन्धि द्वारा अजमेर भी अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। गायकवाड़ के साथ जो सन्धि हुई उसके अनुसार उसने अपने राज्य में सहायक सेना की संख्या में वृद्धि करली और इस सेना के खर्चे के लिए अहमदाबाद का प्रदेश कम्पनी को सौप दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.9 चतुर्थ मराठा युद्ध के परिणाम :

चतुर्थ मराठा युद्ध के वास्तव में बड़े भयंकर परिणाम हुए। यह मराठों का अन्तिम राष्ट्रीय युद्ध था। जिसमें भी वे अंग्रेजों के विरूद्ध पूरी तरह एक न हो सके। ग्वालियर का सिन्धिया तथा बड़ौदा का गायकवाड़ इस युद्ध से अलग हो गए। अंग्रेजों से अधिक साधन सम्पन्न और विशाल देश के स्वामी तथा शूरवीर होने पर भी मराठा पारस्परिक विद्वेष के कारण सैनिक दृष्टि से निर्बल रहे और अंग्रेजों के प्रभुत्व में आ गए। जिन मराठों ने मुगल साम्राज्य की शक्ति को खण्ड–खण्ड कर दिया था, वे अंग्रेजों की बुद्धि और कूटनीति के शिकार बन गए। उन्होंने न केवल अपना साम्राज्य खोया बल्कि उनकी फूट से भारत का अधिकांश भाग भी पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ गया। मराठों की इस अन्तिम और निर्णायक पराजय के फलस्वरूप पेशवा, होल्कर, भौसले सभी अपने राज्य खो बैठे अथवा अपने अधिकांश प्रदेशों से हाथ धो बैठे। अब मराठे पूरी तरह अंग्रेजों के सरंक्षण में आ गए। इस प्रकार अंग्रेज अपने एक महान् प्रतिद्वन्दी को समाप्त करने में सफल हुए।

3.10 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – पुरन्दर की सन्धि कब हुई?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – सालबाई की सन्धि के महत्व पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – आंग्ल–मराठा संघर्ष को विस्तार से विवेचित किजिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 4
मराठों की असफलता के कारण

4.0 भूमिका
4.1 संगठन का अभाव
4.2 सामाजिक एकता और राष्ट्रीयता की भावना की कमी
4.3 दोषपूर्ण सैन्य संगठन
4.4 अनिश्चित आर्थिक व्यवस्था
4.5 प्रशासकीय दोष
4.6 देशी शक्तियों से शत्रुता
4.7 भौगोलिक ज्ञान की कमी
4.8 मैसूर तथा हैदराबाद का पतन
4.9 फ्रांसीसियों की शक्ति का उन्मुलन
4.10 कम्पनी की सबल शक्ति
4.11 बोध प्रश्न

4.0 भूमिका

पानीपत के युद्ध की पराजय से मराठा शक्ति को गरा धक्का लगा था। किन्तु 1782 की साल्बाई की सन्धि तक मराठा सरदारों ने अपनी खोयी प्रतिष्ठा को काफी अंशों तक पुनः प्राप्त कर लिया था। इस सन्धि के बाद मराठों के सामने प्रमुख रूप से दो कार्य थे – प्रथम तो टीपू की बढ़ती हुई शक्ति पर नियन्त्रण स्थापित करना और दूसरा उत्तर भारत में, विशेषकर दिल्ली में मराठों की सत्ता को पुनः स्थापित करना। इन दोनों कार्यों को पूरा करने का दायित्व मराठा राज्य के तत्कालीन दो महान् राजनीतिज्ञों ने अपने ऊपर लिया। इन दोनों ने पेशवाई के लड़खड़ाते हुए पैरों को बल प्रदान किया तथा अन्धकार में पड़े हुए मराठा राज्य को नवप्रकाश प्रदान किया। ये दोनों राजनीतिज्ञ थे – महादजी सिन्धियां और नाना फड़नवीस।

सिन्धिया वंश का प्रथम व्यक्ति राणोजी था। राणोजी को पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने एक जागीर प्रदान की थी और यहां से सिन्धिया वंश का उत्थान आरम्भ हुआ। राणोजी के पांच पुत्र थे, जिनमें से जयप्पा तथा दत्ताजी उनके वैध पुत्र थे और अन्य तीन–तुकोजी, महादजी तथा जोतिबा उसके अवैध पुत्र थे। महादजी के चारों भाई रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुए थे। पानीपत के युद्ध में महादजी किसी तरह बचकर भाग निकले। रास्ते में कुछ अफगान घुड़सवारों ने उन पर आक्रमण किया। इसमें यद्यपि महादजी के प्राण तो बच गये, किन्तु उनका एक पैर जीवनभर के लिए खराब हो गया सिन्धिया वंश में अब महादजी के अतिरिक्त कोई नहीं बचा था अतः वे सिन्धिया वंश की जागीर के उत्तराधिकारी बने।

महादजी प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने पाश्चात्य ढंग से प्रशिक्षित सेना के महत्त्व को समझा। अतः उसने अपनी सेना का पुनर्गठन किया। महादजी ने फ्रांसीसी सेनानायक डा. बायन ाके अपनी सेना में नियुक्त किया, जिसके निरीक्षण में सेना को पाश्चात्य ढंग से प्रशिक्षित किया गया। इस प्रकार महादजी ने शीघ्र ही एक सुदृढ़ सेना का गठन कर लिया। 1772 में महादजी के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप मुगल सम्राट् शाहआलम को दिल्ली के तख्त पर पुनः आसीन किया गया। पेशवा नारायणराव की हत्या के बाद पूना दरबार में जो संघर्ष आरम्भ हुआ, उसके कारण महादजी को दस वर्ष तक दक्षिण में रहना पड़ा। साल्बाई की सन्धि के बाद महादजी ने पुनः उत्तर भारत की और ध्यान दिया। पानीपत के तृतीय यद्ध में पराजय से मराठों की शक्ति और प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा था, लेकन गिरकर भी वे इतने सभंल गए कि एक बार फिर उत्तरी और दक्षिणी भारत में उनकी तूती बोलने लगी। साधन–सम्पन्न और शक्तिशाली मराठे अग्रेजों का सामना करने में सक्षम थे, पर दुर्भायवश फूट और अन्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दुर्बलाओं के कारण वे अंग्रेजों के सामने धराशयी हो गए। मराठों के इस दुर्भाग्यपूर्ण पतन के मूल में निम्नलिखित मुख्य कारण निहित थे –

4.1 संगठन का अभाव :

मराठों के पतन का सबसे बड़ा कारण संगठन और एकता का अभाव था। मराठों का विशाल साम्राज्य एक संवर्ग न होकर स्वयं में एक ढ़ीला–ढाला संघ जैसा था जिसकी प्रत्येक संवर्ग स्वतन्त्र थी। संघ की सभी इकाइयों के अधिकारी अलग–अलग बंटे हुए थे। सिन्धियां, होल्कर, भौसले, गायकवाड़ आदि मराठा सरदारों के अपने–अपने प्रदेश और अधिकार थे। वे स्वयं शक्ति–सम्पन्न थे और केन्द्रीय सत्ता का अस्तित्व उन्हीं की शक्तियों पर निर्भर था। केन्द्रीय सत्ता के निर्बल होने से ये मराठा सरदार आपस में संघर्षरत रहते थे। इतना ही नहीं उनके पारस्पिरिक सम्बन्ध भी अच्छे नहीं थे और वे एक–दूसरे को नीचा दिखाने में लगे रहते थे। नाना फड़नवीश और माधोजी जैसे नेता जब तक जीवित रहे, मराठा संघ शक्तिशाली रहा, लेकिन उनके बाद विघटनकारी प्रवृत्तियां इतनी प्रबल हो गई कि राष्ट्रीय संकट के समय भी मराठे एक न हो सके। अंग्रेजों ने मराठा सरदारों को एक–दूसरे से पृथक् रखने की नीति अपनाई और एक एक करके सबकी शक्ति का विनाश कर दिया।

4.2 सामाजिक एकता और राष्ट्रीयता की भावना की कमी :

मराठे अपनी राष्ट्रीयता, सादगी और आदर्श के कारण शक्तिशाली बने थे, लेकिन अंग्रेजों से संघर्ष आरम्भ होने तक वे अपनी इन सभी मौलिक शक्तियों को खो बैठे। सामन्त प्रथा और जाति प्रथा के भेदभाव ने उनकी राजनैतिक और सामाजिक एकता में दरारें डाल दीं। उनकी राष्ट्रीयता की भावना लुप्त हो गई। जिन हाथों ने मुगलों के अत्याचार से जनता की रक्षा करने का बीड़ा उठाया था, वे स्वयं ही जनता के भक्षक बन गए। लूटमार को उन्होंने अपनी आय का प्रमुख साधन बना लिया और बिना भेदभाव के सभी को लूटने लगे। अपनी सादगी खोकर उन्होंने मद्यपान, वेश्यागमन तथा शान–शौकत का रहन–सहन अपनाया। अपने इन सभी दोषों के कारण वे राजाओं, नवाबों और जन–साधारण में बदनाम होगए। संकटकाल में उन्हें सहायता नहीं मिल पाई।

4.3 दोषपूर्ण सैन्य संगठन :

मराठे शक्तिशाली थे, लेकिन दोषपूर्ण सैन्य संगठन के कारण उनकी सैनिक शक्ति निर्बल रही। लुक–छिप कर गुरिल्ला युद्ध लड़ने में वेनिपुण थे, पर मैदानी युद्ध करने की कला में पूर्णतः वे कुशल नहीं थे। अतः जब अंग्रेजों से मैदानी लड़ाइयां लड़नी पड़ी तो उन्हें बार–बार पराजित होना पड़ा। इतना ही नहीं, यूरोपीय ढंग पर अपनी सेनाएं संगठित करके भी उन्होंनें भूल की। वास्तविक भूल यूरोपीय ढंग पर सैन्य संगठन बनाने की नहीं थी वरन् इस बात में थी कि सैन्य संचालन के लिए विदेशियों पर आश्रित रहे, जिन्होंने उनके साथ विश्वासघात कियां स्वयं मराठों ने यूरोपीय ज्ञान को अपनाने की कोशिश नहीं की, अतः केवल यूरोपीय सैनिक प्रणाली की नकल करके वे अंग्रेजों जैसी शक्ति का मुकाबला नहीं कर सकते थे।

श्री यदुनाथ सरकार का यह कथन ठीक ही है कि यूरोपीय सेनाओं की वास्तविक शक्ति उनके ज्ञान और चरित्र–बल में छिपी थी, न कि उत्तम शास्त्रों में। इसके अतिरिक्त मराठे यूरोपीय सैनिक प्रणाली में होने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तनों से अनभिज्ञ रहें वे उतने उत्तम शास्त्र ढालने में असफल रहे जितने कि अंग्रेज ढाल सकते थे। मराठों के किले भी अंग्रेजी तोपों के सामने बंकार सिद्ध हुए। मराठा सैन्य शक्ति इसलिए भी निर्बल रही कि उन्होंने अश्वारोही सेना की अपेक्षा की और नौ–सेना के विकास पर ध्यान नहीं दिया।

4.4 अनिश्चित आर्थिक व्यवस्था :

मराठों ने अपने विशाल साम्राज्य के आर्थिक विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया। उनकी आय के साधन अनिश्चित और अस्थिर रहे। सदा धन की कमी बनी रही और लूट–पाट से प्राप्त आय ने उन्हें बदनाम भी कर दिया और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न भी नहीं बनाया। आर्थिक दृष्टि से हीन मराठों के लिए धनाढ्य और साधन–सम्पन्न अंग्रेजी कम्पनी का सामना करना कठिन हो गया।

Jan Vishwa Bharati Institute (Deemed University) Lucknow

4.5 प्रशासकीय दोष :

आर्थिक क्षेत्र में तो मराठों का प्रशासन दयनीय रहा ही, शिक्षा के विकास पर भी उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया जिसके फलस्वरूप सच्चे और ईमानदार कर्मचारियों व पदाधिकारियों का मिलना कठिन हो गया। जब स्वयं शासक ही नैतिक पतन की ओर बढ़ने लगे तो प्रशासन में भी भ्रष्टाचार का प्रकोप बढ़ता गया। मराठों के शासन का एक गम्भीर दोष यह भी था कि इसमें केवल सरदारों और मन्त्रियों का हाथ रहा, जन साधारण को कोई महत्त्व नहीं दिया गया, जिसके कारण मराठा शासन लोकप्रिय न बन सका। जनता साम्राज्य` प्रति उदासीन रही। उसकी सुरक्षा का भार उठाने के लिए वह तैयार नहीं हुई।

4.6 देशी शक्तियों से शत्रुता :

मराठों ने अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने के लिए अन्य देशी जातियों की सहातया की उपेक्षा की। राजपूत राज्यों के साथ उनका व्यवहार अमैत्रीपूर्ण रहा और सिक्खों से भी उनकी अनबन बनी रही। राजपूतों और सिक्खों के राज्यों में लूटमार मचाते रहने से मराठे उनकी सहानुभूति खो बैठे। राजपूत विवश होकर अंगेजों के सरक्षण में चले गए और उन्हीं के हाथ मजबूत करने लगे। यह भारत का दुर्भाग्य था कि मराठे, राजपूत औरसिक्ख मिलकर विदेशी शत्रुओं का मुकाबला नहीं कर सके। वे पारस्परिक ईर्ष्या और शत्रुता के शिकार रहे तथा अपने–अपने प्रदेश और साथ ही भारत की आजादी अंग्रेजों के हाथ गंवा बैठें।

4.7 भौगोलिक ज्ञान की कमी :

युद्ध में विजय पाने के लिए भौगोलिक ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। मराठे इस देश के निवासी होकर भी आसपास के क्षेत्र का समुचित भौगोलिक ज्ञान नहीं रखते थे जबकि अंग्रेज विदेशी होकर भी मराठा देशों की भौगोलिक स्थिति से पूर्णतः परिचित थें अतः जहां मराठों को युद्ध के समय भौगोलिक ज्ञान की कमी के कारण अनेक संकटों का सामना करना पड़ा, वहां अंग्रेज अपने भौगोलिक ज्ञान के बल पर मराठों को पराजित करने में तेज रहे।

4.8 मैसूर तथा हैदराबाद का पतन :

दक्षिण में हैदराबाद, मैसूर और महाराष्ट्र ही वे राज्य थे जो अंग्रेजों से लोहा ले सकते थे। यदि ये तीनों राज्य संयुक्त मोर्चा बनाते तो अंग्रेजों की दशा भारत में कुछ भिन्न ही होती। परन्तु दुर्भाग्यवश वे ब्रिटिश कूटनीति और आपसी फूट के शिकार बनते गए। हैदराबाद के निजाम ने कम्पनी से सहायक सन्धि कर स्वयं को अंग्रेजी प्रभुत्व में सौप दिया। अपनी कूटनीति से अंग्रेजों ने मैसूर को महाराष्ट्र से पृथक कर दिया और मैसूर को हराकर फिर मराठों को कुचल दिया।

4.9 फ्रांसीसियों की शक्ति का उन्मुलन :

मराठे न केवल हैदराबाद और मैसूर की सहायता से वंचित रहे बल्कि फ्रांसीसियों के प्रभाव को समाप्त कर दिया। यदि मराठों को फ्रांसीसियों का सहयोग मिलता तो सम्भवतः वे मराठा सैनिकों को यूरोपीय ढंग से भली प्रकार प्रशिक्षित कर सकते और अंग्रेजों को कठिन संघर्ष का सामना करना पड़ता।

4.10 कम्पनी की सबल शक्ति :

अंग्रेजी कम्पनी राजनीतिक, प्रशासनिक और सैनिक सभी दृष्टियों से मराठों की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली थी। इसके अतिरिक्त मराठों से संघर्ष के समय तक वह विशाल साम्राज्य की स्वामिनी बन चुकी थी। उसे अनेक देशी राज्यों की सहायता प्राप्त थी और उसके पास एक विशाल कुशल सेना थी। हर दृष्टि से अपनी श्रेष्ठ स्थिति के कारण वह मराठों को सरलता से पराजित कर सकी।

इन सभी कारणों से मराठों का पतन अवश्यम्भावी हो गया। मराठों ने अंग्रेजों के तीन प्रहार सहे। पहला प्रहार वारेन हेस्टिग्ज ने किया, दूसरा वेलेजली ने और तीसरा तथा अन्तिम लॉर्ड हेस्टिग्ज ने। पहला प्रहार मराठा झेल गए क्योंकि हैदरअली और फ्रांसीसियों ने कर्नाटक पर आक्रमण कर उन्हें बचा लिया। केवल सालसेट देकर ही वे अंग्रेजों से छूट गए। अंग्रेजों के द्वितीय प्रहार ने मराठों को बुरी तरह आहत कर दिया। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां प्रतिकूल होने से अंग्रेज उनकी शक्ति का पूर्ण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विनाश नहीं कर सकें लेकिन अपने तीसरे और अन्तिम प्रहार में उन्होंने मराठा संघ को छिन्न–भिन्न कर सभी मराठा सरदारों की शक्ति का उन्मूलन कर दिया। मराठा शक्ति का हमेशा के लिए अन्त हो गया। वह इस बार गिरी तो फिर कभी नहीं उठ सकी।

4.11 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – ब्रिटिश सत्ता के समय कौनसी दक्षिण की शक्ति नहीं थी?

(अ) गायकवाड़ (ब) होल्कर

(स) सिक्ख (द) सिन्धिया

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – मराठों की असफलता का प्रशासकीय दोष पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – मराठों की असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग – 2

इकाई – 1

बंगाल में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना

1.0 बंगाल में ब्रिटिश शासन की स्थापना
1.1 बंगाल की नवाबी का अन्त
1.2 सिराजुद्दौला
1.3 अंग्रेजों के साथ संघर्ष के कारण
1.3.1 राजनीतिक
1.3.2. अंग्रेजो के प्रति सन्देह
1.3.3. नवाब के प्रति अंग्रेजों की अशिष्टता
1.3.4. व्यापारिक झगड़ा
1.3.5. नवाब के शुत्रओं को संरक्षण देना
1.3.6. कलकत्ता की किलेबन्दी
1.4 सैनिक कार्यवाही
1.5 काल कोठरी की घटना
1.6. अलीनगर की सन्धि
1.6.1 सन्धि की शर्तें
1.7 सिराजुद्दौला और अंग्रेजों में प्लासी का युद्ध
1.8 प्लासी के युद्ध के कारण
1.9 प्लासी के युद्ध की घटनाएं
1.10 प्लासी के युद्ध का महत्त्व और परिणाम
1.10.1. राजनीतिक महत्त्व
1.10.2. सैनिक महत्त्व
1.10.3. आर्थिक महत्त्व
1.10.4. नैतिक महत्त्व
1.11 मीरजाफर और अंग्रेज
1.11.1 अली गौहर का आक्रमण
1.11.2 डच आक्रमण
1.11.3 प्रशासनिक व्यवस्था
1.11.4 मीरजाफर को हटाया जाना
1.12 नवाब मीरकासिम
1.13 मीरकासिम व अंग्रेजों के मध्य तनाव
1.14 बक्सर का युद्ध (सन् 1764)
1.15 युद्ध का महत्त्व
1.16 नवाब मीरजाफर (जुलाई, 1763 से फरवरी, 1765)
1.17 क्लाइव की वापसी (मई, 1765 से फरवरी, 1767 तक)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.18 इलाहाबाद की सन्धि (1765 ई.)

1.18.1 सन्धि का महत्त्व

1.19 बंगाल में दोहरा शासन

1.20 भूराजस्व व्यवस्था

1.12 क्लाइव का मूल्यांकन

1.22 बोध प्रश्न

1.0 बंगाल में ब्रिटिश शासन की स्थापना :

मुगल सम्राट् औरंगजेब के शासनकाल में बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा तीन अलग–अलग सूबे, जो सदैव स्वतंत्रता के लिए लालायित रहते थे। औरंगजेब ने मुर्शीदकुली जफर खाँ को 1705 ई. मे बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया। बादशाह फर्रूखसियर के समय बंगाल नाममात्र के लिए ही मुगल शासन के अधीन था, वस्तुतः वहां का सूबेराद एक सवतंत्र शासक था और उड़ीसा का सूबा भी उसके अधीन आ गया। मुर्शीदकुली खाँ की मृत्यु के पश्चात् 1727 ई. में उसके दामाद शुजाउद्दीन को सत्ता मिली। उसने सन् 1732 के अलीवर्दी खाँ को बिहार का नायब सूबेदार बनाया। अलीवर्दी ने राजस्वव्यवस्था पर प्रभाव नियंत्रण रखते हुए अपनी वित्तीय स्थिति को सुधारा और पूर्व प्रथा के अनुरूप मुगल सम्राट् को नजराने की भेंट स्वरूप 20 लाख के स्थान पर 30 लाख रूपये वार्षिक भेजना शुरू किया। शुजाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी सरफराज खाँ को अलीवर्दी खाँ ने गिरिया के युद्ध मे अप्रैल, 1740 में पराजित कर बंगाल की सूबेदारी हस्तगत की। कमजोर मुगल सम्राट् ने अलीवर्दी खाँ के उत्तराधिकार को तत्काल मान्यता प्रदान कर दी।

1.1 बंगाल की नवाबी का अन्त :

अलीवर्दी खाँ : बंगाल मुगल साम्राज्य का एक प्रान्त था; ज्यों–ज्यों मुगल–बादशाह कमजोर होते गये, त्यों–त्यों बंगाल के शासक स्वतन्त्र होते गये। 1740 ई. में अलीवर्दी खाँ ने, जो बिहार का नायब–नाजिम था, बंगाल पर आक्रमण कर दिया और वहां का नवाब बन गया। अलीवर्दी खाँ बड़ा ही योग्य शासक था। वह बंगाल में शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित करने में पूर्ण रूप से सफल रहा। उसके शासन काल में मराठों ने अनेक बार बंगाल पर आक्रमण किये परन्तु उसने चौथ तथा बहुत सा धन देकर अपनी जान बचायी। मरहठों से छुटकारा पाने के बाद उसने ईस्ट–इण्डिया–कम्पनी की ओर ध्यान दिया। अंग्रेज लोग बंगाल में अपनी व्यापारिक कोठियां बना कर अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे थे। अलीवर्दी खाँ अंग्रेजों के इन सब कार्यों को बड़ी सतर्कता के साथ देख रहा था। वह उन्हें मधु–मक्खियों का छत्ता समझता था जिनसे मधु तो मिल सकता था परन्तु छेड़ने पर वे डंक भी मार सकते थे अतएव उसने उनकी गतिविधि पर कड़ी दृष्टि तो रक्खी परन्तु उनसे झगड़ा नहीं किया। 1756 ई. में अलीवर्दी खां का परलोकवार हो गया। अलीवर्दी खां के कोई पुत्र न था, अतएव अपने जीवनकाल में ही उसने अपनी छोटी पुत्री के पुत्र सिराजुद्दोला को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था।

1.2 सिराजुद्दौला :

10 अप्रैल, 1756 ई. को 82 वर्षीय अलीवर्दीखां की मृत्यु को गई उसके कोई पुत्र न था। केवल तीन पुत्रिया थी, जिनका उसने अपने तीन भतीजों के साथ विवाह कर दिया और उन्हें पूर्णिया, ढाका तथा पअना के गवर्नर पदों पर नियुक्त किया। दुर्भारूगवश, अलवर्दीखां के तीनो दामादों का देहान्त उसके जीवन काल में ही हो गया था, अतः भावी उत्तराधिकार के प्रश्न पर षड़यन्त्रों का सिलसिला शुरू हो गया, जिससे सशस्त्र संघर्ष की सम्भावना स्पष्ट लगने लगी। अलीवर्दी खां का भी इस स्थिति से परिचत था। अतः उसने अपने जीवनकाल में ही अपनी सबसे छोटी पुत्री के लड़के सिराजुद्दौला के विरोधियों को सन्तोष नहीं हुआ। अलवर्दीखां की सबसे बड़ी लड़की घसीटी बेगम ने सिराजुद्दौला के स्वर्गीय बड़े भाई के अल्पवयस्क लड़के मुराउद्दौला को गोद ले लिया और उसे बंगाल का नवाब बनाने के स्वप्न देख रही थी। घसीटी बेगम का दीवानराजवल्लभ काफी चतुर एवं योग्य राजनीतिज्ञ था और वह उसे पूरा–पूरा सहयोग दे रहा था। दूसरी लड़की का लड़का शौकतजंग जो पूर्णतया का गवर्नर था, अपने आपको बंगाल की नवाबी का सही उत्तराधिकारी समझता था। अलीवर्दीखं का बहनोई और प्रधान सेनानायक मीरजाफर भी शासनतन्त्र को अपने नियन्त्रण में रखने का इच्छुक था। इस प्रकार सिराजुद्दौला को अपने ही सम्बन्धियों से सुलझना था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अलीवर्दीखां की मृत्यु के बाद सिराजुद्दौला का राज्याभिषेक तो बिना किसी विघ्न बाधा के सम्पन्न हो गया, परन्तु इसके तत्काल बाद सिराजुद्दौला ने अपनी बड़ी मौसी घसीटी बेगम को धर लिया और छल–कपट से उसे बन्दी बना लिया। इस प्रकार उसने शैकतजंग के विरूद्ध भी सैनिक करके उसे अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया।

1.3 अंग्रेजों के साथ संघर्ष के कारण :

अंग्रेज इतिहासकारों के मतानुसार अंग्रेजों और सिराजुद्दौला के मध्य संघर्ष के मुख्य कारण सिराजुद्दौला की विलासिता, क्रूरता और शासन में अत्याचार थे। उन विद्वानों का यह भी मत है कि चूंकि सिराजुद्दौला को नवाबी से हटाने के लिए कुचक्र एवं षड़यन्त्र चल रहे थे, अंग्रेजों ने भी अपनी सुरक्षा के निमित्त सिराजुद्दौला के विरोधियों को सहयोग प्रदान कर दिया क्योंकि नवाब सिराजुद्दौला शुरू से ही अंग्रेजों से घृणा करता था। परन्तु अब अंग्रेजो इतिहासकारों के उपर्युक्त दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया जाता है। आज के विद्वानों की मान्यता है कि सिराजुद्दौला के शासन तथा उसके समकालीन अन्य भारतीय शासकों के शसन में कोई विशेष अन्तर हीं था। दोनों के मध्य संघर्ष के कारण कुछ दूसरे ही थे, जो इस प्रकार थे –

1.3.1 राजनीतिक :

सिराजुद्दौला ने नवाब बनते ही अपनी सत्ता को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया, जबकि उसके विरोधी घसीटी बेगम और दीवान राजवल्लभ, शौकतजंग तथा मीरजाफर आदि उसको नवाबी से हटाने के लिए षड़यन्त्र रच रहे थें सिराजुद्दौला को ऐसा अनुभव हुआ कि अंग्रेज व्यापारी उसकी सत्ता की अवज्ञा ही नहीं कर रहे है, अपितु उसके विरोधियों के साथ सांठ–गांठ करके उन्हें सहयोग एवं प्रोत्साहन भी दे रहे है।। अतः सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों के प्रभाव को कम करने का प्रयास किया। दूसरी तरफ अंग्रेजों का विश्वास था कि भावी संघर्ष में नवाब हार जाएगा। इसलिए उन्होंने उसके विरोधियों का साथ दिया, ताकि भविष्य में उन्हें अधिक व्यापारिक तथा राजनीतिक सुविधाएं उपलब्ध हो सके।

1.3.2. अंग्रेजों के प्रति सन्देह :

अंग्रेजों का मानना है कि नवाब सिराजुद्दौला आरम्भ से ही अंग्रेजों को सन्देह की दृष्टि से देखा करता था। परन्तु तत्कालीन साक्ष्यों से पता चलता है कि आरम्भ में सिराजुद्दौला अंग्रेजों के साथ सहानुभूति रखता था। 1752 ई. में जब कम्पनी के अध्यक्ष हुगली आये थे, तब सिराजुद्दौला ने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया था। यदि हॉलबेल का विश्वास किया जाये तो अलीबर्दीखां ने मरने से पूर्व सिराजुद्दौला को अंग्रेजों पर कड़ी नजर रखने की। चेतनावनी दी थी, क्योंकि उसे आशंका थी कि कर्नाटक का नाटक बंगाल में भी दोहराया जा सकता था। अतः नवाब बनने के बाद सिराजुद्दौला के रूख में अन्तर आ गया और वह अंग्रेजों को सन्देह की दृष्टि से देखने लगा तथा उनकी कार्यवाहियों को नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया, जिससे अंग्रेज उसके शत्रु बनगये।

1.3.3. नवाब के प्रति अंग्रेजों की अशिष्टता :

भारत में यह परम्परा रही है कि जब कोई व्यक्ति नया शासक बनता है, तब उसके राज्याभिषेक के अवसर पर उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने की दृष्टि से प्रतिष्ठित नागरिक, अधिकारी एवं जमींदार लोग उसे मूल्यवान भेंटें प्रदान करते है। सिराजुद्दौला के राज्याभिषेक के अवसर पर अंग्रेज अधिकारी जान–बूझ कर अनुपस्थित रहे और उन्होंने सिराजुद्दौला को भेंट भी नहीं दी। उनकी यह कार्यवाही एक प्रकार से नवाब के प्रति उनकी अशिष्टता थी। इस घटना के कुछ दिनों बाद ही जब सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों की कासिम बाजार की फैक्ट्री को देखने की इच्छा व्यक्ति की तो अंग्रेजों ने उसे फैक्ट्री दिखाने से ही मना कर दिया। जब नवाब ने उनसे उनके व्यापार के बारे में जानकारी चाही तो अंग्रेजों ने जानकारी देना भी उचित न समझा। उनके इस प्रकार के अशिष्ट व्यवहार से सिराजुद्दौला के सम्मान को भारी ठेस पहुंची।

1.3.4. व्यापारिक झगड़ा :

मुगल सम्राट फर्रूखशियर ने 1717 ई. में एक शाही फरमान द्वारा उन्हें बंगाल में बिना चुंगी दिये व्यापार करने की सुविधा प्रदान की थी। इससे एक तरफ तो भारतीय व्यापारियों के हितों को हानि पहुंच रही थी और दूसरी तरफ नवाब के राजकोष को भी हानि हो रही थी। बाद में अंग्रेजों ने अपनी इस सुविधा का दुरूपयोग करना शुरू कर दिया। वे भारतीय व्यापारियों से कुछ ले–देकर उनके माल को भी अपना बता कर चुंगी बचा लेते थे। बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अध्यक्ष अपने स्तर से

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कम्पनी के माल को एक स्थान से दूसरे स्थान लाने–ले जाने का पत्र जारी करता था। इसे 'दस्तक' वाले सामान को भी कम्पनी का बताकर चुंगी बचा लेते थे। बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अध्यक्ष अपने दस्तक से कम्पनी के माल को एक स्थान से दूसरे स्थान लाने–ले जाने का पत्र जारी करता था। इसे 'दस्तक' कहा जाता है। इस प्रकार 'दस्तक' वाले सामान पर चुंगी कर वसूल नहीं किया जात था। इस समय कम्पनी के अधिकांश कर्मचारी भी निजी व्यापार में लग चुके थे और वे लोग अपने व्यापार के सामान को भी कम्पनी का बताकर चुंगी बचा लते थे। इससे बंगाल की सरकार को काफी हानि उठानी पड़ रही थी नवाब सिराजुद्दौला कम्पनी के साथ कोई नया समझौता करना चाहता था, जिसका कि मौजूदा अवस्था को दूर किया जा सके। अंग्रेज अपने इस विशेषाधिकार को छोड़ने के लिये तैयार न थे। अतः दोनों पक्षों में तनाव का बढ़ना स्वाभाविक ही था। वस्तुतः दोनों के मध्य संघर्ष का मूल कारण यही था।

1.3.5. नवाब के शत्रुओं को संरक्षण देना :

अंग्रेजों की कलकत्ता बस्ती नवाब के शत्रुओं तथा राजद्रोहियों के लिए आश्रय स्थल बनी हुई थी। जब नवाब ने घसीटी बेगम को बन्दी बना लिया तो दीवान राजवल्लभ ने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति अपने लड़के कृष्णवल्लभ के साथ कलकत्ता भिजवा दी। उसने घसीटी बेगम की धन सम्पत्ति को भी छिपाने का प्रयास किया। इस पर नवाब ने उसे दीवान पद से हटा दिया और कलकत्ता के अंग्रेज अधिकारियों से कृष्णवल्लभ को लौटाने की मांग की जिसे अंग्रेजों ने ठुकरा दिया। इससे सिराजुद्दौला को पक्का विश्वास हो गया कि अंग्रेज उसके शत्रुओं से मिले हुए है।

1.3.6. कलकत्ता की किलेबन्दी :

सिराजुद्दौला के नवाब बनते ही यूरोप में इंग्लैण्ड और फ्रांस में युद्ध छिड़ने की सम्भावना बढ़ गई थी। अतः भारत में स्थित दोनों कम्पनियों में भी पुनः सशस्त्र संघर्ष की आशंका उत्पन्न हो गई। परिणामस्वरूप दोनों ने बंगाल में अपने–अपने स्थानों की किलेबन्दी करना और सैनिकों की संख्या बढ़ाना शुरू कर दिया। नवाब ने दोनां को आदेश दिया कि वे अपने स्थानों की किलेबन्दी के काम को तुरन्त बन्द कर दे। फ्रांसीसियों ने तो नवाब के आदेश को मानलिया। परन्तु अंग्रेजों ने आदेश की परवाह न की। वे उस समय कलकत्ता के चारों तरफ एक खाई खुदवा रहे थे। जब नवाब के अधिकारियों ने उन्हें खाई को भर देने के लिये कहा तो एक अहंकारी अंग्रेज अधिकारी ने उन्हें जवाब दिया कि "यह खाई अवश्य भर दी जायेगी, परन्तु मुसलमानों के सिरों से।" जब सिराजुद्दौला को उनकी उद्दण्डता की सूचना दी गई तो उसने अंग्रेजों को सबक सिखाने का फैसला कर लिया।

इस प्रकार, दोनों पक्षों के मध्य झगड़े के कारण एकत्र होते गये। इनमें एक कारण और जुड़ गया। वह था जमींदारी के अधिकारों की व्याख्या। जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है कि कम्पनी को कलकत्ता, बस्ती के आस–पास के क्षेत्र की जमींदारी दी गई थीं नवाब का मानना था कि जमींदार उसका प्रतिनिधी मात्र है और उसका काम नवाब की तरफ से जमींदारी क्षेत्र से राजस्व वसूल करना तथा शान्ति एवं व्यवस्था को कायम रखना है। उस क्षेत्र पर नवाब का राजनीतिक प्रभुत्व सर्वोपरि है और इस नाते कम्पनी उसके आदेशों का पालन करने के लिये बाध्य है। परन्तु कम्पनी का मानना था कि उसे अपने क्षेत्र में पूर्ण राजनीतिक स्वायत्तता प्राप्त है और नवाब को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। नवाब उनकी दलीलों को मानने के लिये तैयार नहीं था। फिर भी उसने तत्काल उनके विरूद्ध सैनिक कार्यवाही करना उचित नहीं समझा और अपने अधिकारियों को उनसे बातचीत करने भेजा। परन्तु अंग्रेज अधिकारियों ने नवाब के शान्ति प्रस्ताव को ठुकरा दिया। ऐसी स्थित में सिराजुद्दौला के लिये अपने सम्मान की रक्षा के निमित्त सैनिक कार्यवाही के अलावा अन्य कोई विकल्प न बचा। इतिहासकार ने भी यह स्वीकार किया है कि जिन कारणों पर नवाब ने अंग्रेजों पर आक्रमण किया उनमें तर्क अवश्य था। अकेले सिराजुद्दौला को इसके लिये उत्तरदायी ठहराना किसी भी दृष्टि से न्यायोचित नहीं होगा।

1.4 सैनिक कार्यवाही :

4 जून, 1756 ई. को सिराजुद्दौला ने मुर्शिदाबाद के समीप स्थित अंग्रेजों की कासिम बाजार फैक्ट्री पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। फैक्ट्री के अंग्रेज अधिकारी वाट्स ने आत्मसमर्पण कर दिया। इसके बाद 5 जून को नवाब ने लगभग 50,000 सैनिकों के साथ कलकत्ता पर धावा बोल दिया। उस समय कलकत्ता में अंग्रेजों के पास केवल 500 सैनिक थे, फिर भी

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University)/Lohnun

कलकत्ता के गवर्नर ड्रेक ने लड़ने का निश्चय किया। 15 जून को नवाब की सेना ने उनके दुर्ग फोर्ट विलियम को घेर लिया। पराजय और मृत्यु को सामने देखकर गवर्नर ड्रेक और बहुत से अंग्रेज अधिकारी अपने परिवारों सहित फोर्ट विलियम से भागकर हुगली नदी में जहाज पर सवार होकर वे फुल्टा टापू चले गये। किले की रक्षा का भार हॉलवेल नामक व्यक्ति तथा थोड़े से सैनिकों को सौपा गया। दो दिन के बाद हॉलवेल को भी आत्म समर्पण करना पड़ा और कलकत्ता पर नवाब का अधिकार हो गया। इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य बात यह है कि बाद में वाट्स ने यह स्वीकार किया था कि नवाब के शान्ति प्रस्ताव पर्याप्त थे और इन्हें ठुकरा कर तथा कासिम बाजार की घटना से कोई सबक न लेकर गवर्नर ड्रेक ने स्वयं खतरा मोल ले लिया था।

1.5 काल कोठरी की घटना :

20 जून, 1756 को फोर्ट विलियम के पतन के साथ काल कोठरी की घटना जुड़ी हुई है। स्मिथ की मान्यता है कि 20 जून को गर्म रात्रि में 146 अंग्रेजों को एक काल कोठरी में बंद कर दिया गया, जो 18 फीट लम्बी एवं 14 फीट 10 इंच मात्र चौड़ी। प्रातः जब कोठरी का दरवाजा खोला गया तो 123 मृत पाये गये एवं मात्र 23 व्यक्ति जीवित रहे। इतिहास में यह घटना 'ब्लेक होल ट्रेजेडी' के नाम से जानी जाती है।

'ब्लेक होल' की दुर्घटना इतिहासकारों के बीच एक विवादास्पद मुद्दा है, जहां हॉलवेल इसे तथ्य सहित प्रमाणित करता है, वहीं, डॉ. भोलेनाथ एवं डॉ. ब्रिजेन गुप्ता जैसे इतिहासकार इसकी सत्यता को नकारते है। उनके अनुसार सिराजुद्दोला इतना क्रूर नहीं हो सकता और वह व्यक्तिगत रूप से इस घटना के लिए जिम्मेदार नहीं हो सकता। दूसरी तरफ, गणित के आंकलन से भी 267 वर्ग फीट की उस काल कोठरी में किसी भी प्रकार 146 व्यक्ति समा ही नहीं सकते थे और यदि यह सत्य भी है, तो इतने मृत लोगों का मुआवजा 1757 ई. की सन्धि में कहीं भी अंग्रेजों द्वारा नहीं मांगा गया। इन सब बातों से स्पष्ट है कि यह घटना हॉलवेल द्वारा सिराज को बदनाम करने या स्वयं के लाभ के लिए मन गढ़ंत बनाई गई थी।

1.6 अलीनगर की सन्धि :

कलकत्ता पर अपनी विजय के पश्चात् सिराज ने मणिकचन्द को कलकत्ते में स्थायी अधिकारी नियुक्त किया एवं स्वयं राजधानी, मुर्शिदाबाद लौट आया। इसी दौरान शौकतजंग ने मुगल सम्राट् से बंगाल की सूबेदारी के लिए औपचारिक रूप से 'सनद' प्राप्त की एवं उसे जगत् सेट एवं मीरजाफर के भरोसे पर गुप्त रखा। इससे पहले की यह तीनो षड्यंत्र में सफल हो पाते, सिराज ने शौकत को मृत्युदण्ड दे दिया।

अंग्रेजी सेना भी आसानी से हार स्वीकार करने वालों में से नहीं थी। फुल्आ टापू पर रहकर भी उन्होंने मणिकचन्द, अमीचन्द, जगतसेठ, राय दुर्लभ जैसे नवाब के शत्रुओं से मिलकर षड्यंत्र रचना शुरू किया। जैसे ही कलकत्ता के हार जाने की सूचना मद्रास पहुंची, वैसे ही एक कौसिल बुलाई गई एवं क्लाइव एवं एडमिरल वाट्सन क अधीन जल एवं थल सेना बंगाल भेजी गई। क्लाइव को हारे हुए ठिकानों को पुनः जीतने के साथ नवाब को पदच्युत करने का पूरा आदेश था। उधर नवाब सिराजुद्दौला अभी तक अपनी जीव का जश्न मना रहा था और न तमाम गतिविधियों से बेखबर था। 16 अक्टूबर को मद्रास से रवाना होकर 14 दिसम्बर को क्लाइव वाटसन के साथ 900 यूरोपियन तथा 1500 भारतीय सिपाहीं एवं पांच जहाज लेकर कलकत्ते से 40 मील दूर फुल्टा द्वीप पहुंचा।

वाटसन ने 17 दिसम्बर को एक लिखित संदेश नवाब को भेजा, जिसमें उनके पूर्व अधिकार एवं सुविधाएं वापस सौपने एवं अंग्रेजों का हुए नुकसान का हर्जाना देने का आग्रह किया गया, परन्तु इससे पहले की नवाब का जवाबी पत्र उन्हें मिलता, क्लाइव कलकत्ता की और अग्रसर हुआ। माणिकचन्द लड़ाई लड़ने का नाटक सा रचकर मुर्शिदाबाद भाग खड़ा हुआ। 2 जनवरी, 1757 ई. को एक छोटी–सी लड़ाई के बाद क्लाइव कलकत्ता पर पुनः अधिकार करने में सफल हुआ। हुगली में भी लूटपाट की गई। इस जीत की सूचना मिलते ही नवाब 40,000 सैनिकों के साथ कलकत्ता की और बढ़ा। 30 जनवरी की रात को क्लाइव के नेतृत्व में अचानक नवाब की सेना पर धावा बोल दिया गया, जिससे घबराकर नवाब ने 9 फरवरी, 1757 को कलकत्ता में अलीनगर की सन्धि शर्तों सहित स्वीकार की।

नवाब की यह परिवर्तित नीति भी विवाद का विषय बन गई। कुछ इतिहासकारों के मत में नवाब को देर से ही सही, पर अपने दरबारियों एवं अधिकारियों की गद्दारी का अहसास हो गया था। अन्य इतिहासकारों का कहना है कि उस समय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अहमदशाह अब्दाली के उत्तर–पश्चिम से आक्रमण के सम्भावित भय से नवाब अंग्रेजों से सन्धि को बाध्य हुआ। क्लाइव के वाटसन से तनावग्रस्त सम्बन्ध एवं कलकत्ता से अपेक्षित सहायता नहीं मिल पाने से वह भी सन्धि को राजी हो गया।

1.6.1 सन्धि की शर्तें :

मुगल बादशाह फर्रूखसियर द्वारा अंग्रेजों को प्रदत्त व्यापारिक सुविधाएं तथा विशेषाधिकार पुनः वापस किए है।

बंगाल, बिहार और उड़ीसा में 'दस्तक' के प्रयोग का अधिकार पूर्ववत् मान लिया गया।

कलकत्ते की किलेबन्दी की स्वीकृति भी प्रदान कर दी गई।

नवाब द्वारा अधिकृत फैक्ट्रियां कम्पनी को वापिस लौटा दी गई तथा कम्पनी की सम्पत्ति तथा अंग्रेजों को हुई हानि के लिए सिराज ने तीन लाख क्षतिपूर्ति के रूप में दिए।

अंग्रेजों को बंगाल में सेना रखने का भी अधिकार मिल गया एवं यह भी निश्चित किया गया है कि तीसरी शक्ति के आक्रमण पर अंग्रेज धन एवं सेना से नवाब का सहयोग करेंगे।

कम्पनी को स्वयं के निजी सिक्के ढालने का भी अधिकार मिला।

इतिहासकारों के अनुसार क्लाइव ने अपनी वापसी के डर एवं फ्रांसीसियों एवं नवाब के मध्य सम्भावित समझौता के भय से वह सन्धि केवल एक सुविधाजनक सामयिक उपाय मानकार की थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए लाभदायक साबित हुई दूसरी और अलीनगर की सन्धि नवाब के लिए अपमानजनक थी।

1.7 सिराजुद्दौला और अंग्रेजों में प्लासी का युद्ध :

षड्यन्त्र की योजना बन चुकने पर क्लाइव ने नवाब सिराजुद्दौला से युद्ध छेड़ने का बहाना खोजना शुरू कर दिया। उसने नवाब को एक पत्र लिखा जिसमें उस पर अलीनगर की सन्धि के उल्लंघन का आरोप लगाया गया। पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा में समय न खोकर, क्लाइव ने एक सोना के साथ नवाब की राजधनी मुर्शिदाबाद की और प्रस्थान कर दिया। सूचना मिलने पर नवाब भी अपनी राजधानी से चल पड़ा और प्लासी के मैदान में आ गया। 23 जून, 1757 ई. को नवाब और क्लाइव की सेना में घमासन युद्ध हुआ।

1.8 प्लासी के युद्ध के कारण :

इस युग–परिवर्तन युद्ध के लिए कौनसी परिस्थितियां उत्तरदायी बनीं, वे पूर्व–विवरण से स्पष्ट है। संक्षेप में, इस युद्ध के महत्वपूर्ण कारण अग्र–

1. अंग्रेज बंगाल में अपना राजनीतिक–प्रशासनिक, आर्थिक प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे और उसके लिए यह आवश्यक था कि वे बंगाल के नवाबों से लोहा लेते। अतः उन्होंने यह नीति अपनाई कि एक नवाब को गिरा कर दूसरे नवाब को और दूसरे को गिराकर तीसरे नवाब को अपने अधीन बनाया जाए और अन्त में उसकी छुट्टी कर, बंगाल को अपने वास्तविक अधिकार में ले लिया जाए। नवाब सिराजुद्दौला की शक्ति को चूर करके उसके स्थान पर मीरजाफर के रूप में अपने कठपुतली नवाब को गद्दीनशीन करना अंग्रेजों का उद्देश्यों था और इसके लिए उन्हें प्लासी का निर्णायक युद्ध लड़ना पड़ा।

2. सिराजुद्दौला के सम्बन्धियों ने उसकी नवाबी का विरोध किया। अंग्रेजों ने शौकतजंग का समर्थन किया था, लेकिन सिराजुद्दौला अपनी नवाबी कायम रखने में सफल हुआ। इसी समय हुआ। इसी समय सिराजुद्दौला अंग्रेजों की गतिविधियों पर अपनी सतर्क दृष्टि रखने लगा। यह बात अंग्रेजों को रास नहीं आई और वे उसे हटाने के प्रयत्नों में लगे रहे। इस कारण नवाब व अंग्रेजों के मध्य निर्णायक संघर्ष अनिवार्य हो गया।

3. अंग्रेजों ने कभी नवाब के प्रति सम्मान प्रदर्शित नहीं किया। अंग्रेजों का अपमानजनक रवैया बढ़ता गया और नवाब के मन में उनके प्रति नफरत के बीज पनपते गए। फिर भी नवाब ने उनसे उलझने की बजाय सुलह करने की नीति को अधिक महत्त्व प्रदान किया। नवाब की यह नीति असफल रही।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. अंग्रेजों को इस बात का पूरा विश्वास हो गया था कि नवाब की सेना संख्या में अधिक और पर्याप्त शक्तिशाली होते हुए भी विश्वासघातियों के कारण खोखली सिद्ध होगी। 4 जून, 1757 ई. को मीरजाफर के साथ जो गुप्त सन्धि हुई उससे अंग्रेजों के हौसले बढ़ गए। 12 जून, को मीरजाफर की और से कलकत्ते में अंग्रेजों को पत्र मिला जिसमें लिखा था – 'यहां, बस काम तैयार है इसके अगले ही दिन, यानी 13 जून, 1757 ई. को अंग्रेजी सेना ने कलकत्ते से कूच किया। सिराजुद्दौला को भी अब मजबूर होकर अपनी सेना मैदान में निकालनी पड़ी। अपनी सैनिक शक्ति के बल पर ही सिराजुद्दौला अंग्रेजों के प्रति अब तक बेपरवाह रहा था। उसका आत्मविश्वास झूठा नहीं था क्योंकि सिराजुद्दौला की सेना क्लाइव और उसकी सारी सेना को थोड़े से समय में निर्मूल कर देने के लिए काफी थी किन्तु मीरजाफर के धोखे ने उसका नाश कर दिया।

5. सिराजुद्दौला यह अनुभव करता था कि फ्रांसीसी अंग्रेजों से अधिक नम्र और वफादार थे। उसे अपनी हार का भी अफसोस था कि वह समय पर फ्रासीसियों से मदद न पा सका। चन्द्रनगर के चले जाने पर तो उसको और भी सदमा पहुँचा था। वह नहीं चाहता था कि फ्रांसीसियों को बंगाल से बाहर खदेड़ दिया जाए। चन्द्रनगर के अतिरिक्त कासिम बाजार, ढाका, पटना, जूदा बालेश्वर आदि स्थानों पर सभी फ्रांसीसी कम्पनियां थी। अंग्रेजों ने अब यह नई मांग रखी कि बंगाल में तमाम फ्रासीसी कोठियों को अंग्रेजों को सौप दिया जाए। उन्होंने तो व्यापार की इजाजत हो, न बंगाल में कोठी बनाने की। सिराजुद्दौला यह कैसे कर सकता था क्योंकि फ्रासीसियों ने भी अंग्रेजों की तरह बंगाल में व्यापार की इजाजत दिल्ली के बादशाह से ली थी। सिराजुद्दौला की सेना में भी कई योग्य फ्रांसीसी अफसर काम कर रहे थे। अंग्रेज इस बात को सहन नहीं कर सकते थे कि उनके होते हुए नवाब फ्रासीसियों को निकालने को तैयार नहीं था, अतः फ्रांसीसी बस्तियों का प्रश्न नवाब और अंग्रेजों के मध्य उलझे मामलों में और अधिक तनाव का कारण बन गया।

6. क्लाइव का विचार था कि भारतीय सेना एक भीड़ से अधिक कुछ नहीं है जो एक गोली की आवाज से भाग खड़ी होती है। उसने अब तक दो बार स्वयं भारत की सेना को हराया था। अर्काट में जहां उसकी हिम्मत बढ़ी थी, वहां कलकत्ता जीत कर उसने भारत में अंग्रेजी राज्य–स्थापना के सपने देखने शुरू कर दिए थे। उसने मद्रास से चलते समय ही कहा था कि कलकत्ता विजय कोई बड़ा काम नहीं है, उस परिस्थिति में जब कि सेना में भारी फूट हो। सिराजुद्दौला का मुख्य सेनापति मीरजाफर क्लाइव से सन्धि कर चुका था। राजा दुर्लभराय और यारलुत्फखां भी अंग्रेजों से जा मिले थे। ऐसी दशा में कदाचित् कोई डरपोक सेनापति ऐसा होता जो अपने शत्रु पर आक्रमण कर देता। आपसी फूट एवं प्रशिक्षण के अभाव ने भारतीय सेना को दुर्बल बना दिया तथा क्लाइव की हिम्मत बढ़ा दी और इसी सहारे पर वह नवाब पर आक्रमण करने की सोच सका। नवाब की सैनिक दुर्बलता उसके भाग्य–परीक्षण का कारण बन गई।

1.9 प्लासी के युद्ध की घटनाएं

क्लाइव ने नवाब सिराजुद्दौला से युद्ध छेड़ने का बहाना खोजना शुरू कर दिया। उसने नवाब को एक पत्र लिखा जिसमें उस पर अलीनगर की सन्धि के उल्लंघन का आरोप लगाया गया। पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा में समय न खोकर क्लाइव ने एक सेना के साथ नवाब की राजधानी मुर्शिदाबाद की और प्रस्थान कर दिया। सूचना मिलने पर नवाब भी अपनी राजधानी से चल पड़ा और प्लासी के मैदान में आ जमा। 26 जून, 1757 ई. को नवाब और क्लाइव की सेना में घमासान युद्ध हुआ। जब सिराजुद्दौला की विजय साफ दिखाई देने लगी तभी मीरजाफर ने अपना रवैया बदल लिया। सिराजुद्दौला ने मीरजाफर को बुलाकर उसे अपने सम्बन्धियों की याद दिलाई और अपनी पगड़ी उसके सामने रखकर कहा, मीरजाफर इस पगड़ी की लाज तुम्हारे हाथ में है। मीरजाफर ने नवाब की वफादारी की कसम खाई, लेकिन वह उस समय अपनी आत्मा और नवाब दोनों को धोखा दे रहा था। सिराजुद्दौला के सामने से हटते, ही उसने क्लाइव को सन्देश भेजा कि भीषण आक्रमण शुरू कर दो और यदि इस समय सम्भव न हो तो रात को मत चूकना।

न केवल मीरजाफर ने बल्कि नवाब के कोषाध्यक्ष दुर्लभराय ने भी सिराजुद्दौला को धोखा दिया। उसने यह झूठा समाचार फैला दिया कि अंग्रेज जीत रहे है और नवाब के सिपाही भाग रहे है। इन समाचारों से सिराजुद्दौला घबरा गया। दूसरी और युद्ध के मैदान में मीरजाफर, जो नवाब का प्रधान सेनापति था, अपनी अधिकांश सेना तथा दुर्लभराय की सैनिक टुकड़ी के साथ युद्ध से तटस्थ होकर तमाशा देखता रहा। उसने नवाब की रक्षा का कोई प्रयत्न नहीं किया। इस विश्वाघात से सिराजुद्दौला घबरा गया और जान बचा कर युद्धक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। दिन के दो बजते–बजते प्लासी का युद्ध समाप्त हो गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.10 प्लासी के युद्ध का महत्त्व और परिणाम :

सिराजुद्दौला के बाद मीरजाफर बंगाल का नवाब बना गयां अमीरचन्द को जब असली सन्धि पत्र पढ़कर सुनाया गया तो उसे इतना सदमा पहुँचा कि डेढ़ साल में ही उसकी मृत्यु हो गई।

प्लासी कायुद्ध कोई बड़ा युद्ध नहीं था, लेकिन इसके परिणाम बड़े महत्वपूर्ण निकले और इसलिए इस युद्ध की गणना भारत के निर्णायक युद्धों में की जाती है।

1.10.1. राजनीतिक महत्त्व :

प्लासी के युद्ध ने सिराजुद्दौला के शासन का अन्त कर दिया। अंग्रेजों का कृपाकांक्षी मीरजाफर नवाब बना। इस युद्ध के राजनीतिक परिणाम व्यापक और दूरगामी हुए। यह युद्ध वास्तव में एक क्रान्ति था जिसने भारत के इतिहास को नया मोड़ दिया। इसके फलस्वरूप भारत में अंग्रेजों का प्रभाव केवल व्यापक ही नहीं हो गया बल्कि अंग्रेजी साम्राज्य की नींव पड़ गई।

प्लासी के युद्ध ने अंग्रेज व्यापारियों को शासक बना दिया। वे बंगाल के नवाब निर्माता बन गए। इस युद्ध से अंग्रेजों को भारतीयों की दुर्बलताओं का पता लगया। वे समझ गए कि षड्यन्त्रों और कुचक्रों के माध्यम से भारत में सफलता आसानी से प्राप्त की जा सकती है। भारतीय सैन्य संगठन की कमजोरी और भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के खोखलेपन ने उनमें प्रबल साम्राज्यवादी आकांक्षाएं जाग्रत कर दी।

प्लासी के युद्ध ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि बंगाल के हिन्दू–मुस्लिम शासन से असन्तुष्ट है और असन्तुष्ट हिन्दुओं को साथ लेकर मुस्लिम शासकों के विनाश में सुगमतापूर्वक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

1.10.2. सैनिक महत्त्व :

प्लासी के युद्ध ने बंगाल पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। बंगाल सैनिक दृष्टि से अंग्रेजों के लिए बड़े महत्त्व का था। दक्षिण में निजाम और मराठों की शक्ति के कारण अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना का कार्य अत्यन्त कठिन था। बंगाल भारत की इन उदीयमान शक्तियों से बहुत दूर था। अंग्रेज बंगाल पर आधिपत्य स्थापित कर अपनी प्रभुता का तेजी से विस्तार कर सकते थे। इतना ही नहीं, बंगाल समुद्रतट पर स्थित था अतः इस पर अधिकार होने से अंग्रेज जल मार्ग से अपनी सेनाएं ला सके थे और अपनी नौसैनिक शक्ति का पूरा लाभ उठा सकते थे। वस्तुतः बंगाल में प्रभुता की स्थापना से, अंग्रेजों के लिए उत्तरी भारत की विजय का मार्ग प्रशस्त हो गया।

प्लासी का युद्ध मुगल साम्राज्य के लिए आत्मघाती सिद्ध हुआ। एक और तो बंगाल का सूबा मुगल साम्राज्य के हाथ से पूरी तरह निकल गया और दूसरी और मुगल साम्राट की राजनीतिक व सैनिक दुर्बलता का पर्दाफाश हो गया। यह दयनीय स्थिति सबको अच्छी तरह स्पष्ट हो गई कि बंगाल के नवाब को बनाने–बिगाड़ने की शक्ति अंग्रेजी कम्पनी में है और मुगल सम्राट् केवल मूक द्रष्टा है।

1.10.3. आर्थिक महत्त्व :

प्लासी के युद्ध से बंगाल अंग्रेजों के प्रभुत्व में आ गया। आर्थिक दृष्टिकोण से बंगाल का भारी महत्त्व था। वह तत्कालीन भारत के सबसे अधिक सम्पन्न प्रान्तों में गिना जाता था। उस पर कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित हो जाने से उसके साधनों में बहुत वृद्धि हो गई। युद्ध में विजय के फलस्वरूप अंग्रेजों के हाथ प्रचुर धन लगा। मीरजाफर ने कम्पनी और क्लाइव को अनेक जागीरें प्रदान की तथा सैनकों को लूट का माल मिला। भारी धन हाथ लगने तथा बंगाल जैसे धनी प्रान्त पर अधिकार हो जाने से कम्पनी की आर्थिक स्थिति बहुत सुदृढ़ हो गई जिससे उसे अपने प्रतिद्वन्दियों को विनष्ट करने में अत्यधिक सहायता मिली। यह प्लासी के युद्ध का ही परिणाम था कि एक व्यापारिक कम्पनी धीरे–धीरे जमींदार से जागीदार और जागीर से बंगाल की दीवान बन गई।

1.10.4. नैतिक महत्त्व :

नैतिक दृष्टि से भी प्लासी के युद्ध का विशेष महत्त्व है। युद्ध में विजय प्राप्ति से कम्पनी की प्रतिष्ठा और प्रभाव में भारी वृद्धि हो गई, लेकिन साथ ही अंग्रेजों का नैतिक पतन भी हो गया। उनके लोभ की सीमा नहीं रही। वे नैतिक–अनैतिक सभी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

साधनों से धन प्राप्त करने में लग गए। भ्रष्टाचार व्यापक हो गया तथा नवाब और कम्पनी दोनों ही के द्वारा प्रजा का घोर आर्थिक शोषण होने लगा। भारतीयों की विश्वासघाती प्रवृत्ति अच्छी तरह प्रकर हो गई जिसका अंग्रेजों ने पूरा–पूरा लाभ उठाना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार षड्यन्त्रों और कुचक्रों को भरपूर प्रोत्साहन मिला।

1.11 मीरजाफर और अंग्रेज :

प्लासी के युद्ध के बाद 29जून, 1757 ई. को क्लाइव ने मीरजाफर को नवाब घोषित किया और स्वयं अपनी सेना लेकर मुर्शिदाबाद की और गया। इस युग में बंगाल की जनता पूरी तरह से निष्क्रिय हो चुकी थी। राजसत्ता के परिवर्तन में उसकी किसी प्रकार की कोई रूचि नहीं थी। यही कारण था कि मामूली सी. सेन के साथ कोई भी साहसी सेनानायक राज्यों के शासन में मन चाहा परिवर्तन कर सकता है। नया नवाब मीरजाफर एक कमजोर तथा अयोग्य व्यक्ति था। कलाईव ने शीघ्र की यह प्रकट कर दिया कि शासन की वास्तविक शक्ति उसके पास है और मीरजाफर नाम मात्र का नवाब है। क्लाइव ने जगत सेठ के माध्यम से बंगाल में हुए सत्ता परिवर्तन के लिए मुगल सम्राट् की स्वीकृति भी मंगवा ली।

मीरजाफर के राज्याभिषेक के अवसर पर क्लाइव ने कहा था कि अब अंग्रेज वापस कलकत्ता चले जायेंगे और अपना ध्यान व्यापार की और केन्द्रित करेंगे परन्तु उसके भावी कार्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह नवाब तथा शासनतंत्र पर अपना नियंत्रण रखना चाहता था। इसीलिये उसने सभी महत्वपूर्ण पदों पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करवाया जो अंग्रेजों के प्रति निष्ठावान हो। उदाहरणार्थ षड्यन्त्रकारी राय दुर्लभ को मन्त्री पद पर नियुक्त करवाया। कहा जाता है कि क्लाइव ने राय दुर्लभ के साथ अलग से एक गुप्त समझौता भी किया, जिसमें राय दुर्लभ ने रायदुर्लभ के साथ अलग से एक गुप्त समझौता भी किया, जिसमें रायदुर्लभ ने क्लाइव के दावों का समर्थन करने का आश्वासन दिया। रायदुर्लभ नवाब के विरूद्ध निरन्तर षड्यन्त्र करता रहा और नवाब को जब इसकी जानकारी मिली तो उसने रायदुर्लभ को मारने का फैसला किया। परन्तु रायदुर्लभ को क्लाइव का समर्थन प्राप्त था। अतः वह उसके विरूद्ध कुछ नहीं कर पाया। दूसरा उदाहरण बिहार के नायब सूबेदार रामनारायण का है। क्लाइव ने उसके साथ भी समझौते कर रखा था और शासन चलाने के निर्देश वह क्लाइव से सीधे प्राप्त करता था। उसने नवाब के आदेशों को कभी सम्मान न हीं दिया और नवाब उसके विरूद्ध कोई कार्यवाही न कर सका। शासनतन्त्र पर नियन्त्रण स्थापित हो जाने के बाद क्लाइव ने भारतीय अधिकारियों को निर्देश भिजवाये कि वे अपने–अपने क्षेत्रों से फ्रांसीसियों को पकड़ कर अंग्रेजों को सौप दे। इन्ही दिनों नवाब के दो जमींदारों ने विद्रोह कर दिया। क्लाइव नेनवाब को भी निर्देश दिया कि वह तुरन्त विद्रोह को दबा दे और इसलिए अपने 500 सैनिक भी दिये। इस सहायता के बदले में क्लाइव ने बंगाल में शोरे के उत्पादन का एकाधिकार प्राप्त कर लिया। केवल 15 प्रतिशत शोरा नवाब के लिए छोड़ा गया। शोरे का उपयोग बारूद बनाने में किया जाता था। अतः स्पष्ट है कि मीरजाफर नाम मात्र का शासक था।

1.11.1 अली गौहर का आक्रमण :

शाहजादा अली गौहर (मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय) इस समय अवध में भटक रहा था । बंगाल , बिहार और उड़ीसा की अव्यवस्था का हाल सुन कर उसने इन प्रान्तों में अपना भाग्य आजमाने का प्रयास किया। उसके लिए उसे अवध के नवाब से सैनिक सहायता भी मिल गई। 3 अप्रैल, 1759 की उसने पटना पर आक्रमण कर दिया। मीरजाफर के कुछ असन्तुष्ट सरदार गुप्त से शाहजादा से मिले हुए थे। पटना के नायब सूबेदार रामनारायण ने मीरजाफर को मार भगाया। परन्तु क्लाइव जो उस समय अपनी सेना के साथ युद्ध स्थल के निकट ही था, ने विजय का सारा श्रेय स्वंय ले लिया। उसका मानना था कि शाहजादा ब्रिटिश सेना के भय से भाग खड़ा हुआ। इसके लिए मीरजाफर ने क्लाइव को व्यक्तिगत जागीर प्रदान की। 1760 ई. में अली गौहर ने पुनः बिहार पर आक्रमण किया परन्तु इस बार भी वह असफल रहा। अब अंग्रेज मीरजाफर रक्षक कहलाये जाने लगे।

1.11.2 डच आक्रमण :

बंगाल में डचों का भी व्यापार था। पटना, ढाका, पीपली, चिन्सुरा तथा कासिम बाजार के निकट उनकी फैक्टरियां थी। बंगाल प्रान्त के भीतरी भागों में भी उनकी कई शाखाएं थी। बड़ा नगर तथा चिन्सुरा के प्रदेश तो उनके अधिकार में ही थे। जब सिराजुद्दौला ने कलकत्ता पर आक्रमण किया था जब उसने डचों से सहायता मांगी थी, परन्तु डचों ने नवाब को सहायता नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दी। इस अवसर पर अंग्रेजों ने भी डचों से सहयोग मांगा था, परन्त डचों ने उन्हें भी सहयोग नहीं दिया था। परन्तु फुल्टा द्वीप में शरण लेने वाले अंग्रेजों को डचों ने अवश्य मदद पहुंचाई। जब मीरजाफर की सहायता से बंगाल में फ्रांसीसियों के भाव को क्षीण कर दिया गया तो डचों को अपने भविष्य की चिन्ता लग गई। अंग्रेज लेखकों ने मीरजाफर पर डचों से साठ–गांठ करने का अरोप लगाया है जो सत्य प्रतीत नहीं होता। परन्तु अंग्रेजों को डचों को बाहर निकालने के लिए किसी होनहार की आवश्यकता थी, क्योंकि वे उनके प्रबल प्रतिद्वन्दी सिद्ध हो सकते थे। अत: अंग्रेजों ने आवश्यक तैयारी के बाद डचों के विरूद्ध सैनिक कार्यवाही शुरू कर दी। 25 नवम्बर, 1759 को बेदरा नामक स्थान पर दोनों पक्षों में युद्ध लड़ा गया जिसमें डच हार गये और उन्हें शान्ति सन्धि की प्रार्थना करनी पड़ी। इसी समय मीरजाफर का पुत्र मीरन भी सेना सहित डचों को सजा देने आ पहुंचा। अन्त में क्लाइव की मध्यस्थता से सन्धि सम्पन्न हो गई, जिसके अनुसार डचों ने भविष्य में युद्ध न करने तथा नई सैनिक भर्ती और किलेबन्दी न करने का आश्वासन दिया। उन्होंने अपनी फैक्ट्रियों की सुरक्षार्थ केवल 125 यूरोपियन सैनिक रखना स्वीकार किया।

बेदा का युद्ध बंगाल में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना की दिशा में प्लासी के बाद दूसरा महत्वपूर्ण कदम था। क्लाइव के टोप की यह अतिरिक्त पंखुड़ी थी। इस विजय से बंगाल में अंग्रेजों की प्रतिष्ठा और अधिक बढ़ गई। फ्रांसीसियों की भांति डचों की महत्वाकांक्षा भी पूर्ण रूप से कुचल दी गई। अब बंगाल में अंग्रेजों की सर्वोच्चता को गम्भीर चुनौती देने वाली कोई शक्ति नहीं थी।

1.11.3 प्रशासनिक व्यवस्था :

मीरजाफर की अयोग्यता, अदूरदर्शिता तथा क्रोधी स्वभाव के कारण प्रशासन व्यवस्था गिरती जा रही थी। मीरजाफर की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी उसे न तो अपने ऊपर भरोसा था और न वह अपने सहयोगी पर विश्वास करता था। राजकोष पहले से ही रिक्त था। मराठा नवाब से निरन्तर चौथ वसूल कर रहे थे और क्लाइव ने भी इस समय मराठों से छेड़छाड़ करना उचित नहीं समझा था। अव्यवस्था के कारण राजस्व की पूरी वसूली भी नहीं कर रहे थें नवाब कम्पनी को निर्धारित किश्तें भी नहीं चुका पा रहा, जबकि अनिर्धारित मांगें बढ़ती जा रही थी। ऐसी स्थिति में नवाब अपने सैनिकों का वेतन भी नहीं चुका पाया। कम्पनी के दबाव पर नवाब को बर्दवान, नदिया तथा हुगली के क्षेत्रों से राजस्व वसूली का अधिकार तब तक के लिए कम्पनी को सौपना पड़ा जब तक कि उसकी किश्तों का धन वसूल न हो जाये। ऐसी परिस्थिति में फरवरी, 1760 ई. को क्लाइव, हॉलबेल को कम्पनी के कार्यों का चार्ज देकर स्वदेश लौट गया।

1.11.4 मीरजाफर को हटाया जाना :

जुलाई 1760 ई. में वेन्सीटार्ट फोर्ट विलियम को गवर्नर बनाकर कलकत्ता भेजा गया। कलकत्ता कौसिल के 16 सदस्यों में कलकत्ता कौसिल के अधिकांश सदस्य धन लोलुप तथा भ्रष्ट थे। ऐसे लोगों के मध्य वेन्सीटार्ट ठीक ढंग से कार्य न कर पाया। स्थिति उस समय और भी विषम हो गई जबकि उसके तीन समर्थक सदस्यों को कौसिल की सदस्यता से हटा दिया गया और उसके स्थान पर उसके विरोधियों को नियुक्त किया गया। वेन्सीटार्ट के प्रमुख विरोध एलिस को कम्पनी की पटना स्थित फैक्ट्री का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। कम्पनी के पदाधिकारियों में जिस तेजी के साथ परिवर्तन किया जा रहा था, उससे मीरजाफर के लिए कठिनाइयां उत्पन्न होने लग गई।

शाहजादा अलीगौहर का भय अभी बना हुआ था, क्योंकि कुछ स्थानीय जमींदार और सरदार उसको गुप्त सहयोग दे रहे थे। मराठे भी चौथ वसूली के नाम पर निरन्तर बंगाल में आते रहते थे। अंग्रेजों ने नवाब को इन सभी संकटों में बराबर सहायता दी, परन्तु उन्हें हमेशा यह शिकायत बनी रही कि नवाब और उसके पुत्र मीर न की तरफ से उन्हें पूरा सहयोग नहीं मिल पा रहा है। जब मीरजाफर ने अंग्रेजों के समर्थक रायदुर्लभ को मन्त्री पद से हटा दिया तो उनका असन्तोष और भी अधिक बढ़ गया। 3 जुलाई, 1760 ई. को किसी ने मीरन की हत्या कर दी जिससे अंग्रेजों को नवाब के नये नायब की नियुक्ति का अवसर मिल गया। उन्होंने किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करने का निश्चय किया जो उनके इशारे पर चले और उन्हें काफी भेंट–उपहार भी दे सके। ऐसा व्यक्ति मिल भी गया। वह था मीरजाफर का दामाद मीर कासिम।

मीर कासिम अत्यन्त ही धनी व्यक्ति था। उसने नवाब बनते ही अंग्रेजों को हर प्रकार की सहायता का आश्वासन दिया। उससे प्राप्त बहुमूल्यवान उपहारों से अंग्रेज पदाधिकारी खुश हो गये और अब उन्होने मीरजाफर को पदच्युत करके कासिम को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नया नवाब बनाने का षड़यन्त्र रचा, ताकि उन्हें और धन की प्राप्ति हो सके। इस सम्बन्ध में जो घटनाएं घटित हुई, उन्हें 1760 की रक्तहीन क्रांति कहते है। मीरजाफर को नवाब पद से हटाने के अनेक कारण थे –

1. कम्पनी के अधिकारियों तथा कर्मचारियों को लगातार रिश्वत एवं उपहार देते रहने से मीरजाफर का खजाना खाली हो गया था। परिस्थिति यहां तक पहुंच गई कि मीरजाफर ने तो कम्पनी को वार्षिक किश्त अदा नहीं कर पाया और न अपने सैनिकों को वेतन ही चुका पाया। दूसरी तरफ कम्पनी के सभी कर्मचारियों को नवाब से भेंट उपहार लेने की आदत सी हो गई थी। जब नवाब से उन्हें धन मिलना बन्द हो गया तो वे सभी नाराज हो गये और किसी दूसरे को नवाब बनाने की सोचने लगे जो उनकी भूख शांत कर सके।

2. मीरजाफर भी अंग्रेजों से तंग आ चुका था और उसने अब अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त होने का प्रयास किया, क्योंकि अंग्रेजों की कभी समाप्त न होने वाली इनकी मांग तथा प्रशासन–व्यवस्था में उनके हस्तक्षेप से वह काफी परेशान हो गया था।

3. अपने युवा पुत्र मीरन की हत्या से मीरजाफर को सदमा पहुँचा था जिससे वह शासन–प्रबन्ध की तरफ विशेष ध्यान न दे सका। उसकी इस उदासीनता के फलस्वरूप बंगाल की स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती चली गई। व्यापार–वाणिज्य भी ठप्प हो गया और शान्ति एवं व्यवस्था भी लड़खड़ा गई।

4. अंग्रेज अधिकारियों को विश्वास था कि मीरजाफर के स्थान पर जिसे भी नया नवाब बनाया जायेगा, उससे उन्हें काफी धन मिलेगा और कम्पनी को भी और अधिक सुविधाएं उपलब्ध हो सकेगी।

इस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भी धन की सख्त आवश्यकता थी। दक्षिण में फ्रांसीसियों के विरूद्ध लड़े जाने वाले युद्ध के कारण उसका खजाना खाली हो चुका था और मद्रास के अधिकारी बंगाल में नियुक्त अधिकारियों से बराबर धन की मांग कर रहे थे। बिहार में नियुक्त अंग्रेजी सेना को वेतन नहीं चुकाया जा सका था और वहां के सैनिक बगावत की बात करने लगे थे। कम्पनी को इस आर्थिक संकट से उबारने वाले मीरकासिम ही दिखलाई पड़ा। क्योंकि उसके पास धन था और वह नवाब बनने की इच्छा भी रखता था। ऐसी स्थिति में 27 सितम्बर 1760 ई. को वेन्सीटार्ट ने मीर कासिम के साथ एक गुप्त समझौता कर लिया जिसमें मीर कासिम को नवाब बनाने की बात कही गई थी और इसके बदले में मीर कासिम ने निम्न आश्वासन दिये थे –

1. वह अंग्रेजों का घनिष्ठ मित्र बना रहेगा।

2. बंगाल की शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए ब्रिटिश सेना मीर कासिम को पूरा–पूरा सहयोग देगी। मीर कासिम ने अंग्रेजों की इस सेना के व्यय के लिए उन्हें बर्दवान, मिनापुर और चिटगांव के प्रदेश देना स्वीकार किया।

3. सिलहट में उत्पादित सीमेंट का आधा भाग अंग्रेजों को तीन वर्ष तक खरीदने का अधिकार होगा।

4. मीरजाफर में कम्पनी की जो बकाया धन–राशि है उसे चुकाने का आश्वासन दिया।

5. दक्षिण मे कम्पनी द्वारा लड़े जा रहे युद्धों मे मीर कासिम ने 5 लाख रूपये की मदद देने का वचन दिया और

6. मीर कासिम कलकत्ता कौसिल के सदस्यों को लगभग 4,52,000 पौड उपहार में देगा। इसमें से 50,000 पौड वेन्सीटार्ट को, 27,000 पौड हॉलवे को तथा 25,000 पौड प्रत्येक सदस्य को देना तय हुआ था।

इस समझौते को बहुत ही गोपनीय रखा गया। मीरजाफर को इसकी भनक भी न पड़ी। अक्टूबर 1760 ई. में वेन्सीटार्ट सेना सहित मुर्शिदाबाद गया और गद्दी छोडन की बात कही। नवाब बहुत क्रोधित हुआ, परन्तु चूंकि ब्रिटिश सेना उसके महल को घेरे हुए थी, अतः विवश होकर उसे अंग्रेजों की बात माननी पड़ी। विवश होकर उसने पर्याप्त निर्वाह भत्ता तथा सुरक्षा के आश्वासन पर मीर कासिम के पक्ष में गद्दी त्याग दी। इसके बाद वह कलकत्ता चला आया और वही रहने लगा। इधर मीर कासिम को नया नवाब घोषित कर दिया गया।

मीरजाफर को गद्दी से उतारने के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कलकत्ता कौसिल ने कहा, ''नवाब मीरजाफर क्रोधी, क्रूर, लालची और विलासी प्रवृत्ति का था तथा उसके निकट के व्यक्ति पूर्णतया दास, खुशामदी तथा उसकी बुराइयों को पूर्ति के साधन बने हुए है। अनेक ऐसे उदाहरण है कि उसने बिना किसी कारण के विभिन्न स्तर के व्यक्तियों का खून बहाया है।'' कलकत्ता कौसिल के ये आरोप बेबुनियाद तथा तथ्य से परे है। सत्यता तो यह है कि अंग्रेजों ने उसे स्वतन्त्र रूप से शासन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चलाने का अवसर ही नहीं दिया। 1765 ई. में क्लाइव ने स्वयं स्वीकार किया था कि नवाब पर लगाये गये आरोप सत्य थे। ऑलवेल ने नवाब पर जो अमानवीय क्रूरता तथा हत्याओं का आरोप लगाया है – उसमें लेशमात्र भी सत्यता नहीं है। वस्तुस्तः मीरजाफर को हटाने के लिए किसी बहाने की आवश्यकता थी और इसके लिए उस पर झूठा दोषारोपण किया था। कुछ इतिहासकारों ने इस समूचे काण्ड के लिए मीर कासिम को दोषी ठहराया है परन्तु डॉ. नन्दलाल चटर्जी का मत है कि इसके लिए मीर कासिम को देषी ठहराना उचित नहीं होगा, क्योंकि विश्वासघात मीरजाफर को विश्वासघात का फल मिलना अनिवार्य था। अंग्रेजों को भी बाद में अपनी भूतल का पता चला और समय आने पर उन्हें पुनः मीरजाफर को नवाब बनाना पड़ा।

मीरजाफर से खफा अंग्रेजों को बंगाल में नये नायक की नियुक्ति का अवसर मिल गया और मीरजाफर की असन्तुष्ट सेना से मिलकर वन्सीटार्ट ने मीरकासिम को बंगाल का नया नवाब बना दिया।

1.12 नवाब मीरकासिम :

अंग्रेजों को मीरकासिम में ऐसा व्यक्ति मिल गया, जो उनके इशारों पर नाचकर उनकी धन लोलुपता को सन्तुष्ट कर सकता था। मीरकासिम अत्यन्त धनी व्यक्ति था। उसने अंग्रेजों को बहुमूल्य उपहार दिए एवं उन्हें नवाब बनाये जाने पर हर प्रकार से सहयोग का आश्वासन भी दिया। वन्सीटार्ट ने हॉलवेन के सहयोग से 27 सितम्बर, 1760 को मीरकासिम से गुप्त सन्धि कर ली, जिसमें मीरकासिम को नवाब शाही के बदले – बर्दमान, मिदनापुर एवं चटगावं के जिले अंग्रेजों को देने पड़े। दूसरे मीरकासिम ने कम्पनी के बकाया ऋण को चुकाने का आश्वासन दिया।

कम्पनी ने मीरकासिम को आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता प्रदान करने का भी वचन दिया। मीरजाफर को इस गुप्त समझौते की भनक भी नहीं पड़ी और वन्सीटार्ट एवं कम्पनी का सेनापति कैलॉड सेना सहित अक्टूबर, 1760 में मुर्शिदाबाद पहुंचे। मीरजाफर ने मीरकासिम को कोई भी पद देने के लिए आनाकानी की। 5 दिन की व्यर्थ बातचीत के पश्चात् कैलॉड ने नवाब के महल को घेर–लिया, असहाय नवाब मीरजाफर गद्दी छोड़ने को बाध्य हुआ। इसे 1760 की रक्तहीन क्रान्ति कहा जाता है। मीरकासिम को बंगाल का नवाब उसी तरह बनाया गया, जिस तरह मीरजाफर को।

मीरजाफर से 1757 में की गई सन्धि की यदि 1760 में मीरकासिम से की गई सन्धि से तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो हम यह पाएंगे कि अंग्रेजों को एक कठपुतली शासक की दरकार थी, जो उनके इशारों पर नाच सके, जिसके लिए उन्हें एक आधारहीन बहाना चाहिए था। डॉ. नन्दलाल चटर्जी के मत में मीरकासिम को दोषी ठहराना उचित नहीं होगा, क्योकि विश्वासघाती मीरजाफर को विश्वासघात का फल मिलना अनिवार्य था।

1.13 मीरकासिम व अंग्रेजों के मध्य तनाव :

मीरकासिम की नवाबशाही के कुछ महीने ही ठीक से बीते होंगे कि अंग्रेजों के साथ उसके सम्बन्ध तनावग्रस्त होते चले गए। वस्तुतः वह एक योग्य सेनानायक था। मीरजाफर के शासन सम्बन्ध तनावग्रस्त होते चले गए। वस्तुतः वह एक योग्य सेनानायक था। मीरजाफर के शासन काल में पूर्णिया और रंगपुर के फौजदार के रूप में उसने अपनी प्रशासनिक कुशलता का अच्छा परिचय दिया था। अंग्रेजों के इरादे को वह अतिशीघ्र भांप चुका था। और उनसे मुक्ति पाने के रास्ते ढूंढने लगा। अपने इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु उसने धन व सैन्य–बल की आवश्यकता को प्राथमिकता दी। जिस किसी भी व्यक्ति के पास अधिक धन था, उसे जब्त कर लिया और भ्रष्टाचार के आरोप में पुराने राज्याधिकारियों से भी धन जब्त किया गया, राजस्व विभाग का पुनर्गठन किया एवं सरकारी खर्चों में कटौती की गई। नए कर लगाकर राजस्व में काफी सुधार लाया गया।

सैन्य प्रशासन में सुधार के लिए मीरकासिम ने अपनी सेना को प्रशिक्षित करने के लिए फ्रांसीसियों को नियुक्त किया, जिन्हें अंग्रेज पसन्द नहीं करते थे।

अंग्रेजों को नवाब की नीतियों एवं क्रियान्विति की भनक न लगे इसलिए 1762 ई. में वह अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से मुंगेर (जो कलकत्ता से काफी दूर थी) ले गया। मुंगेर में उसने बारूद बनाने तथा अच्छा तोपखाना स्थापित किया। अवज्ञा करने वाले जमींदारों एवं अधिकारियों के विरूद्ध दमनात्मक कार्यवाही की गई। रामनारायण, जिसे अंग्रेजी संरक्षण प्राप्त था, की सम्पत्ति जब्त कर उसे गिरफ्तार किया गया।

वक्त के साथ–साथ अंग्रेजों और नवाब के सम्बन्ध कटु होते चले गए। ताराचन्द के शब्दों में, 'योग्य व महत्त्वाकांक्षी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

किन्तु बहमी और युद्ध से डरने वाला होते हुए भी समय की बावली और बेरहम राजनीति के उपयुक्त था और यथासम्भव शीघ्र अपनी स्वतंत्रता पाने को कटिबद्ध था।' केन्द्र में इन दिनों मुगल सम्राट् आलमगीर द्वितीय का वध हो गया था और अलीगौहर ने शाहआलम द्वितीय की उपाधि धारण कर स्वयं को बादशाह घोषित किया। अंग्रेज सेनापति कारनेक (जो मद्रास से आया था) का मुगल बादशाह से 15 जनवरी, 1761 में संघर्ष हो गया। शाहआलम पराजित हुआ, किन्तु अन्त में दोनों में समझौता भी हो गया। अंग्रेजों ने मीरकासिम को, शाहआलम को सम्राट् मानने के लिए विवश किया तथा उससे 12 लाख नकद नजराने के रूप में दिलवाए व शाह आलम के नाम पर सिक्के भी ढलवाए। मीरकासिम को ज्ञात था कि अंग्रेजों के प्रतिकूल कार्य करने पर उसे अपदस्थ किया जा सकता है। उधर प्लासी के बाद बंगाल में कम्पनी के नौकर लगान वसूली का कार्य भी करने लगे, जिसकी शिकायत मीरकासिम ने कई बार कम्पनी अधिकारियों को की। कम्पनी कार्मिक बिना चुंगी दिए ही, बांस, तेल, नमक, मछली, धान एवं चावल अदि का व्यापार करने लगे। भारतीय व्यापारियों को उन्हीं सामानों को बेचने के लिए चुंगी देनी पड़ती थी। अंग्रेज कर्मचारियों के व्यक्तिगत व्यापार से चुंगी प्राप्त न होने से नवाब के राजस्व को भारी नुकसान हो रहा था। इन अनियमितताओं को शिकायत नवाब ने वन्सीटार्ट को भी की, किन्तु कलकत्ता कौसिल के सदस्यों पर वारेन हेस्टिंग्स (उस समय कम्पनी का एक अधिकारी मात्र था) के समझाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। डॉ. ताराचन्द ने उल्लेख किया है कि 'अंग्रेज कर्मचारी भारतीय व्यापारियों से घूस लेकर उनका सामान भी चुंगी से मुक्त करा लेते थे। इस प्रकार मीरकासिम की सरकार को करों से वंचित करके अपना निजी लाभ करते थे। विवश होकर मीरकासिम ने समस्त आन्तरिक व्यापार को कर से मुक्त कर दिया। नवाब के इस कदम से अंग्रेज अत्यधिक नाराज हुए क्योंकि यह उनके विशिष्ट अधिकारों पर कुठाराघात था।'

मीरकासिम ने 1760 ई की सन्धि के अन्तर्गत बर्दवान, मिदनापुर और चटगांव जिले कम्पनी को इस शर्त पर दिए थे कि नवाब की सहायता के लिए अंग्रेजी सेना का व्यय इन तीनों जिलो की आय से किया जाएगा, परन्तु उस सेना को नवाब के ही विरूद्ध काम में लिए जाने का आरोप लगाकर मीरकासिम ने तीनों जिले वापस लौटाने को कहा। इस पर कम्पनी व नवाब के मध्य तनाव चरम सीमा तक पहुंच गया। वास्तव में, तनाव का कारण बना बंगाल में वास्तविक शासक का प्रश्न। कम्पनी मीरकासिम को कठपुतली नवाब बनाकर खुद शासन करना चाहती थी और मीरकासिम अपनी स्वतंत्रता पाने को कटिबद्ध था। पटना फैक्ट्री के अंग्रेज अफसर एलिस एवं नवाब के परस्पर विरोध ने आग में घी का काम किया। एलिस द्वारा नवाब के कार्यों में बाधा डाले जाने से नवाब ने रूष्ट होकर एक अंग्रेज अधिकारी को गिरफ्तार कर लिया। इसके विरोध मे एलिस ने पटना पर आक्रमण कर उसे लूट लिया। इस प्रकार मीरकासिम एंव अंग्रेजो मे जुलाई 1763 में युद्ध प्रारम्भ हो गया। अंग्रेजो ने कटवा, मुर्शिदाबाद, गिरया, सूटी, उदयनाल, मुंगेर आदि में मीरकासिम की सेना को हराया। अपनी पराजय पर आगबबूला होकर नवाब पटना भागा, जंहा उसने सभी 148 अंग्रेज कैदियों की हत्या कर दी। पटना से वह अवध भागा, जहां उसने नवाब शुजाउद्दौला व मुगल सम्राट् शाहआलम से कम्पनी के विरूद्ध एक समझौता किया। उधर बंगाल में अंग्रेजों ने पुनः मीरजाफर को नवाब बना दिया।

1.14 बक्सर का युद्ध (सन् 1764) :

अब मीरकासिम अवध के नवाब शुजाउद्दौला के आश्रय में था, जहां मुगल सम्राट् शाहआलम द्वितीय पहले से उसकी शरण में जीवनयापन कर रहा था। शुजाउद्दौला ने सैनिक खर्च लेकर बंगाल में मीरकासिम की सत्ता पुनः स्थापित कराने का आश्वासन दिया और इस प्रकार तीनों में गठबन्धन स्थापित हुआ। कम्पनी ने मीरजाफर से गुप्त समझौता कर जुलाई, 1763 में पुनः बंगाल का कठपुतली नवाब घोषित किया।

भविष्य में खड़ी होने वाली परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए अंग्रेजो ने पहले से युद्ध की तैयारियां कर रखी थीं। मीरकासिम की संयुक्त सेना पटना की ओर बड़ी उसे विजित किया। अंग्रेज सेनानायक हेक्टर मुनरो 8000 सैनिकों के साथ बनारस के पूर्व में स्थित बक्सर नामक स्थान पर पहुंच गया, नवाब की सेनाएं भी वहां पहुंच गई। शुजा की सेना में यद्यपि डेढ़ लाख सैनिक थे, किन्तु लड़ने वाले 40,000 से अधिक नहीं थे। 23 अक्टूबर, 1764 को आमने–सामने युद्ध हुआ, तीन घण्टे के घमासान के पश्चात् अवध की सेना मैदान छोड़ भाग खड़ी हुई। प्राप्त विवरण के अनुसार शुजा के 2000 तथा अंग्रेजों के 825 व्यक्ति मारे गये। स्वयं शुजाउद्दौला भाग खड़ा हुआ। अंग्रेजों ने उसका पीछा किया और अप्रैल, 1765 में कड़ा के युद्ध में उसे परास्त किया, अन्ततः शुजा ने आत्मसमर्पण कर दिया। मीरकासिम रूहेलखण्ड भाग खड़ा हुआ वहां से वह दिल्ली चला गया और बारह वर्ष तक भटकते हुए 7 जून, 1777 को दुनिया से चल बसा। मुगल सम्राट् शाहआलम ने युद्ध में उदासीनता दिखाई तभी युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों से समझौता कर लिया। इस प्रकार यह युद्ध भी अंग्रेजों के पक्ष में रहा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.15 युद्ध का महत्त्व :

स्मिथ ने इस युद्ध के विषय मे कहा कि – "प्लासी तो गोलों की वर्षा मात्र थी, किन्तु बक्सर का युद्ध एक निर्णायक युद्ध था।"

थॉम्पसन व गैरेट के अनुसार कम्पनी महान् शक्तिशाली व्यापारिक गणतन्त्र बन गई थी, जो कार्थेज के पतन के बाद सबसे शक्तिशाली थी। बक्सर युद्ध ने अंग्रेजों को बंगाल का वास्तविक शासक बना दिया, जिसका निर्णय प्लासी में पूर्ण रूप से नहीं हो पाया था। प्लासी में तो सिर्फ बंगाल की सेना परास्त हुई थी, परन्तु बक्सर में उत्तरी भारत की श्रेष्ठ सना को परास्त कर अंग्रेजों ने भारत में ब्रिटिश शासन की नींव मजबूत की। बंगाल एवं अवध कम्पनी के नियन्त्रण में आने से अंग्रेजों के लिए दिल्ली की और बढ़ने का रास्ता साफ हो गया, जिसकी कल्पना सम्भवतः क्लाइव ने भी नहीं की होगी। शाहआलम न केवल ब्रिटिश केम्प में आ गया, बल्कि पूर्णतः अंग्रेजों पर निर्भर हो गया। बंगाल के नवाब के अधिकार भी पूर्णतः समाप्त कर दिए गये। पी.ई. राबर्ट्स के मतानुसार प्लासी की अपेक्षा बक्सर को भारत में अंग्रेजी प्रभुसत्ता की जन्मभूमि मानना कहीं अधिक उपर्युक्त है। बक्सर ने अंग्रेजी सैन्य कुशलता को भी सिद्ध किया। रेम्जे म्यूर के अनुसार बक्सर ने अन्तिम रूप से बंगाल में अंग्रेजी राज्य की कड़ियों में रिबट (कीलें) लगा दी।

1.16 नवाब मीरजाफर (जुलाई, 1763 से फरवरी, 1765) :

अंग्रेजी कूटनीति के परिणामस्वरूप जुलाई, 1763 में मीरजाफर को पुनः बंगाल का नवाब बनाया गया। मीरजाफर ने पहले की भांति कम्पनी को व्यापारिक सुविधाएं प्रदान कीं व अन्तर्देशीय व्यापार में विशेषाधिकार भी दिए। मीरकासिम में युद्ध द्वारा हुई क्षति की पूर्ति भी मीरजाफर द्वारा की गई। कम्पनी को 30 लाख रूपये इजाने के रूप में व 5 लाख क्षतिपूर्ति के तौर पर दिए गए। बर्दवान, मिदनापुर व चिटगांव स्थाई रूप से कम्पनी को दिए गए। इतना करने के पश्चात् भी अंग्रेजों ने नवाब की सेना में भारी कटौती कर दी।

इस प्रकार पुनः बंगाल के प्रशासन में कम्पनी के हस्तक्षेप से अराजकता एवं भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया। मीरजाफर लाचार होकर इन निराशाजनक परिस्थितियों में 5 फरवरी, 1765 को दुनिया से चल बसा। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका दूसरा पुत्र निजामुद्दीना 20 फरवरी, 1765 को नवाब बना। नए नवाब से एक सन्धि द्वारा प्रान्त की सुरक्षा (निजामत) फरवरी, 1765 में कलकत्ता कौसिल ने अपने हाथ में ली। दूसरे शब्दों में नवाब की सेना समाप्त कर दी गई और अंग्रेजी सेना ने सुरक्षा का दायित्व संभाल लिया। सन्धि के प्रावधानों के अनुसार नायब सूबेदार की नियुक्ति की गई जिसे सूबेदार के रूप में प्रशासनिक व्यवस्था देखनी थी। तदनुसार रजाखाँ को नवाब सूबेदार नियुक्त किया गया। ताराचन्द ने चर्चा की है – पहले कुछ वर्षों में कम्पनी में इतना साहस न था कि वह दीवानी के हस्तान्तरण में निहित उत्तरदायित्व पूरी तरह संभाल लेती। अतः उन लोगों ने भारतीय सत्ता की अधीनता का अपना आवरण ज्यों का त्यों बनाए रखने का प्रयास किया। वे लोग मुगल प्रभुत्ता की आड़ में काम करते रहे। असन्धि की अन्य व्यवस्थाओं के अनुसार सेना, रक्षा व्यवस्था, बाहरी सम्बन्ध तथा वित्तीय व्यवस्था पर कम्पनी का नियन्त्रण हो गया। नवाब को माल महकमे में नौकर रखने या निकालने का अधिकार तक नहीं रहा। इस तरह बंगाल में स्वतन्त्र शासन समाप्त हो गया। नवाब के लिए 53 लाख वार्षिक दिये जाने का प्रावधान किया गया।

1.17 क्लाइव की वापसी (मई, 1765 से फरवरी, 1767 तक) :

अंग्रेजों के भ्रष्टाचार एवं अव्यवस्था से बंगाल की स्थिति शोचनीय होती जा रही थी। कम्पनी के अधिकारी स्वयं को शासक समझने लगे एवं नवाब के कर्मचारियों को शासित। कम्पनी द्वारा इस अवांछित हस्तक्षेप से बंगाल की प्रशासनिक व्यवस्था नष्ट हो गई थी और भ्रष्टाचार व्यापक रूप ले चुका था। अतः कम्पनी निर्देशकों के सभापति रोस के प्रभाव से निर्देशक समिति ने क्लाइव को पुनः बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया। 3 मई, 1765 को बंगाल की दयनीय व्यवस्था को देखकर उसने उल्लेख किया कि – "मै तो सिर्फ इतना कहूंगा कि अराजकता, अनिश्चितता, रिश्वत, भ्रष्टाचार का ऐसा दृश्य बंगाल के सिवाय कहीं देखा या सुना गया और न ही इतने भाग्य निर्माण इतने समय में इस बेरहमी से हुए।

क्लाइव ने तुरन्त चार व्यक्तियों की विशेष समिति (सलेक्ट कमेटी) का गठन कर लिया, जिसमें कर्नल कारनाक, वेरेल्स्ट, समनर एवं साइक्स सम्मिलित थे एवं कम्पनी के बाह्य एवं आन्तरिक मामालों में सुधार के क्रियान्वयन हेतु बंगाल में दोहरा प्रशासन लागू किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.18 इलाहाबाद की सन्धि (1765 ई.) :

भारत आगमन के बाद क्लाइव का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य मुगल बादशाह एवं शुजाउद्दौला से सन्धि करना था। 12 अगस्त, 1765 को मुगल सम्राट शाहआलम से इलाहाबाद में एक सन्धि की गई, जिसके द्वारा –

मुगल सम्राट ने एक विशेष फरमान द्वारा बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी का अधिकार कम्पनी को दिया।

शाहआलम की पूर्वी सीमा कड़ा एवं इलाहाबद देकर निर्धारित की गई।

अंग्रेजों को दीवानी प्रदान किए जाने के बदले 26 लाख वार्षिक बंगाल के नवाब से बादशाह हो प्रदान करवाने का दायित्व अंग्रेजों ने स्वीकार किया।

16 अगस्त, 1765 को क्लाइव ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से पृथक सन्धि की, जिसके अनुसार :

1. कड़ा एवं इलाहाबाद के क्षेत्र मुगल बादशाह को दिए गए एवं बाकी का समस्त राज्य उसे वापस लौटा दिया गया।

नवाब ने बाह्य आक्रमणों के दौरान भेजी जाने वाली अंग्रेज सेना का खर्चा वहन करना स्वीकार किया।

हर्जाने के तौर पर 50 लाख रूपये नवाब ने कम्पनी को प्रदान किए।

चुनार का दुर्ग अंग्रेजों के पास रहने दिया।

1.18.1 सन्धि का महत्त्व :

सन्धि की शर्तों से स्पष्ट है कि अवध का नवाब व मुगल सम्राट व्यावहारिक तौर पर कम्पनी के दयापात्र से अधिक नहीं रहे। अवध को अंग्रेजी राज्य में न मिलाकर क्लाइव ने मराठों एवं रूहेलों से स्वयं का बचाव कर दूरदर्शिता का परिणाम दिया। अवध के मित्र बन जाने से पश्चिम में बंगाल की सीमा सुरक्षित हो गई और अवध में अंग्रेजों को बंगाल की भांति सम्पूर्ण व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त हो गई। रैम्जेम्यूर लिखते है – "अब अवध के साथ मित्रता रखना अंग्रेजों की स्थायी नीति हो गई, जो मराठों की बढ़ती हुई शक्ति के मार्ग में एक महत्वपूर्ण बाधा थी।" पी.ई. राबर्ट्स ने भी सन्धि की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि अवध के साथ की गई सन्धि क्लाइव के राजनीतिक कार्यों में अधिक दीर्घजीव सिद्ध हुई। सन् 1857 की क्रान्ति तक अवध, जबकि लार्ड डलहौजी ने इसे शेष भारत में मिला लिया, वह मध्यवर्ती राज्य बना रहा।

इस प्रकार भगोड़े मुगल सम्राट के साथ सन्धि करके क्लाइव ने कुशलता व कूटनीति का परिचय दिया। उसने बिना किसी उत्तरदायित्व के दिल्ली पर कम्पनी का अप्रत्यक्ष रूप से प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इस प्रकार सन्धि ने कम्पनी की स्थिति को सुदृढ़ किया।

1.19 बंगाल में दोहरा शासन :

मुगल शासन पद्धति के ही अनुरूप बंगाल में भी शासन दो भागों में बंटा हुआ था पहला दीवानी शासन – जिसके अन्तर्गत दीवानी न्याय व कर वसूली का कार्य सम्मिलित था और दूसरा निजामत जिसके अन्तर्गत बाह्य आक्रमण से रक्षा, आन्तरिक शान्ति व्यवस्था और फौजदारी न्याय के कार्य सम्मिलित थे। दीवानी का सर्वोपरी अधिकारी दीवान कहलाता था, जिसे मुगल बादशाह स्वयं नियुक्त करता था, जबकि निजामत का सर्वोपरी अधिकारी नाजिम कहलाता था। जैसे–जैसे मुगल स्वायत्तता की ओर अग्रसर हुआ, वैसे ही निजामत और दीवानी का सर्वोपरी अधिकारी दीवान कहलाता था, जिसे मुगल बादशाह स्वय नियुक्त करता था, जबकि निजामत का सर्वोपरि अधिकारी नाजिम कहलाता था। जैसे–जैस मुगल स्वायत्तता की ओर अग्रसर हुआ वैसे ही निजामत और दीवानी–दोनों अधिकार व्यावहारिक तौर पर ग्रहण कर लिए गए।

इलाहाबाद की सन्धि द्वारा शाहआलम को बंगाल के द्वारा (कड़ा एवं इलाहाबाद) पर स्थापित कर देने से कम्पनी बाहरी आक्रमण के भय से मुक्त हो गई थी। दूसरी ओर शुजा के साथ सन्धि से अवध को एक बार फिर राज्य के रूप में खड़ा कर दिया और इस प्रकार अंग्रेज न केवल अवध की ओर से चिन्तामुक्त थे, बल्कि अन्य किसी आक्रमण का भय न रहा। क्लाइव ने 15 अगस्त, 1765 में मुगल बादशाह से बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी प्राप्त की एंव उससे पूर्व फरवरी, 1765 में प्रान्त की सुरक्षा (निजामत) प्राप्त कर ली थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इन प्रावधानों में शाहआलम को 26 लाख तथा बंगाल के नवाब निजामुद्दौला को 53 लाख देने के पश्चात् समस्त भूराजस्व एवं अन्य प्रकार की मालगुजारी पर कम्पनी का अधिकार हो गया और साथ ही सुरक्षा व्यवस्था भी अंग्रेजों के हाथ में आ गई। इस तरह क्लाइव ने विदेशी नीति तथा विदेशी व्यापार का प्रबन्ध कम्पनी के नेतृत्व में लिया और राजस्व वसूली तथा न्याय करने का कार्य नवाब को सौप दिया। दीवानी का कार्य करने हेतु क्लाइव ने नायब दीवान नियुक्त किए, बंगाल में मोहम्मद रजा खाँ, दुर्लभराय तथा बिहार में सीताबराय। इनकी नियुक्ति तथा इन्हें पदच्युत करने का अधिकार कम्पनी ने पूर्णतः अपने पास रखा। इस प्रकार लगान वसूली की आय से निजामत का खर्च चलाना तथा शाहआलम को पेंशन देने के पश्चात् बची रकम को कम्पनी के खजाने में जमा करना पड़ता था।

इस प्रकार बंगाल का प्रशासन दो शक्तियों में विभक्त हो गया और क्लाइव की इस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था ही 'दोहरी शासन व्यवस्था' कहलायी, जो 1767 से 1772 ई. तक कार्यरत रही।

इस शासन व्यवस्था के कम्पनी के हित में कई लाभ थे। क्लाइव ने बड़े ही चातुर्य से प्रशासन करने के अधिकार राजस्व वसूली तथा दीवानी न्याय अपने पास रखकर बंगाल की प्रभुता तो कम्पनी के हाथ में केन्द्रीभूत कर दी तथा आन्तरिक शान्ति व्यवस्था, फौजदारी न्याय एवं अन्य समस्त प्रशासनिक उत्तरदायित्व उस नवाब पर डाल दिए जिसके हाथ में कोई सत्ता नहीं थी एवं जो स्वयं कम्पनी का पेंशन–भत्ता मात्र था। उसकी प्रशासनिक योजना की विशेषता उत्तरदायित्व सहित अधिकार और अधिकार रहित उत्तरदायित्व था।

शासन के उत्तरदायित्व से मुक्त होने के फलस्वरूप कम्पनी के पास अत्यधिक धन एकत्रित हुआ जिसे क्लाइव ने सैन्य–बल बढ़ाने में निवेश किया। इस दोहरे प्रशासन द्वारा क्लाइव ने मराठों के संभावित आक्रमण से भी कम्पनी को बचा लिया। इसके अतिरिक्त भारत में ही नहीं दोहरे प्रशासन द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी को तत्कालीन यूरोपीय प्रतिस्पर्द्धी शक्तियों की ईर्ष्या व द्वेष से भी बचाया जा सका।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी को शासन संचालने लिए अत्यधिक कर्मचारियों की जरूरत पड़ती, क्लाइव ने कम्पनी को बढ़ने वाले आर्थिक प्रभार से बचा लिया। वैसे भी कम्पनी एक व्यापारिक संस्था थी जिसे हालांकि क्लाइव ने एक राजनीतिक रूप दे दिया था। परन्तु दोहरे प्रशासन की आड़ में वह व्यापारिक ज्यादा दिखाई दे रही थी।

भारतीयों के लिए दोहरा शासन अधिक गम्भीर एवं घातक सिद्ध हुआ। पी.ई. रॉबर्ट्स के शब्दों में – "अभाग्यवश शक्तिहीन उत्तरदायित्व के फलस्वरूप पुराने दोषों का पुनः प्रकोप प्रारम्भ हो गया।" बंगाल में द्वैध शासन द्वारा वास्तविक शक्ति कम्पनी के पास थी परन्तु कम्पनी के अधिकारियों के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया था। नवाब को मात्र 53 लाख वार्षिक पेंशन मिलती थी जिससे प्रशासन संचालन असम्भव था। नवाब की कमजोर स्थिति का उसके कर्मचारियों ने फायदा उठाना शुरू किया एवं व्यापक स्तर पर भ्रष्टाचार एवं कार्मिक शिथिलता आ गई। यह व्यवस्था उत्तरदायित्व और अधिकारों के बीच तालक थी।"

प्रशासन के साथ–साथ न्यायपालिका में भी, जो नवाब के कार्यक्षेत्र में थी व्यापक शिथिलता एवं घूसखोरी व्याप्त हो गई। धन के लालच में न्यायकर्मी अनैतिक कार्य करने लगे जिससे बंगाल का चारित्रिक पतन हुआ।

1.20 भूराजस्व व्यवस्था :

क्लाइव ने दीवानी का कार्य करने हेतु नायब दीवान नियुक्त किए, जिनके माध्यम से अंग्रेजों ने भूराजस्व वसूल करने का कार्य ठेकेदारों को सौप दिया। प्रतिवर्ष राजस्व वसूली हेतु नीलामी द्वारा ठेका दिया जाता था। प्रतिवर्ष पूर्व से अधिक बोली लगने से भूराजस्व की दर में वृद्धि होती गई। 1765 में जहां बंगाल से 80 लाख रू. राजस्व वसूल किया जाता था, वह बढ़कर सन् 1766–67 में 2 करोड़ 24 लाख रू. से अधिक हो गया। परिणामस्वरूप कृषकों की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती गई, जिससे कृषि उत्पादन में ह्रास हुआ। ठेके पर लेने वाले व्यक्ति भूमि की उर्वरता को बढ़ाने या बनाये रखने के लिए कुछ नहीं करते थे। अभाग्यवश अकाल की मार ने किसानों की दुविधाओं को बढ़ा दियां। पैदावार न होने पर भी आमिल किसानों का भयंकर शोषण करते रहे। सरकार से न्याय की आशा न रखते हुए किसान भूमि छोड़कर भाग गये। गुरूमुखनिहाल सिंह ने लिखा है कि, "आमिलों के जुल्म व अकाल के कारण शस्य–श्यामल खेत किसान व जानवरों की हड्डियों से श्वेत दृष्टिगोचर होने लगे थे।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कृषि के साथ ही जुड़े बंगाल के कुटीर उद्योग भी नष्ट होने लगे। कम्पनी के अधिकारी कच्चे रेशम का उत्पादन करवाकर रेशमी वस्त्र बनवाकर इंग्लैण्ड से आयात करवाते थे, जिस पर नाममात्र कर लगता था। इस प्रकार बंगाल जैसा धनी प्रदेश एक कंगाल प्रदेश बन गया। 1857 में इंग्लैण्ड की संसद के निचले सदन में सर जॉर्ज कॉर्नवाल ने कहा था, ''मै निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि 1765–84 तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार से अधिक भ्रष्ट झूठी तथा बूरी सरकार संसार के किसी भी सभ्य देश में नहीं थी।''

स्मिथ ने लिखा है – दोहरी व्यवस्था का सही नाम अप्रत्यक्ष व्यवस्था रखा गया जो धीरे–धीरे प्रत्यक्ष व्यवस्था में परिणत हो गई। इन्हीं परिस्थितियों में वारेन हेस्टिंग्ज ने इस दूषित प्रथा को 1772 में समाप्त कर दिया।

1.21 क्लाइव का मूल्यांकन :

रॉबर्ट क्लाइव कम्पनी में एक सामान्य लिपिक से सेवा प्रारम्भ करके गवर्नर के पद तक पहुंचने में सफल रहा। वह निर्भीक सेनानायक था। अपनी योग्यता वह अकार्ट के घेरे एवं चांदा साहब की विजय के दौरान दिखा चुका था। मीरजाफर के साथ षड्यन्त्र रचकर बंगाल के नवाब को प्लासी के युद्ध में परास्त कर बंगाल में कम्पनी की राजनीतिक प्रभुता स्थापित करने वाला रॉबर्ट क्लाइव ही था। अपने दूसरे काल में भी 'फूट डालो राज्य करो' की नीति को बढ़ावा देते हुए उसन शाहआलम से बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवनी प्राप्त की तथा अल्पवयस्क नवाब निजामुद्दौला से निजामत प्राप्त कर उसने बंगाल की वास्तविक सत्ता अपने हाथ में ले ली। अल्फ्रेड लायल इस बात का समर्थन करते हुए लिखते है – अंग्रेज लोग भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव के लिए अन्य व्यक्तियों से अधिक इसी ऊँची उत्तेजना वाले साहसी तथा अजेय व्यक्ति क्लाइव के ऋणी है।'' स्मिथ ने भी क्लाइव को मानव जाति का नेता कहा है।

क्लाइव के जीवन का दूसरा पक्ष अत्यन्त निन्दनीय था। वह एक लालची, अमानवीय व स्वार्थपरक कर्मचारी था जिसके लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट उस पर (प्लासी युद्ध की लूट को लेकर) दोष लगाए गए और उसके अवैध तरीकों की अलोचना भी हुई। जगन्नाथ मिश्र लिखते है – ''धन संग्रह किसी भी अधिकारी के लिए अवगुण था और विशेष रूप से सर्वोच्च अधिकारी और विजयी सेनानायक के लिए क्योंकि क्लाइव से प्रोत्साहित होकर अन्य शक्तिशाली सैनिक अधिकारियों ने बंगाल की लूट प्रारम्भ कर दी।'' इस प्रकार क्लाइव को भारत की सम्पत्ति के पलायन का जन्मदाता कहा जा सकता है। उनके द्वारा स्थापित दोहरी शासन व्यवस्था भी पूर्णत असफल रही।

बंगाल में सर्वत्र अराजकता एवं भ्रष्टाचार व्याप्त था जिसे देखकर वारेन हेस्टिंग्ज ने तुरन्त इसे 1772 ई. में समाप्त कर दिया। इसलिए वर्क ने उसे ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक नहीं कहा, 'जिस प्रकार बाबर नहीं बल्कि अकबर मुगल साम्राज्य स्थापित करना क्लाइव का नहीं वरन् उसके उत्तराधिकारियों का काम था। ए.मरविन डेविस ने भी वारेन हेस्टिंग्ज को अंग्रेजी राज का संस्थापक कहा है।''

1.22 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – इलाहाबाद की सन्धि कब हुई थी?

(अ) 1760 ई. (ब) 1762 ई.

(स) 1765 ई. (द) 1768 ई.

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – बंगाल में द्वैध शासन पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – प्लासी के युद्ध के कारण और परिणामों की विवेचना किजिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 2

प्रशासनिक बदलाव एवं नीतियाँ

(1772–1793 ई.)

2.0 ब्रिटिश प्रशासन का पुनर्गठन
2.1 वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा प्रशासन का पुनर्गठन
2.2 हेस्टिंग्ज के सुधार
2.2.1 शासन सम्बन्धी
2.2.2. न्याय सम्बन्धी
2.2.3. अर्थ सम्बन्धी
2.2.4. व्यापार सम्बन्धी
2.3 रेग्यूलेटिंग ऐक्ट
2.3.1 रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की धाराएं
2.3.2 रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष
2.3.3 दोषों का निवारण
2.4 हैस्टिंग्ज तथा उसकी कौसिल
2.5 कड़ा एवं इलाहाबाद का पुनर्विक्रय
2.6 रूहेला युद्ध
2.7 नन्दकुमार को फाँसी
2.8 चेतसिंह के प्रति दुर्व्यवहार
2.9 अवध की बेगमों का अपमान
2.10 वारेन हेस्टिंग्ज एवं न्यायिक प्रणाली
2.10.1 दीवानी व्यवस्था
2.10.2 फौजदारी व्यवस्था
2.11 बंगाल न्यायालय एक्ट 1781
2.12 न्यायिक व्यवस्था (1783–1793 ई.)
2.12.1 मुन्सिफ कोर्ट
2.12.2 जिला दीवानी न्यायालय
2.12.3 प्रान्तीय दीवानी न्यायालय
2.12.4 सदर दीवानी अदालत
2.12.5 फौजदारी न्यायालय
2.13 कार्नवालिस कोड (1793 ई.)
2.14 बैटिक कालीन बदलाव (1829–1836 ई.)
2.15 बोध प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.0 ब्रिटिश प्रशासन का पुनर्गठन :

बंगाल में ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद कम्पनी के साम्राज्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई तथा 1856 ई. तक ब्रिटिश साम्राज्य अपने चरम बिन्दु पर पहुंच गया। बढ़ते हुए साम्राज्य में प्रशासनिक पुनर्गठन आवश्यक था। अतः कम्पनी पहुंच गया। बढ़ते हुए साम्राज्य विस्तार करती रही, त्यों–त्यों अपने क्षेत्रों में प्रशासनिक व्यवस्था का पुनर्गठन भी करती रही। साम्राज्य विस्तार और पुनर्गठन की इस प्रक्रिया में कम्पनी सरकार ने भारत में कुछ ऐसे गवर्नर जनरल भी भेजे, जिन्होंने कम्पनी राज्य का विस्तार कर कम्पनी के प्रभाव में वृद्धि की और कुछ ऐसे गवर्नर जनरल भी भेजती रही, जिन्होंने विस्तृत साम्राज्य को संगठित करने में अपनी रूचि दिखाई। अतः 1772 से 1856 के बीच विभिन्न गवर्नर जनरलों द्वारा किये गये प्रशासनिक कार्यों का वर्णन करना समीचीन होगा।

2.1 वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा प्रशासन का पुनर्गठन :

वारेन हेस्टिंग्ज 1750 ई. में कम्पनी का कर्मचारी बनकर कलकत्ता आया था। अपनी योग्यता एवं लगन के कारण निरन्तर उन्नति करता आया और 1772 ई. में उसे बंगाल का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। किन्तु उस समय कम्पनी से सम्मुख अनेक समस्याएं उपस्थित थी। क्लाइव द्वारा स्थापित द्वैध शासन के पूरे परिणाम स्पष्ट दिखाई देने लगे थे। कम्पनी के अंग्रेज कर्मचारियों तथा भारतीय नायब दीवानों ने अत्याचारों द्वारा अपनी जेबे गर्म करना तथा जनता का तीव्र शोषण करना आरम्भ कर दिया था। कम्पनी के संचालकों को भी विश्वास हो गया था कि कम्पनी के राजस्व का एक बहुत बड़ा भाग कम्पनी कर्मचारी अपने निजी अधिकार मे रख लेते है। अतः 1771 में संचालक समिति ने बंगाल कौसिल के अध्यक्ष को आदेश दिया था कि –

1. कम्पनी स्वयं दीवानी का कार्य करे तथा राजस्व वसूली का कार्य कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा किया जाये।

2. नायब दीवान तथा उसके अधीन कार्य करने वाले समस्त कर्मचारियों से पदच्युत कर दिया जाये।

3. दोनों नायब दीवानों को बन्दी बना कर उन पर मुकदमा चलाया जाये, ताकि नायब दीवानों द्वारा किये गये धन का अपहर व घूसखोरी का पता लगाया जा सके।

उपर्युक्त आदेश के कारण वारेन हैस्टिंग्ज ने अपना पद ग्रहण करते ही, क्लाइव द्वारा द्वैध शासन का अन्त कर दिया। दोनों नायब दीवानों–रजाखां और शतबराय को पदच्युत कर उन पर मुकदमा चलाया गया। इन दोनों के विरूद्ध कोई ठोस सबूत नहीं थे, केवल दीवानी का कार्य अपने हाथ में लेने के औचित्य को सिद्ध करने के लिये, ये मुकदमे चलाये गये थे। यह मुकदमा दो वर्ष तक चलता रहा और अन्त में उन्हे निर्दोष घोषित कर दिया गया। इन मुकदमों से इतना लाभ अवश्य हुआ कि दोनों नायब दीवानों की प्रतिष्ठा पूरी तरह से समाप्त हो गयी तथा कम्पनी के प्रभाव को बढ़ाने का अवसर उपलब्ध हो गया।

दीवानी के प्रबन्ध के साथ–साथ दीवानी न्याय का उत्तरदायित्व भी कम्पनी पर आ गया था द्वैध शासन के कारण पुरानी न्याय प्रणाली पूरी तरह समाप्त हो चुकी थी। कम्पनी के कर्मचारियों ने सामान्य नागरिकों तथा शिल्पियों पर शोषण अत्याचार करना आरम्भ कर दिया था। स्वयं संचालक समिति ने 10 अप्रैल, 1771 में अपने कर्मचारियों के इन अत्याचारों को स्वीकार किया था। अतः संचालकों ने बंगाल में न्याय व्यवस्था सुधारने का आदेश दिया।

भारत में कम्पनी के कर्मचारियों का लक्ष्य अधिकाधिक धन कमाकर इंग्लैण्ड लौट जाना होता था। कम्पनी के कर्मचारियों को निजी व्यापार की छूट भी प्राप्त थी और कुछ निश्चित कार्यों पर उन्हें कमीशन भी दिया जाता था। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों को भेंट व उपहार भी मिलते रहते थे। इस प्रकार एक और तो कम्पनी को दीवानी का उचित प्रबन्ध करना था, तो दूसरी और अपने कर्मचारियों के निजी व्यापार एवं घूसखोरी पर प्रतिबन्ध लगाना था। अतः वारेन हेस्टिंग्ज के प्रशासनिक परिवर्तनों का उद्देश्य कम्पनी को इन कार्यों के योग्य बनाना था।

2.2 हेस्टिंग्ज के सुधार :

हेस्टिंग्ज के सुधारों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। अर्थात् शासन–सम्बन्धी, अर्थ–सम्बन्धी, न्याय–सम्बन्धी तथा व्यापार सम्बन्धी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.2.1 शासन सम्बन्धी :

हेस्टिंग्ज ने बंगाल के दोहरे प्रबन्ध को हटा दिया और बंगाल का सारा शासन कम्पनी के हाथ में कर दिया। बंगाल के नवाब से शासन का सारा काम छीन लिया गया और उसे कम्पनी का केवल पेन्शन भोक्ता बना दिया गया। बंगाल तथा बिहार के नवाबों से दीवानी सम्बन्धी कार्य भी छीन लिये गये। फलतः बंगाल का नायब रजा खां तथा बिहार के नायब राजा सिताब राय को अपदस्थ कर दिया गया और उन्हें कलकत्ता बुला कर उन पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाकर उन पर मुकदमा चलाया गया परन्तु अन्त में वे छोड़ दिये गये। भारतीय कलेक्टरों को हटा कर वारेन हेस्टिंग्ज ने लगान वसूल करने के लिए अंग्रेज कलेक्टरों को नियुक्त किया।

शासन को सुव्यवस्थित करने के बाद हेस्टिंग्ज ने चोरी तथा डकैती को बन्द करवा कर पूर्णरूप से शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसने चोरों तथा डाकुओं को बड़े कठोर दण्ड दिलवाये जिससे वे अत्यन्त भयभीत हो गये। उसने प्रत्येक जिले में एक फौजदार नियुक्त किया और उसे आदेश दिया कि वह जमींदारों तथा लगान के अफसरों की सहायता से अपने जिले में शांति तथा सुव्यवस्था स्थापित रखे।

2.2.2. न्याय सम्बन्धी :

शान्ति तथा सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए न्याय की भी समुचित व्यवस्था करना नितान्त आवश्यक था। अतएव न्याय–सम्बन्धी सुधारों की ओर भी हेस्टिंग्ज का ध्यान आकृष्ट हुआ। हेस्टिंग्ज ने न्याय की दृष्टि से प्रत्येक जिले को एक संवर्ग मान लिया। उसने प्रत्येक जिले में एक दीवानी की और एक फौजदारी की अदालत स्थापित की। दीवानी की अदालत कलेक्टर के अधीन थी और वही सब झगड़ों को न्याय करता था। फौजदारी की अदालतों में काजी अथवा मुफ्ती कानूनों की व्याख्या कर अपराधियों को दंड दिया करता था।

कलकत्ते में दो अपील की अदालतों की भी स्थापना की गई। इनमें से एक दीवानी की और दूसरी फौजदारी की अदालत का नाम 'सदर निजामत अदालत' रखा गया। इन अदालतों में जिले की दीवानी तथा फौजदारी की अदलतों के मुकदमों के फैसलों के विरूद्ध अपीलें आती थी। सदर दीवानी अदालत में गवर्नर तथा कौसिल के दो सबसे पुराने सदस्य न्यायाधीश का आसन ग्रहण करते थे। सदर निजामत अदालत में 'दरोगा' न्यायाधीश का आसन ग्रहण करता था, जिसकी नियुक्ति गवर्नर स्वयं करता था। न्यायाधीशों को परामर्श देने के लिए हिन्दू तथा मुसलमान नैयायिक हुआ करते थे न्यायाधीशों का पथ–प्रदर्शन करने के लिए हिन्दू तथा मुस्लिम कानून के संकलित करने का प्रयत्न किया गया।

2.2.3. अर्थ सम्बन्धी :

कम्पनी का खजाना खाली हो गया, अतएव उसे पूरा करने के लिए हेस्टिंग्ज ने बहुत उपाय किये। उसने बंगाल के नवाब की पेन्शन को 32 लाख से घटा कर 16 लाख कर दिया। शाह आलम को 25 लाख वार्षिक पेन्शन दी जाती थी उसे बन्द कर दिया गया क्योंकि वह मराठों से जा मिला था। कड़ा तथा इलाहाबाद के जिले शाह आलम से छीन लिये गये और उन्हें अवध के नवाब के हाथ पचास लाख रूपये में बेच दिया गया। इस प्रकार हेस्टिंग्ज ने रूपये की काफी बच कर ली।

हेस्टिंग्ज ने लगान–सम्बन्धी भी अनेक सुधार किये। भूमि की लगान का पंच–साला प्रबन्ध किया। पांच वर्ष के लिए लगान वसूल करने का ठेका उन लोगों को दे दिया जाता था जो कम्पनी को अधिक से अधिक लगान देने के लिए तैयार हो जाते थे। यह व्यवस्था बड़ी ही दोष–पूर्ण थी। ठेकेदार जितना चाहे थे उतना प्रजा से वसूल करते थे जिससे प्रजा का कष्ट बढ़ गया। बहुत से ठेकेदार लगान लेकर भाग जाते थे, जिससे कम्पनी की आय में कमी हो जाती थी। प्रत्येक जिले में एक अंग्रेज कलेक्टर नियुक्त किया गया जिसे माल विभाग का शासन सौप दिया गया उसकी सहायता के लिए भारतीय दीवान भी रखा गया।

2.2.4. व्यापार सम्बन्धी :

हेस्टिंग्ज की दृष्टि व्यापार–सम्बन्धी दोषों पर भी पड़ी और उन्हें दूर करने का उसने प्रयत्न किया। उसने 'दस्तक' की प्रथा को समाप्त कर दिया और व्यापार का मार्ग सर्व–साधारण के लिए खोल दिया। नमक पान तथा तम्बाकू को छोड़कर शेष सभी वस्तुओं पर ढाई प्रतिशत चुंगी निश्चित की गई जो भारतीय तथा यूरोपीय सभी व्यापारियों को समान रूप से देनी पड़ती

Jan Vishwa Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

थी। नमक तथा अफीम व्यापार भी पूर्ण–रूप से सरकारी नियंत्रण स्थापित कर दिया गया। बहुत से कड़े करों को हटा दिया गया और बहुत सी चुंगी को कम कर दिया गया। व्यापारियों की सुविधा के लिए कलकते में एक बैक की स्थापना की गयी। कलकते में एक सरकारी टकसाल का भी प्रबन्ध किया गया जिसमें एक निश्चित आका तथा तथा मूल्य की मुद्रा ढाली जाने लगी। इन सब सुधारों से व्यापार में बड़ी उन्नति हो गई और कम्पनी की आय में भी वृद्धि हो गई।

2.3 रेग्यूलेटिंग ऐक्ट :

ईस्ट इण्डिया कम्पनी स्वतन्त्र व्यापारियों की एक संस्था थी। इंग्लैण्ड के सम्राट से चार्टर या आज्ञा–पत्र प्राप्त कर यह भारत में व्यापार करती थी। एक स्वतन्त्र संस्था होने के कारण ब्रिटिश सरकार या पार्लियामेण्ट उसके कार्यों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती थी। परन्तु अब कम्पनी की स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया था और उसके कार्यों में हस्तक्षेप करना अनिवार्य हो गया। जब तक कम्पनी कोरी व्यापारिक संस्था थी और उसे केवल समुद्र–तट पर स्थित व्यापारिक कोटियों को प्रबन्ध करना पड़ता था तब तक चाटर द्वारा दिये गये अधिकारों से काम चल जाता था, परन्तु अब कम्पनी के अधिकार में भारत का एक बहुत बड़ा भू–भाग आ गया था और वह एक राजनीतिक संस्था बन गई थी। अब वह भारतीय नरेशों के नाम में स्वयं शासन करने लगी थी। अतएव अब उसके कार्यों पर ब्रिटिश सरकार तथा पार्लियामेण्ट का नियंत्रण स्थापित करना अनिवार्य समझा गया।

कम्पनी को इंग्लैण्ड के सम्राट् ने केवल व्यापार करने का अधिकार दिया था, साम्राज्य स्थापित करने का नहीं। परन्तु कम्पनी ने यहां पर अपना साम्राज्य स्थापित करना आरम्भ कर दिया था। अतएव यदि इंग्लैण्ड का सम्राट चाहता तो कम्पनी के इन सब राजनीतिक अधिकारों को छीन लेता और सीधा अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेता। परन्तु ऐसा करने से एक बहुत बड़ी कठिनाई पड़ती थी। वह यह थी कि अब भी जिस प्रदेश पर कम्पनी शासन करती थी उस पर दिल्ली के बादशाह की नाम–मात्र की सत्ता स्थापित थी और कम्पनी केवल उसके दीवान के रूप में शासन करती थी। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सम्राट इस शान को अपने हाथ में नहीं ले सकता था।

कम्पनी की गतिविधि को देखकर इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों का चुपचाप बैठे रहना संभव न रह गया। भारत से जो लोग अपार संपत्ति लेकर गये थे, उनसे भी ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अत्यधिक प्रभावित हुए और उन लोगों ने कम्पनी के कार्यों में हस्तक्षेप करने का निश्चय कर लिया।

जब क्लाइव भारत से इंग्लैण्ड वापस गया तब उसके ऊपर भ्रष्टाचार के विभिन्न प्रकार के आरोप लगाये गये। यद्यपि क्लाइव को किसी प्रकार दण्ड नहीं दिया गया क्योंकि जो भ्रष्टाचार उसने किये थे वे सब उसने देश के हित में किये थे परन्तु इससे इंग्लैण्ड के लोगों को यह विदित हो गया कि कम्पनी का शासन कितना खराब है और उसमें भ्रष्टाचार का कितना बड़ा प्रकोप है। अतएव इन भ्रष्टाचारों को दूर करने के लिए कम्पनी के कार्यों में हस्तक्षेप नितान्त आवश्यक समझा गया।

दक्षिण भारत तथा बंगाल में किये गये युद्धों तथा बंगाल के दोहरे प्रबन्ध के दुष्परिणामों के कारण कम्पनी को बहुत बड़ी आर्थिक क्षति उठानी पड़ी थी, अतएव कम्पनी की आर्थिक दशा बड़ी शोचनीय हो गई थी और उसे धन की बहुत बड़ी आवश्यकता थी। अतएव उसने ब्रिटिश सरकार से ऋण देने के लिए याचना की। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार को कम्पनी के कार्यों की जांच करने के लिए कई समितियां बना दी। इन समितियों की रिपोर्ट से यह पता लग गया कि कम्पनी के कार्यों में कितनी गड़बड़ी है और उनमें हस्तक्षेप करना अनिवार्य है। फलतः 1773 ई. में लार्ड नार्थ ने पार्लियामेण्ट में एक विधेयक उपस्थित किया जिसे पार्लियामेण्ट ने पास कर दिया। यही विधेयक रेग्यूलेटिग ऐक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। रेग्यूलेट का अर्थ होता है व्यवस्था करना और ऐक्ट का अर्थ होता है नियम। चूंकि इस विधान या नियम द्वारा कम्पनी के कार्यों को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया गया था। अतएव इसका नाम रेग्लूटिंग ऐक्ट रक्खा गया। इस ऐक्ट द्वारा निम्नलिखित व्यवस्था की गई।

2.3.1 रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की धाराएं :

इस विधान द्वारा कम्पनी के संगठन तथा उसकी कार्य विधि दोनों ही में परिवर्तन किया गया। अभी तक कम्पनी के उन सभी हिस्सेदारों को कम्पनी के संचालकों अर्थात् डाइरेक्टरों को चुनने का अधिकार दिया जिनका कम से कम 500 पौड का साझा था परन्तु अब केवल उन्हीं लोगों को डाइरेक्टरों के चुनने का अधिकार रह गया जिनका एक हजार पौड का साझा था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस विधान द्वारा कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के भी संगठन में बहुत बड़ा परिवर्तन किया गया। अभी तक इसके सदस्यों का चुनाव प्रति वर्ष हुआ करता था परन्तु अब यह चार वर्ष के लिए चुने जाने लगे। इनमें से एक–चौथाई सदस्य प्रति वर्ष अलग हो जाते थे और इतने ही नये सदस्यों के चुनने की व्यवस्स्था की गई। डाइरेक्टरों की संख्यां 24 निर्धारित की गई।

इसी विधान द्वारा कम्पनी के डाइरेक्टरों को एक आदेश दिया गया कि वे प्रति वर्ष भारतीय राजस्व सम्बन्धी सभी पत्र–व्यवहार इंग्लैण्ड की सरकार से राजस्व विभाग के सामने उपस्थित करें और सैनिक तथा शासन–सम्बन्धी विषयों की सूचना वे एक सरकारी मंत्री को दिया करें इस प्रकार इंग्लैण्ड की सरकार का कम्पनी के अर्थ, सेना तथा शासन सम्बन्धी सभी कार्यों पर नियन्त्रण स्थापित हो गया।

इस ऐक्ट द्वारा कम्पनी की भारतीय शासन–व्यवस्था में बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया गया। भारतीय कार्य कारिणी का जन्म यहीं से होता है। अब बंगाल के शासन के लिए एक गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया और उसकी सहायता के लिए चार सदस्यों की एक कौसिल बना दी गई। इसका कार्य काल पांच वर्ष रक्खा गया। गवर्नर जनरल को अपनी कौसिल बना दी गई। इसका कार्य–काल पांच वर्ष रक्खा गया। गवर्नर जनरल को अपनी कौसिल के निर्णय को रद्द करने का अधिकार न था, वरन् सभी कार्यों को बहुमत के निर्णय से करने की व्यवस्था की गई। बराबर मत होने पर गवर्नर जनरल को अपना निर्णयात्मक वोट देने का अधिकार था।

इस विधान द्वारा यह निश्चित किया गया कि मद्रास तथा बम्बई की सरकारें बिना गवर्नर जनरल तथा उसकी कौसिल की स्वीकृति के किसी के साथ युद्ध या सन्धि नहीं कर सकती थी परन्तु आकस्मिक स्थिति उत्पन्न हो जाने पर अथवा सीधे संचालकों से आज्ञा प्राप्त कर लेने पर वे बिना गवर्नर जनरल तथा उसकी कौसिल की स्वीकृति के भी कार्य कर सकती थी।

इस ऐक्ट द्वारा कलकत्ता में सुप्रीम कोर्ट अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय को स्थापित करने की व्यवस्था की गई। इसमें एक प्रधान न्यायाधीश तथा तीन सहायक न्यायाधीशों के नियुक्त करने का निश्चय किया गया परन्तु अभाग्यवश इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का निश्चय नहीं किया गया।

इस विधान द्वारा गवर्नर जनरल तथा उसकी कौसिल को ब्रिटिश भारत के लिए कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया, परन्तु इन्हें कार्यान्वित करने के पूर्व इंग्लैण्ड की सरकार की स्वीकृति प्राप्त कर लेना तथा कलकत्ते के सुप्रीम कोर्ट में उनका रजिस्ट्री करा लेना अनिवार्य था।

इस विधान की एक बहुत बड़ी विशेषता यह थी कि विधान द्वारा ही गवर्नर जनरल तथा उसकी कौसिल के सदस्यों का नाम निश्चित कर दिया गया था। विधान द्वारा वारेन हेस्टिंग्ज गवर्नर जनरल और रिचर्ड बारवेल, जनरल क्लैवरिंग, कर्नल मौनसन तथा फिलिप फ्रंसीसी उसकी कौसिल के सदस्य नियुक्त कर दिये गये। इनमें से वारेन हेस्टिंग्ज तथा बारवेल कम्पनी के नौकर तथा कलकत्ता कौसिल के सदस्य थे। शेष तीन व्यक्ति सीधे इंग्लैण्ड से आये थे।

इस ऐक्ट द्वारा कम्पनी के उच्च पदाधिकारियों को ऊँचा वेतन देने की व्यवस्था की गई और उपहार, भेंट आदि लेने तथा व्यक्तिगत व्यापार करने का निषेध कर दिया गया।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट का भारत के वैधानिक विकास में बहुत बड़ा महत्त्व है। केन्द्रीय कार्यकारिणी का शिलान्यास इसी विधान द्वारा किया गया था जिसका ब्रिटिश शासन–काल में उत्तरोत्तर विकास होता गया और अन्त में देश के स्वतन्त्र हो जाने पर इसी नेमंत्री परिषद् का स्वरूप धारण कर लिया। प्रो. डेविस ने इस विधान को बड़ा ही महत्वपूर्ण बतलाया है और कहा है कि इसका हेस्टिंग्ज के जीवन तथा शासन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा।

2.3.2 रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष :

बर्क महोदय ने इस विधान की आलोचना करते हुए इसे "राष्ट्रीय अधिकार में, राष्ट्रीय विश्वास तथा स्वाभाविक न्याय में हस्तक्षेप करना बतलाया है। यद्यपि रेग्यूलेटिंग ऐक्ट कम्पनी के शासन को सुव्यवस्थित करने के लिए बनया गया था परन्तु इसमें अनेक ऐसे दोष विद्यमान थे जिससे कम्पनी का शासन सुचारू रीति से संचालित न हो सका और इसके दोषों के दूर करने की आवश्यकता को अनुभव किया जाने लगा।

इस विधान का पहला दोष वह था कि कम्पनी के एक हजार पौड से कम के हिस्सेदारों को मताधिकार से वंचित कर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दिया गया। यह न्याय–संगत न था। इस विधान का दूसरा बहुत बड़ा दोष यह था कि गवर्नर जनरल को अपनी कौसिल के निर्णय को रद्द करने का अधिकार न था, वरन् वह उसके बहुतमत के निर्णय को स्वीकार करने के लिए विवश था। चूंकि केवल एक ही सदस्य हेस्टिंग्स के पक्ष में था और शेष तीन सदैव उसका विरोध किया करते थे, अतएव हेस्टिंग्स को अपनी नीति को कार्यान्वित करने में बड़ी कठिनाई पड़ने लगी। इस विधान का तीसरा दोष यह था कि मद्रास तथा बम्बई की सरकारों पर गवर्नर जनरल तथा उसकी कौसिल का पूरा नियन्त्रण स्थापित नहीं किया गया था। केवल युद्ध तथा सन्धि के मामले में ये हस्तक्षेप कर सकते थे। वह भी सदैव नहीं। ऐसी स्थिति में मद्रास तथा बम्बई की सरकारें प्रायः स्वतन्त्रता पूर्वक ही कार्य करती थी। इस विधान का चौथा दोष यह था कि सुप्रीम कोर्ट का अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किया गया था, अतएव सुप्रीम कोर्ट और गवर्नर जनरल तथा उसकी कौसिल में अधिकार क्षेत्र के लिए प्रायः झगड़ा हो जाया करता था। शासन को सुचारू रीति से चलाने के लिए इन सब दोषो को दूर करना आवश्यक था।

2.3.3 दोषों का निवारण :

1776 ई. में कौसिल के एक सदस्य अर्थात् मौनसन की मृत्यु हो गई। इससे अब कौसिल में केवल तीन सदस्य रह गये। इनमें से एक सदस्य सदैव हेस्टिंग्ज के पक्ष में रहता था। अतएव अब वह अपने निर्णयात्मक वोट का प्रयोग कर अपने पक्ष में निर्णय करा सकता था।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अधिकांश दोषों को पिट्स इण्डिया ऐक्ट द्वारा दूर किया गया जो 1784 ई. में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा पास किया गया। इस ऐक्ट द्वारा गवर्नर जनरल की कौसिल के सदस्यों की संख्या चार से घटा कर तीन कर दी गई। इससे अब गवर्नर जनरल केवल एक ही सदस्य को अपने पक्ष में मिला कर कौसिल के निर्णय को रद्द कर सकता था अथवा अपने पक्ष में करा सकता था। इस ऐक्ट द्वारा यह निश्चय किया गया कि युद्ध राजस्व तथा कूटनीति सम्बन्धी सभी विषयों में मद्रास तथा बम्बई की सरकारें निश्चित रूप से गवर्नर जनरल तथा उसकी कौसिल के अधीन कर दी गई।

1786 ई. के सुधार ऐक्ट द्वारा यह निश्चित किया गया कि गवर्नर जनरल अपने कार्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर अपनी कौसिल के निर्णय को रद्द कर सकता था।

1781 ई. के ''घोषणा–एक्ट' द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के बहुत से दोषों को दूर कर दिया गया। इस ऐक्ट द्वारा सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार निश्चित कर दिया गया। इससे सर्वोच्च न्यायालय तथा गवर्नर जनरल की कौसिल में अधिकार क्षेत्र के लिए जो झगड़े उठ खड़े होते थे उन्हें समाप्त कर दिया गया। इसी वर्ष एक सुधार ऐक्ट द्वारा यह निश्चय किया गया कि बिना सर्वोच्च न्यायालय को सूचित किये और बिना उसकी स्वीकृति प्राप्त किये गवर्नर जनरल को कौसिल को प्रान्तीय न्यायालयों के लिए कानून बनाने का अधिकार होगा। इस प्रकार रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अधिकांश दोषों को दूर कर दिया गया।

2.4 हैस्टिंग्ज तथा उसकी कौसिल :

1774 ई. में कौसिल के तीन सदस्य जो इंग्लैण्ड से चले थे कलकते में आ गये। इन लोगों ने प्रारम्भ से ही हेस्टिंग्ज का हर एक बात में विरोध करना आरम्भ कर दिया। इस विरोध के दो प्रधान कारण बतलाये जाते है। पहला तो यह हक ये लोग स्वयं गवर्नर–जनरल के पद को प्राप्त करना चाहते थे और दूसरा यह कि हेस्टिंग्ज ने इनके बयान पर इनका समुचित 'सम्मान न किया। वे हिन्दुस्तान आने पर 21 बन्दूकों की सलामी चाहते थे जो गवर्नर–जनरल को मिलती थी परन्तु हेस्टिंग्ज ने उन्हें केवल 1 बन्दूकों की सलामी दिलवाई थी। इनके अतिरिक्त हेस्टिंग्ज उनसे अपने निवास–स्थान पर मिला। इससे वे और अधिक चिढ़ गये और प्रत्येक बात में उसका विरोध करने के लिए दृढ़–संकल्प हो गये। दो वर्षों तक हेस्टिंग्ज का उसकी कौसिल के विरोधी सदस्यों के साथ भीषण संघर्ष चलता रहा और वे उसके प्रत्येक कार्य का विरोध और उसकी नीति को अपने बहुमत से ध्वस्त करते रहे। सौभाग्य से 1776 ई. में मौनसन की मृत्यु हो गई और अपने निर्णयात्मक वोट से कौसिल में हेस्टिंग्ज का बहुमत हो गया। 1777 ई. में क्लैवरिंग की भी पेचिश से मृत्यु को गई। हेस्टिंग्ज के विरोधियों में अब केवल फ्रांसिसि ही बच रहा था। 1780 ई. में हेस्टिंग्ज का फ्रांसिस के साथ द्वन्द्व–युद्ध हुआ जिसमें फ्रांसिस घायल हो गया। अपनी इस पराजय से यह इतना लज्जित हुआ कि अच्छा होते ही वह इंग्लैण्ड चला गया। इस प्रकार हेस्टिंग्ज को अपने सभी विरोधियों से मुक्ति मिल गई। उनके स्थान पर जो नये सदस्य आये उनके साथ हेस्टिंग्ज ने अच्छा सम्बन्ध बना लिया जिससे सब काम सुचारू रीति से होने लगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.5 कड़ा एवं इलाहाबाद का पुनर्विक्रय :

माधवराव के नेतृत्व में 1769 ई. में मराठे पुनः प्रभावी हो गये थे और महादजी सिंधिया ने 1771 में दिल्ली पर अधिकार कर मुगल बादशाह शाह अलाम को दिल्ली में बैठा दिया था। कड़ा एवं इलाहाबाद के जिले बादशाह ने दबाव में मराठों को सौप दिये। ये जिले युद्ध की क्षति के रूप में अवध से लेकर क्लाइव ने बादशाह को प्रदान किये थे एवं बादशाह ने 26 लाख वार्षिक पेंशन के बदले इनका प्रशासन कम्पनी को सौप दिया था। कम्पनी अनेक युद्धों मे व्यस्त रहने के कारण बादशाह को वार्षिक पेंशन का भुगतान नहीं कर पाई थी।, यह प्रचारित किया गया। पी.ई. राबर्ट्स लिखता है – 'इन जिलों मे मराठों के प्रवेश का तात्पर्य अंग्रेजों के लिए शत्रु के समक्ष आत्म–समर्पण के समान था, अतः 1773 में रूहेला युद्ध के पूर्व की गई सन्धि द्वारा कड़ा एवं इलाहाबाद के जिले (जिन्हें शाह आल म ने मराठों को दे दिया था) पुनः अवध के नवाब को 50 लाख रूपये में बेच दिये।

2.6 रूहेला युद्ध :

रूहेलखण्ड के शासक हाफिज रहमत खां ने मराठों के आक्रमण के भय से 1761 के युद्ध में अहमदशाह अब्दाली का सहयोग किया था। अब्दाली के लौट जाने के बाद मराठे पुनः शक्तिशाली हो गये। रूहेला शासक ने मराठों के आक्रमण के भय से 17 जून, 1772 सर राबर्ट बारकर की उपस्थिति में अवध के साथ सन्धि की जिसके द्वारा अवध के नवाब एवं अंग्रेज कम्पनी ने रूहेलों को उनकी रक्षा में सहयोग करने का वचन दिया और इसके बदले 40 लाख रूपये अवध के नवाब को दिये जाने थे। अगले वर्ष मराठों ने रूहेलखण्ड पर आक्रमण का विचार किया, किन्तु आंग्ल अवध संयुक्त सेना से मराठों से युद्ध करना उचित नहीं समझा। पेशवा माधवराव की मृत्यु से पूणे में अव्यवस्था फैल गई थी और मराठे पुनः युद्ध के बारे में नहीं सोच पाये। अवध के नवाब ने रूपयों की मांग की। बिना युद्ध के हाफिज रहमत खां ने 40 लाख के भुगतान से साफ इन्कार किया। अन्त में, अवध केनवाब ने कम्पनी के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि उसे रूहेलखण्ड जीतने के लिए फौजी सहायता प्राप्त होती है, तो कम्पनी को 40 लाख रूपये अदा कर सकता है।

मराठा एवं अंग्रेजों के मध्य अवध के महत्त्व की चर्चा करते हुए मोरलैण्ड लिखता है कि, ''वारेन हेस्टिंग्ज इससे भली–भांति परिचित था और रूहेलखण्ड के अवध में विलय से काफी धन मिलने की आशा थी।' वारेन हेस्टिंग्ज ने बनारस जाकर नवाब से सितम्बर, 1773 में सन्धि की। सन्धि द्वारा कड़ा एवं इलाहाबाद अवध के नवाब को लौटा दिये। बदले में नवाब ने 50 लाख रूपये का भुगतान किया और 2.50 लाख रूपये प्रतिमाह के भुगतान पर फौजें मुहैया करवाई गई। अप्रैल, 1774 में रूहेलखण्ड मीरनपुर कटरा के युद्ध में जीत लिया गया। उनका नेता हाफिज खां मारा गया तथा 2000 फौज के लोग मारे गये 20,000 लोग प्रदेश छोड़कर भाग छूटे। प्रदेश का अवध में विलय हो गया। सर जान स्ट्रेची ने जिक्र किया है कि, ''इस युद्ध से कम्पनी को भारी आर्थिक लाभ हुआ। अवध की सन्धि को हेस्टिंग्ज की विदेश नीति का आधार–स्तम्भ कहा जा सकता है।''

दूसरी और बर्क, मेाले एवं मिल जैसे कई लेखकों ने वारेन हेस्टिंग्ज के इस कृत्य की निंदा की है। उस पर चलाये गये अभियोग का भी यह एक कारण रहा है। वस्तुतः रूहेलों का कम्पनी से काई विरोध नहीं था और उन पर युद्ध थोपना नैतिक रूप से अनुचित था। उसके आलोचकों का दूसरा तर्क यह है कि संचालकों की हिदायत के विरूद्ध उसने निर्णय किया था। यह भी कहा गया कि अंग्रेजों के लिए शस्त्रास्त्र किराए पर देना सर्वथा असंगत हस्तक्षेप का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस तरह कोई भी व्यक्ति धन देकर अंग्रेज फौजों का अनुचित कार्य के लिए उपयोग कर सकता था।

ताराचंद ने उल्लेख किया है – ''बर्क ने इन सौदों को 'हृदय विदारक, भयंकर तथा घोर विश्वासघातपूर्ण' कह कर इनकी निंदा की। गवर्नर जनरल और उसके पक्ष पोषकों ने मूल प्रयोजन सिद्धि का वही पुराना सिद्धान्त इसका कारण ठहराया।''

प्रत्युत्तर में वारेन हेस्टिंग्ज एवं उसके समर्थकों ने कहा कि उसे कम्पनी के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी और धन की प्राप्ति उसे अवध के नवाब से ही हो सकती थी। सरजान स्ट्रेची ने लिखा है, ''क्या अंग्रेज गवर्नर का ऐसे एक क्रूर से युद्ध करना उचित नहीं है। जिसने स्वयं कुछ ही समय पहले दूसरी जाति और धर्म की विदेशी जनता पर अपना अधिकार थोप दिया हो, जबकि वह देश अंग्रेजी प्रदेशों पर आक्रमण का मार्ग खोलता हो।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.7 नन्दकुमार को फाँसी :

सिराजुद्दौला के समय नन्दकुमार हुगलजी का फौजदार था। गवर्नर जनरल की कौसिल के सदस्य फ्रांसिस के उकसाये जाने पर उसने सप्रमाण यह आरोप लगाया कि मीरजाफर की विधवा मुन्नी बेगम से अल्पवयस्क नवाब की संरक्षिका बनाये जाने के लिए वारेन हेस्टिंग्ज ने साढ़े तीन लाख रूपये की रिश्वत प्राप्त की। नन्दकुमार ने कौसिल के समक्ष इस आरोप को दोहराया। कौसिल के सदस्य फ्रांसिस, मौनसन तथा क्लेवरि ने इसे अनियमितता मानते हुए वारेन हेस्टिंग्ज को उक्त राशि जमा करवाने की सलाह दी। अन्त में मामला हाउस ऑफ कामन्स में उठा। विवरण मिला है कि हेस्टिंग्ज ने स्वीकार किया कि वह पूर्व निर्धारिति घातक विवाद में उलझ गया था।'

हेस्टिंग्ज बदले की भावना को छिपा नहीं पाया। नन्दकुमार के विरूद्ध दो वर्ष पूर्व एक मुकदमा चला था उसे पुनः प्रारम्भ कर दिया गया। नन्दकुमार के विरूद्ध गवर्नर जनरल के खिलाफ कुछ व्यक्तियों के साथ मिलकर षडयंत्र रचने तथा कलकत्ते के व्यापारी के साथ मिलकर नकली हस्ताक्षर बनाकर पचास हजार रूपये की जालासाजी करने के दो आरोप थे। उच्चतम न्यायालय ने मात्र पन्द्रह दिनों मे उसे दोषी करार देकर फांसी की सजा सुना दी और 5 अगस्त, 1775 को उसे फांसी दे दी गई। उल्लेखनीय है कि गवर्नर जनरल के विरूद्ध षडयंत्र में उसे मुक्त कर दिया गया एवं जालसाजी में फांसी की सजा वारेन हेस्टिंग्ज की पूर्व निर्धारित योजना का हिस्सा थी। जालसाजी का मुकदमा नन्दकमार द्वारा लगाये गये आरोपों के तुरन्त बाद में लाया गया जो इस तथ्य को इंगित करता है कि वारेन हेस्टिंग्ज घोर बदले की भावना से ग्रस्त था। उल्लेखनीय है कि सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश एलिजाह इम्पे एवं वारेन हेस्टिंग्ज सहपाठी थे, निर्णय में पक्षपात स्पष्ट झलकता है। यह भी स्पष्ट है कि जालसाजी ऐसा अपराध नहीं जिसके लिए भारतीय परम्परा में फांसी दी जाती हो। ब्रिटेन के कानून के प्रावधान का आश्रय लिये जाने का प्रश्न है तो वह इसी समय अमल में क्यों लाया गया। पी.ई. राबर्ट्स ने जिक्र किया है कि 'नन्दकुमार ने गवर्नर जनरल पर अभियोग लगाने का साहस करके मृत्यु शल्क चुकाया था। यह कहा गया है कि मुकदमें की आवश्यक सुनवाई पूर्ण होने से पूर्व ही नन्दकुमार को फंसा कर मृत्यु के मुख में धकेला गया। जहां तक वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा रिश्वत लिये जाने का प्रश्न है। कौसिल में मामला उठाये जाने पर, उठकर चले जाना तथा आरोप का खण्डन न करना स्पष्ट सन्देह का द्योतक है। मुन्नी बेगम ने कलकत्ते में स्वीकार किया था कि उसने हेस्टिंग्ज को 150 लाख की रिश्वत दी थी।

एडमंड बर्कने हेस्टिंग्ज की आलोचना में कहा था 'नन्दकुमार को प्राणदण्ड उस पर बनाये गये अपराध के कारण दिया गया। जैमस मिल ने भी लिखा था, 'वारने हेस्टिंग्ज के शासन की किसी भी कार्यवाही से उसके चरित्र पर इतना धब्बा नहीं लगता जितना इस मुकदमें से। हेनरी बेवरित के अनुसार यह ''न्यायिक हत्या' थी।

2.8 चेतसिंह के प्रति दुर्व्यवहार :

अवध के नवाब के आश्रित बलवन्त सिंह ने 1775 की एक सन्धि द्वारा बनारस के शासक ने अंग्रेजो की अधीनता स्वीकार की और 22.5 लाख रूपये वार्षिक कर अदा करना शुरू किया। बलवन्त सिंह के स्थान पर उसक लड़का चेतसिंह राजा बना और 1778 में वारेन हेस्टिंग्ज ने उसे 5 लाख अतिरिक्त प्रदान करने को कहा, जिसका कारण दक्षिण में मराठा मैसूर संघर्ष तथा अंग्रेज–फ्रांसिसी युद्ध बताया गया। अगले वर्ष वैसा ही मांग की गई जिसे जैसे–तैसे पूरा किया गया। 1780 में राजा को 2 हजार घुड़सवार उपलब्ध करवाये जाने के निर्देश मिले, चेतसिंह ने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए एक सहस्त्र घोड़े देने की सहमति व्यक्त की। इस मांग की पृष्ठभूमि यह बताई गई कि 1780 में सर आयरकूट को दक्षिण मे हैदरअली के विरूद्ध घुड़सवारों की आवश्यकता थी। राजा 500 घुड़सवार तथा 500 पैदल जुटा पाया और इस आशय की सूचना वारेन हेस्टिंग्ज को भेजी गई। राजा निश्चित राशि भी उपलब्ध नही करवा पाया। डॉडवेल जानकारी देता है कि राजा के पत्र पर टिप्पणी करते हुए वारेन हेस्टिंग्ज ने कहा, 'उसने स्पष्ट आदेश पाये थे, उन्हें दोहराया गया था। उसे बहानेबाजी भरे पत्र भेजकर मेरा समय नष्ट करने के बजाए उन आदेशो का पालन करना चाहिए था।' उसने चेतसिंह पर 50 लाख का जुर्माना करने का निश्चय किया। चेतसिंह ने वारेन हेस्टिंग्ज के सम्मुख बक्सर में समर्पण कर दिया लेकिन हेस्टिंग्ज ने उसे गिरफ्तार किये जाने के आदेश दिये। राजा के सैनिको ने हेस्टिंग्ज के इस आदेश के विरोध में बगावत कर दी और कुछ अंग्रेज सैनिक मार डाले। वारेन हेस्टिंग्ज को आत्मरक्षा के लिए चुनार के दुर्ग में शरण लेनी पड़ी। बाद में अंग्रेज सेना ने राजा की सेना को हराया। चेतसिंह ने इस मामले में अपने को निर्देश बताया। राजा की बात नही सुनी गई और उसे ग्वालियर मे शरण लेनी पड़ी। चेतसिंह के भतीजे को 40 लाख वार्षिक करे भुगतान की शर्त पर राजा बनाया गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने हेस्टिंग्ज के इस निन्दनीय एवं अमानवीय कृत्य को ठीक बताने की कोशिश की थी, जो उनकी एक तरफा विचारधारा को इंगित करता है। प्रसिद्ध लेखक ए.एम. डेविस ने इस कर्यवाही को 'अत्यधिक मूर्खता पूर्ण' कृत्य की संज्ञा दी है। डॉडवेल से जानकारी मिलती है कि हेस्टिंग्ज ने चेतसिंह से इतना धन हड़प लिया था कि 22 लाख की जमींदारी खोकर 40 लाख की जमींदार प्राप्त करने की बात आत्मतुष्टि से अधिक कुछ नहीं थी, क्योंकि बनारस के शोषण से किसान प्रदेश छोड़कर अन्यत्र जा बसे थें बनारस की आबादी 5 लाख से घटकर 2 लाख रह गई थी और एक–तिहाही भूमि पर किसानों ने कृषि करना छोड़ दिया था।

पाश्चात्य विद्वानों ने एक तर्क यह प्रस्तुत किया है कि चेतसिंह राजा न होकर एक जागीरदार था। यदि यह मान लिया जाये कि वह राजा नहीं जागीरदार था तथापि क्या एक साम्राज्यवादी शक्ति या शासक द्वारा किसी जागीरदार का शोषण एवं अपमानित किया जाना न्यायसंगत था। जुलाई, 1775 की सन्धि में स्पष्ट उल्लेखनीय था उससे कम्पनी साहब बहादुर द्वारा किसी तरह की अथवा किसी भी बहाने पर कोई मांग न की जायेगी और न किसी व्यक्ति को उसके अधिकार में हस्तक्षेप करने दिया जायेगा।' राबर्ट्स ने इसे निन्दनीय एवं तिरस्कार पूर्ण माना है वारेन हेस्टिंग्ज के काल की इन घटनाओं का इतिहास में स्थान इस बात का द्योतक है कि साम्राज्य स्थापना के प्रारम्भिक काल से ही ब्रिटिश शासक किस प्रकार मानमानी करने लगे थे। चेतसिंह पर धौस जमाकर अपनी बात मनवाने की कोशिश को लूट–खसोट के अतिरिक्त किसी तरह से न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता।

2.9 अवध की बेगमों का अपमान :

शुजाउद्दौला की मृत्यु (जनवरी, 1775) के बाद असफुद्दौला को अवध की सत्ता मिली। मरने से पूर्व शुजाद्दौला अपनी मां एवं बेंगम को बड़ी जागीर दे गया था। वारेन हेस्टिंग्ज की नजरें शुजाउद्दौला की मृत्यु के समय से ही बेगमों के खजाने पर लगी हुई थीं। आसफुद्दौला एक अयोग्य शासक था, उसने फैजाबाद की सन्धि द्वारा अंग्रेज सेना के खर्च के लिए अधिक राशि देना स्वीकार किया था लेकिन वह वान्छित राशि का भुगतान नहीं कर पाया और कम्पनी का कर्ज बढ़ता गया। अपव्ययी नवाब ने बकाया राशि की वसूली बेगमों से करने के लिए कहा होगा। अंग्रेज रेजीडेंट के कहने पर बेगमों ने 1775 में ही तीस लाख का भुगतान किया था। अंग्रेज रेजीडेट ने भविष्य में अन्य मांग न रखने की गारन्टी दी। 1781 में पुनः कम्पनी ने बकाया भुगतान के लिए कहा। नवाब ने बेगमों से राशि वसूल करने की अनुमति मांगी। हेस्टिंग्ज ने लखनऊ स्थित रेजीडेंट मिडलटन को कड़ा रूख बनाये रखने के लिए सूचित किया। मिडलटन के निर्देशानुसार कार्य करने में असमर्थता जाहिर की थी अतः उसके स्थान पर ब्रिस्टो को भेजा गया।

दूसरी और बेगमों पर आरोप लगाया गया कि वे चेतसिंह के साथ मिलकर अंग्रेजों के विरूद्ध षडयंत्र कर रही है उच्च न्यायालय के न्यायाधीश इम्पे को लखनऊ भेज गया और उसने अदालत में यह प्रमाणित करने की कोशिश की बेगमें दोषी है बेगम अदालत में नहीं आई और इम्पे ने झूठी गवाहियों से बेगमों को दोषी प्रमाणित किया जबकि बेगमों के चेतसिंह के साथ मिलकर षडयंत्र रचने के कोई प्रमाण अदालत नहीं जुटा पाई।

अंग्रेज फौजों ने फैजाबाद स्थित बेगमों के महल को घेर लिया, उनके अंगरक्षकों एवं नौकरों को कोड़ों से मारा गया, खाना नहीं दिया। बेगमें यह सब सहन नहीं कर पाई और सम्पूर्ण खजाना दिसम्बर, 1782 में अंग्रेजों के हवाले कर दिया। इस लूट में अंग्रेजों को 2 करोड़ रूपये मिले। अल्फ्रेड लायल ने इस सम्बन्ध में जिक्र किया है, ''औरतों एवं नौकरों के अधिकार से अंग्रेजी सेना की देखरेख में शारीरिक यातनायें देकर धन हड़पना एक नीचतापूर्ण कृत्य है।''

2.10 वारेन हेस्टिंग्ज एवं न्यायिक प्रणाली :

सरकार द्वारा जनता को न्याय प्रदान करना उसके अस्तित्व का द्योतक है। अंग्रेजों की न्यायिक व्यवस्था की स्थापना में रूचि का कारण असैनिक न्याय प्रणाली का घनिष्ठ रूप से राजस्व प्रबंध से सम्बद्ध होना था। अंग्रेजों ने दीवानी अधिकार मुगल बादशाह से 1765 में हस्तगत किये थे जिसमें राजस्व एंव न्याय दोनों शामिल थे। क्लाइव ने समस्त दायित्व कम्पनी पर डालना उचित नहीं समझा और प्रशासन की दोहरी व्यवस्था अपनाते हुए राजस्व, सैनिक शक्ति तथा वैदेशिक सम्बन्ध अपने पास रखे तथा न्याय व्यवस्था भारतीयों के जिम्मे छोड़ दी।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

न्याय व्यवस्था की स्थापना का दायित्व स्वीकार न किये जाने का कारण यह था कि ब्रिटिश विधि के अनुसार कोई भी नागरिक अथवा संस्था अपनी स्वतंत्र प्रभुसत्ता स्थापित नहीं कर सकती थी। दूसरे फ्रान्सीसियों एवं पुर्तगालियो में अंग्रेजों के प्रति ईर्ष्या की भावना बढ़ जाती, जो कम्पनी के लिए घातक हो सकती थी। अत: दोहरी शासन व्यवस्था के अन्तर्गत अर्थात 1765 से 1772 के बीच मुगलकानली काजी एवं मुफ्ती द्वारा कानूनों की व्याख्या द्वारा दण्ड दिया करते थे। साथ ही कलकत्ता मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कार्य क्षेत्र में अंग्रेजी विधि प्रणाली द्वारा न्यायिक स्थापित की गई।

वारेन हेस्टिंग्ज (1772–84 ई.) ने क्लाइव द्वारा स्थापित दोहरी व्यवस्था समाप्त की और दीवानी के समस्त दायित्व, अलग–अलग न्यायालयों का प्रबंध एवं फौजदारी (क्रिमनल)कम्पनी द्वारा सम्पादित किये जाने लगे। दीवानी में प्रशासन, राजस्व वसूली एवं न्याय प्रबंध शामिल थे। न्यायिक व्यवस्था की स्थापना हेतु जिले को ईकाई माना गया और दीवानी (सिविल) किया। डेविस को उद्धृत करते हुए डा. एन. बी. परांजपे ने लिखा है – ''तत्कालीन परिस्थितियों मे बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की प्रशासनिक व्यवस्था बिगड़ी हुई थी तथापि विनियमों की न्यायिक योजना ने स्थिति को संभालने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। यद्यपि इस योजना में कुछ दोष रह गये थे, फिर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता कि वारेन हेस्टिंग्ज अपने शासन काल मे प्रजा के शोषण को समाप्त कर उसे निष्पक्ष न्याय दिलाने को इच्छुक था।''

2.10.1 दीवानी व्यवस्था :

पांच सौ रूपये तक के विवादों का प्रत्येक जिले में स्थापित दीवानी अदालतों में निर्णय कलेक्टर करते थे। विशेष रूप से शादी विवाह, उत्तराधिकार, जातिप्रथा, कर्ज, लगान तथा साझेदारी के मामलों का निस्तारण इन न्यायालयों में होता था।

दीवानी अदालत के ऊपर कलकत्ता में सदरदीवानी अदालत स्थापित की गई। इस व्यवस्था के बाद पटना एवं मुर्शिदाबाद की राजस्व कौसिल जो बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के लिए यह सर्वोच्च अदालत थी, जिसमें राज्यपाल तथा उसी परिषद् के दो सदस्य न्यायाधीश का कार्य करते थे। राज्यपाल की अनुपस्थिति में उसकी परिषद् का तीसरा सदस्य न्यायाधीश का कार्य करता थ। कम से कम तीन न्यायाधीशों की उपस्थिति गणपूर्ति के लिए अनिवार्य थी। इस तरह गवर्नर एवं परिषद् के सभी सदस्य इस अदालत के न्यायाधीश के रूप में कार्य करते थे। रेग्युलेटिंग एक्ट, 1773 द्वारा गवर्नर के स्थान पर गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद् के सदस्य इस अदालत के सदस्य के रूप में कार्य करते रहे और यह व्यवस्था 1774 तक प्रभावी रही। बाद में गवर्नर जनरल ने न्यायालय की कार्यवाही में भाग लेना बंद कर दिया।

अक्टूबर 24, 1780 में गवर्नर जनरल एवं उसकी परिषद् द्वारा नियुक्त न्यायाधीश ही इन न्यायालयों में कार्य करने के लिए अधिकृत किये गये और इलिजा इम्पे को इसका न्यायाधीश नियुक्त किया।

2.10.2 फौजदारी व्यवस्था :

चोरी, हत्या, जालसाजी, नाजायज सम्पत्ति हड़पने जैसे फौजदारी मामलों की सुनवाई काजी अथवा मुफ्ती द्वारा की जाती थी। कम्पनी फौजदारी अदालतों के कार्य में हस्तक्षेप को उत्सुक नहीं थी। क्योंकि यह ऐसा क्षेत्र था जहां उत्तरदायित्व अधिक था और आय नहीं थी। यही कारण था कि प्रारम्भ में फौजदारी न्याय व्यवस्था मुहम्मद रजा खां एवं सिताबराय जैसे अधिकारियों के भरोसे छोड़ दी गई। कम्पनी केवल कानून व्यवस्था बनाये रखने तथा अराजकता रोकने की कोशिश में रही।

फौजदारी मामलों में इस्लामी कानून प्रभावी थे और उन्हीं के आधार पर दण्डित किया जाता था। वारने हेस्टिंग्ज ने भी पुन: मुहम्मद रजा खां को नायब नियुक्त किया। उसने गवर्नर जनरल के निर्देश पर फौजदारी अदालतों का गठन किया और कुल मिलकर 23 जिला फौजदारी न्यायालय बनाये गये। जिला स्तर पर न्याय प्रणाली कलेक्टर द्वारा नियन्त्रित थी, किन्तु उसे न्यायालय का सदस्य नहीं माना गया। इस दृष्टि से सबसे ऊपर सदर निजामत अदालत का प्रावधान था जिसमें दरोगा–ए–अदालत, प्रधान काजी, प्रधान मुफ्ती एवं तीन मौलवी पदस्थापित थे।

कलकत्ता के यूरोपियनों के लिए मेयर की अदालत का प्रावधान था। इस न्यायालय में कम्पनी एवं यूरोपियन नागरिको के मध्य विवादों का निपटारा किया जाता था। कहा गया है कि मेयर के अन्याय के सम्बन्ध में कई शिकायतें संचालयकों तक पहुंची थीं जिनमें मेयर के अनुचित दण्ड कई अंग्रेजों को भोगने के उल्लेख थे। इन दोषों के परिष्कार हेतु रेग्युलेटिंग एक्ट में सर्वोच्च न्यायालय का प्रावधान किया गया। सर्वाच्च न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश एवं तीन अन्य जज थे। इस न्यायालय का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दावा था कि उसका कार्यक्षेत्र सभी व्यक्तियों पर है। परिणामतः सर्वोच्च कार्यपालक एवं न्यायपालक अधिकारियो के बीच विवाद छिड़ गया। वारेन हेस्टिंग्ज ने सुप्रीम कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश अम्पे को ऊँचा दरमाहा देकर सदर दीवानी अदालत का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया और मामले का निपटारा किया। डा. परांजपे, एन.वी ने लिखा है, ''कलकत्ते में 1774 के चार्टर के अन्तर्गत सुप्रीम कोर्ट स्थापना भारतीय विधि के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। अंग्रेज शासकों ने सुप्रीम कोर्ट द्वारा जो व्यवस्था भारत में 1774 में लागू की वही व्यवस्था इंग्लैण्ड में सौ वर्षों के बाद अर्थात् 1873–75 ई. में जूड़ी के चर एक्ट द्वारा लागू की गई, जिसके अन्तर्गत सुप्रीम कोर्ट आव जूडी केचर स्थापित किया गया। इस दृष्टि से भारतीय विधि के विकास की प्रगति इंग्लैण्ड की विधि विकास की तुलना में पूर्ववर्ती है।

निष्कर्षतः अंग्रेजों द्वारा स्थापित न्याय प्रणाली के सन्दर्भ में ताराचंद ने जिक्र किया है, 'अंग्रेजों ने इस देश की पुरानी विधि व्यवस्था के स्थानपर जिस कानूनी संगठन की स्थापना की वह स्वरूप तथा आत्मा दोनों के नाते पुरानी पद्धति से पूर्णतः भिन्न था। उसने पवित्रता की आभा से आलोकित पंच परमेश्वरों के मध्यम से अनौपचारिक रूप से जल्दी और कम खर्च पर किये जाने वाले इन्साफ के स्थान पर एक ऐसी न्याय व्यवस्था को ला बिठाया, जिसमें श्रद्धा के लिए कोई स्थान ही न था। उस ध र्म निरपेक्ष पद्धति ने वकीलों के वाक्क्षल में वृद्धि कर दी। ऐसी दशा में अदालतों में कानूनी दल प्रपंच, झूठ और मक्कारी का बोलबाला हो जाना और मुकदमेंबाजी की प्रवृत्ति का बहुत बढ़ जाना स्वाभाविक ही था।''

दूसरी और मोरलैण्ड के अनुसार यह प्रणाली पूर्णता से बहुत दूर थी किन्तु यह पहले अचलित प्रथा से बहुत अच्छी थी और नई अदालते शीघ्र ही जनता में लोकप्रिय हो गई।''

2.11 बंगाल न्यायालय एक्ट 1781 :

यद्यपि सुप्रीम कोर्ट एवं सदर दीवानी अदालत का एकीकरण कर वारेन हेस्टिंग्ज ने न्यायिक क्षेत्र में उठे विवाद को समाप्त कर दिया था तथापि 1781 में ब्रिटिश संसद ने बंगाल न्यायालय एक्ट पारित कर सुप्रीम कोर्ट (उच्चतम न्यायालय) के अधिकार क्षेत्र एवं शक्तियों की अनिश्चितता समाप्त कर दी। गवर्नर जनरल एवं कौसिल के सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से कोर्ट के दायरे से बाहर रखा गया। यही नहीं गवर्नर जनरल एवं कौसिल को भूराजस्व से सम्बद्ध समस्त मुकदमों में सर्वोच्च अधिकार दिये। कम्पनी के अन्य न्यायाधिकारियों के न्याय को भी इसके अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा। वस्तुतः अब कलकत्ता के निवासियों तक सुप्रीम कोर्ट का न्याय क्षेत्र सीमित हो गया। गवर्नर जनरल एवं कौसिल को इस एक्ट द्वारा अधिक सशक्त बनाया गया। दीवानी मामालों में सदर दीवानी अदालत को सर्वोच्च माना गया अर्थात् भूराजस्व विवादों में उसकी सर्वोच्चता बरकरार रही।

2.12 न्यायिक व्यवस्था (1783–1793 ई.) :

न्यायिक दृष्टि से वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा किये गये परिवर्तन विशेष रूप से राजस्व प्राप्ति को ध्यान में रख कर किये गये थे, अतः इस क्षेत्र में जटिलताएं बढ़ गई और आम लोगों की परेशानी बढ़ी। उस दौर में न्यायिक प्रक्रिया में कई तरह के प्रयोग किये गये थे। न्याय की भिन्न–भिन्न प्रणालियों अर्थात् मुस्लिम, हिन्दू तथा अंग्रेजी कानूनों के कारण जन सामान्य कुछ समझ नहीं पाया। अदालतों में बढ़ते मामलों की संख्या ने इस स्थिति को अधिक विकट बनाया। अपराधियों को लम्बी अवधि तक जले में पड़े रहना और अन्तिम निर्णय में दोष–मुक्त कर दिया जाना लोगों की संत्रस्तता का कारण बना।

कलेक्टरों को वारेन हेस्टिंग्ज ने न्यायिक अधिकार प्रदान किये, किन्तु वे कार्याधिक्य के कारण इस और ध्यान नहीं दे पाते थे और न्याय प्राप्ति की आशा में लोगों को लम्बे अरसे तक इन्तजार करना पड़ता था। इन सब परिस्थितियों ने न्यायिक क्षेत्र में परिवर्तन को आवश्यक बना दिया।

कार्नवालिस 1786 में गवर्नर जनरल बनकर भारत आया। भूराजस्व की दृष्टि से स्थायी बन्दोबस्त उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य था, जिसकी चर्चा 'ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था एवं कृषक वर्ग' नामक इकाई में की गई है। विधि के क्षेत्र में उसका कार्यकाल इसलिए महत्वपूर्ण रहा है कि अपनी रचनात्मक योजनाओं द्वारा उसने बंगाल की प्रजा के लिए आदर्श न्याय पद्धति की शुरूआत की। एम.पी. जैन ने जिक्र किया है कि, ''यह प्रथम शासक था जिसने भारत में इस सिद्धान्त को कार्यान्वित किया कि प्रशासनिक व्यवस्था कानून (विधि) पर आधारित होनी चाहिए।'' उसने जिले को संवर्ग मानते हुए सम्पूर्ण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राज्य को 23 भागों में विभक्त करते हुए उनमें कलेक्टरों को नियुक्त किया। स्मिथ के अनुसार मैक्फरसन ने बंगाल, बिहार को 37 जिलों में बांटा था। कलकत्ता कौसिल के अनुसार, 1786 तक संचाल समिति मजिस्ट्रेट, कलेक्टर एवं जज के कार्य एक ही व्यक्ति से करवाये जाने के पक्ष में थी। यह व्यवस्था 1793 तक चलती रही। विवेचना की गई है इससे बचत एवं न्याय दोनों संभव हुए।'' 1793 में स्थायी भूमि व्यवस्था लागू हो जाने के बाद जमींदारों पर अधिक नियंत्रण की आवश्यकता नहीं रही और कार्नवालिस ने भूराजस्व वसूल करने के कार्य को न्याय से भिन्न श्रेणी का मानकर अलग कर दिया गया कार्नवालिस ने न्याय प्रशासन के सुचारू संचालन हेतु कुछ नये न्यायालय स्थापित किये उनका उल्लेख करना युक्तिसंगत होगा।

2.12.1 मुन्सिफ कोर्ट :

सबसे पहले नगर एवं जिला स्तर पर अमीन एवं मुन्सिफ की अदालत में 50 रूपये तक के मुकदमो की सुनवाई होती थी। ताराचंद ने उल्लेख किया है, "दीवानी अदालतो का एक निश्चित क्रम विधान रखा गया था। सबसे निचले स्तर पर स्थानीय आयुक्तो की अदालतें। उन अदालतों में पहले पहल पचास रूपये तक के मुकदमों की सुनवाई और फैसला किया जाता था। इनकी तीन श्रेणियां थीं – अमीन, सालिस और मुन्सिफ।'' हिन्दुस्तानी लोगो को ऐसे विवादों के निर्णय के अधिकार दिये गये। मुन्सिफ, सदर अमीन न्यायाधीश कार्य करते थे। इनमें सामान्य लेने–देन एवं कर्ज के मामले निपटाये जाते थे। इनके ऊपर रजिस्ट्रार की अदालते थीं जहां 200 रूपये तक के मामलो की सुनवाई की जाती थी।

2.12.2 जिला दीवानी न्यायालय :

जिला मुख्यालयों पर जिला जज नियुक्त किये गये। जिला जज बनने का अधिकार अंग्रेजों को ही था। स्थानीय परामर्शदाता (हिन्दू व मुस्लिम) इन्हें सहयोग करते थे। मुन्सिफ न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध अपील सुनने तथा फौजदारी (निजामत) दीवानी एवं लगान सम्बन्धी मामलों में इन्हें अधिकार थे। लेकिन यूरोपियन लोगों के दीवानी मामलों के निर्णय के अधिकार इन्हें नहीं दिये गये।

2.12.3 प्रान्तीय दीवानी न्यायालय :

अपीलों की सुनवाई हेतु चार प्रान्तीय अदालतें कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद एवं पटना में खोली गई। जिला अदालतों के निर्णय के विरूद्ध लोगों का कोलकाता अपील हेतु पहुंचना कठिन था। (सदर दीवानी अदालत में) अतः दूरस्थ प्रान्तों के अपीलांट्स के लिए चार प्रान्तीय न्यायालय स्थापित किये। प्रत्येक न्यायालय में तीन अंग्रेज न्यायाधीश, एक रजिस्ट्रार एक काजी, एक मुफ्ती और एक पण्डित की ज्यूरी का प्रावधान किया गया। सामान्य विवादों की सुनवाई इन न्यायालयों द्वारा नहीं की जाती थी। स्थानीय अपराधों की सुनवाई हेतु इन न्यायालयों को वर्ष में दो बार दौरा करना होता था। इन्हें सर्किट (भ्रमण अदालत) न्यायालय भी कहा जाता था। न्यायालयों को एक हजार तक के विवादों के निर्णय का अधिकार था। बड़ी राशि के मामले मूल रूप में सीधे स्वीकार किये जाते थे।

2.12.4 सदर दीवानी अदालत :

जिला एवं प्रान्तीय अदालतों से अपीलें सदर दीवानी अदालत में आती थीं। इसे भारत में स्थिति अपील की सर्वोच्च अदालत कि संज्ञा दी जा सकती है। इसका अध्यक्ष गवर्नर जलरल एवं कौसिल के अन्य सदस्य होते थे। एक काजी, दो मुफ्ती तथा दो पण्डितों की परामर्श हेतु जूरी बनाई गई। इस न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध पांच हजार पौण्ड से अधिक मामलों की अपील इंग्लैण्ड की प्रिवी कौसिल में किये जाने के प्रावधान थे।

2.12.5 फौजदारी न्यायालय :

कम्पनी ने फौजदारी न्याय प्रशासन का कार्य 1790 के बाद ही हस्तगत किया। फौजदारी अदालतों में भारतीय न्यायाधीश निर्णय करते थे। मुर्शिदाबाद स्थित सदर निजामत अदालत का अध्यक्ष मुहम्मद रजा खां था। कार्नवालिस फौजदारी (निजामत) अदालतों के अधिकार भी अंग्रेजों को प्रदान करने को उत्सुक था। इसका उसे शीघ्र ही अवसर भी मिल गया। कहा गया है कि इन अदालतों में बेईमानी की खबरों से उसने बदलाव का निश्चय किया था। दूसरे, इसके मुस्लिम कानूनों (हनीफ विचारधारा) के अन्तर्गत किसी अन्य धर्म के अनुयायी की गवाह पर मुसलमान को सजा के प्रावधान नहीं थे। यह व्यवस्था

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अन्यायपूर्ण एवं अन्य लोगों के लिए आपत्तिजनक थी। तीसरे, तथ्या के अपराधी को मृतक के सम्बन्धियों द्वारा माफ कर दिये जाने पर दण्डित नहीं किया जा सकता था। रेम्जे म्यूर ने जिक्र किया है कि 23 अगस्त, 1789 को कार्नवालिस ने संचालक को पत्र लिखा, ''मेरी मान्यता है कि सुधार के सभी नियम तब तक व्यर्थ है जब तक कि उनका पालन करवाना स्थानीय हाथों में है।'' निजामत अदालत को उसने कलकत्ता स्थानान्तरित किया तथा रजा खां को सेवा से पृथक् कर दिया गया। गवर्नर जनरल एवं उसकी कौसिल को ही सदर निजामत अदालत के जज के रूप में मान्यता दी। फौजदारी (निजामत) मामलों में सबसे छोटी मुन्सिफ की अदालत थी। जिसकी अपीलें सैशन जज सुनता था। प्रान्तीय स्तर पर सर्किट अदालतें कलकत्ता, ढाका, पटना तथा मुर्शिदाबाद में दीवानी तथा फौजदारी मुकदमों की सुनवाई की व्यवस्था थी।

2.13 कार्नवालिस कोड (1793 ई.) :

गवर्नर जनरल ने न्यायिक नियमों की जानकारी हेतु नियमों का संग्रह तैयार करवाया जिसे कार्नवालिस कोड' की संज्ञा दी गई। प्रशासकीय, न्यायिक, पुलिस तथा राजस्व के सम्बन्ध में नियमों का संग्रह एक महत्वपूर्ण कार्य था। इस कार्य में बारलो एवं विलियम जोन्स का सहयोग लिया गया।

नवीन प्रावधानों में धर्म के आधार पर गवाही देने से किसी व्यक्ति को वंचित नहीं किया गया।

व्यवस्था में किसी वर्ग जाति एवं समुदाय का विचार किये बिना सबके लिए समान रूप से न्याय की व्यवस्था थी।

सूली पर चढ़ाना तथा अंग–भंग जैसे दण्ड समाप्त कर दिये गये और इनके स्थान पर कठोर कारावास का प्रावधान किया।

अधिवक्ता वर्ग के लिए दीवानी अदालत से लाइसेंस (सनद) दिये जाने का प्रावधान किया।

कम्पनी अधिकारियों पर भी मुकदमा चलाये जाने की व्यवस्था थी, किन्तु ऐसे मामलों में अंग्रेज जज, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लाभ प्राप्त न करने वाले ही अधिकृत थे।

नियमों के संग्रह मे न्यायपालिका एवं कार्यपालिका को पृथक् स्वरूप देते हुए विभागीय कार्यों को सरल बनाया गया।

कलेक्टरों एवं सरकारी अधिकारियों को अपने कार्य के लिए अदालतों के प्रति जिम्मेदार बनाया, जिससे वे आम लोगों पर अत्याचार न कर सकें।

अन्त में, कहा जा सकता है कि कार्नवालिस को भारतीयों पर विश्वास नहीं था, अतः शासन एवं सत्ता के सभी महत्त्वपूर्ण दायित्वों से भारतीयों को हटाकर प्रजातीय भेद की शुरूआत की। जिससे स्थानीय लोगों में हीनभावना का विकास हुआ और लम्बे अरसे तक भारतीय इससे उबर नहीं पाये। जिन अंग्रेज अधिकारियों को उसने न्यायिक अधिकार सौपे वे अनुभव शून्य थे तथा उन्हें स्थानीय भाषा का ज्ञान नहीं था जिससे आम लोगों की परेशानी बढ़ी। स्मिथ ने ठीक ही कहा है कि, कानून हिन्दू या मुस्लिम था, किन्तु व्यवस्था अंग्रेजी थी और लम्बी प्रक्रिया के कारण परेशान लोगों को मध्यस्थ वकीलों की शरण में जाना पड़ता था। इस तरह विशाल विधिक व्यवसाय का विकास हुआ, किन्तु यह आश्चर्यजनक नहीं कि विधि प्रक्रिया में सामान्य अभ्यार्थी भौचक्का हो जाता था। नवीन न्यायिक व्यवस्था की खामियों को दृष्टिगत रखते हुए टॉमस मुनरो ने कार्नवालिस प्रणाली को यथावत् लागू नहीं किया तथा ग्रामीण पंचायतों के पास छोटे दीवानी एवं फौजदारी मामले यथावत् बनाये रखे गये।

2.14 बैटिक कालीन बदलाव (1829–1836 ई.) :

इस समय तक आते–आते न्यायिक प्रणाली जड़ हो चुकी थी। राबर्ट्स ने ठीक ही कहा है, ''न्याय विभाग अयोग्य एवं सुस्त लोगों का अरामगाह बनाता जा रहा था। न्यायिक प्रणाली अत्यन्त खर्चीली एवं विलम्ब कारक साबित हो चुकी थी, जिससे इसका महत्त्व समाप्त होता हुआ प्रतीत हुआ। लोगों का न्यायालयों से विश्वास टूटने लगा, अतः बैटिक के समय कुछ आवश्यक बदलाव किये गये जो देश की आजादी तक बरकार रहे।''

भारतीयों को सदर अमीन के पद पर नियुक्ति दी जाने लगी तथा डिप्टी मजिस्ट्रेट और डिप्टी कलेक्टर जैसे पदों का सृजन हुआ। इसी तरह दीवानी मामलों में प्रिंसिपल सदर अमीन का नया पद बना।

मुकदमों हेतु फारसी के स्थान पर बोलचाल की भाषा का अदालतों में प्रचलन की अनुमति मिली।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आगरे में अपील के सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई। यही नहीं 1 जनवरी, 1832 में इलाहाबाद में भी सदर दीवानी सदर निजामत अदालत की स्थापना की गई। जिसका अधिकार क्षेत्र बनारस, मेरठ, सहारनपुर, मुज्जफरनगर तथा बुन्देलखण्ड तक सीमित रखा गया।

जिला स्तर पर जिला जज का अलग पद सृहत हुआ और सैशन जज के फौजदारी अधिकार सिविल जज को मिले।

शारीरिक दण्ड कम करने के प्रयास किये गये तथा अपराधियों को कोड़े लगाने की प्रथा बंद कर दी गई। यह विचार बेंथम की इस अवधारणा पर आधारित थी कि 'अपराधी को सजा सुधारने के लिए दी जानी चाहिए, बदला लेने के लिए नहीं।'

बैटिक ने कार्नवालिस द्वारा स्थापित सर्किट अदालतों को समाप्त कर न्याय में स्थिरता प्रदान की।

प्रशासनिक एवं न्यायिक बदलावों का भारतीयों पर सकारात्मक प्रभाव नहीं हुआ। तारांचद के शब्दों में कहा जा सकता है, ''इन परिवर्तनों का लोगों की नैतिक तथा भौतिक स्थितियों पर घातक प्रभाव पड़ा। लोग खिन्न, उदासीन, हतोत्साह और अनुद्यमी हो गए। उनमें वे सभी बुराइयां और नैतिक दोष आने लगे, जो स्वात्र्य दमन और दासता के सहज प्रसाद है।''

2.15 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – क्लाइव द्वारा स्थापित दौहरी व्यवस्था को किस गवरनर जनरल ने समाप्त किया?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – कार्नवालिस कोड पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – ब्रिटिश शासन प्रबन्ध हुए परिवर्तन पर निम्बन्ध लिखिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 3

मैसूर का ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष और उनका ब्रिटिश साम्राज्य में विलीनीकरण

3.0 हैदरअली का उत्कर्ष
3.1 प्रथम आंग्ल–मैसूर युद्ध (1766–1769 ई.)
3.2 द्वितीय आंग्ल मैसूर युद्ध
3.3 तृतीय आंग्ल मैसूर युद्ध
3.4 चतुर्थ आंग्ल–मैसूर युद्ध
3.5 हैदरअली का मूल्यांकन
3.6 टीपू का मूल्यांकन
3.7 बोध प्रश्न

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत में बहुत तेजी से बिखराव आया, परिणामस्वरूप छोटे–छोटे राज्यों का उदय हुआ, जिसकी चर्चा प्रारम्भ में की गई है। भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति की मोटी तस्वीर ताराचंद के कथन से उभरती है, ''मुगलों के उत्तराधिकारी के रूप में बहुत से प्रतियोगी सामने आये। पहले वर्ग में प्रान्तों के मुसलमान सूबेदार थे। इनमें अधिक महत्त्वपूर्ण थे निजाम जिसको दक्कन के छः सूबों पर शासन था, बंगाल का नवाब, जिसे शासित प्रदेश में बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रान्त शामिल थे, अवध का नवाब जिसका क्षेत्र विस्तार निचले दोआब और गंगा के उत्तर तराई प्रदेश तक था। इसके उपरान्त हिन्दू सरदारों, राजपूतों, जाटों और मराठों का स्थान था। मुगल साम्राज्य के पतन काल में मराठा शक्ति का निरन्तर उत्कर्ष हुआ, लेकिन आन्तरिक द्वेषों तथा अन्य कारणों से मराठे भारत की सर्वोच्च सत्ता नहीं बन सके। इसी दौरान भारतीय रंगमंच पर यहां की अशान्ति एवं द्वेष का लाभ उठाकर कुछ यूरोपियन शक्तियों ने राजनैतिक प्रभुत्व के लिए संघर्ष प्रारम्भ किया। इस संघर्ष में अंग्रेज विजयी रहे।''

भारत में अंग्रेजों को सत्ता सहज ही प्राप्त नहीं हुई उन्हें कई स्थानीय शक्तियों से संघर्ष करना पड़ा था। अठारहवीं सदी का उत्तरार्द्ध एवं उन्नीसवीं सदी का प्रारम्भ भारतीय राजाओं एवं अंग्रेजों के मध्य संघर्ष का काल था। अंग्रेज सम्पूर्ण भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए लालायित थे, वहीं स्थानीय शक्तियां उन्हें भारत से बाहर निकालना चाहती थीं। बंगाल में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना की चर्चा पूर्व में की गई है अंग्रेज एवं मराठा संघर्ष का अध्ययन भी हमने किया है। मराठों को शामिल न करें तो दक्षिण भारत में इस दौर में तीन शक्तियां विद्यमान थीं। उन्हें हम तत्काली राजनीति को अपने–अपने पक्ष में बनाने की कोशिश में लगा हुआ देखते है। हैदराबाद के निजाम का पहले उल्लेख कर सकते है। लेकिन निजाम ने अपनी स्थिति को बरकरार रखने के लिए अंग्रेजों का आश्रय ग्रहण कर लिया था। दूसरी शक्ति मैसूर का जिक्र करना होगा जिसे अंग्रेजों से कड़ा मुकाबला करना पड़ा।

मैसूर के उत्थान के क्रम में इस समय के इतिहास की विशेष प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। वह यह है कि केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होने से क्षेत्रीय शक्तियां जो उभर कर आई उनका नेतृत्व राजघराने के स्थान पर सामान्य वर्ग के किन्तु योग्य लोगों ने किया। मैसूर के राजाओं का स्थान हैदरअली एवं टीपू सुल्तान ने ग्रहण किया।

हैदरअली से पहले के मैसूर इतिहास पर दृष्टि डालें तो 1565 ई. में विजयनगर राज्य के पराभव के बाद यहां आदेयर (ओदेयर) वंश का आधिपत्य रहा। मैसूर शासक चिकदेव (1670–1704 ई.) का समय इसकी उन्नति का काल था। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देवराज एवं प्रधानमंत्री दलवई नंदराज के हाथों में सत्ता केन्द्रित हो गई, स्थानीय शासक नाममात्र के लिए था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.0 हैदरअली का उत्कर्ष :

दक्षिण के मैसूर–राज्य मे बुदीकोट नामक स्थान पर 1721 ई. में हैदरअली का जन्म हुआ। उसके पूर्वज दिल्ली से गुलबर्गा आये थे और कृषि करते थे। सर्वप्रथम हैदरअली के पिता फतह मुहम्मद ने सैनिक सेवा को स्वीकार किया, अपनी योग्यता से मैसूर–राज्य मे एक फौजदार के पद को प्राप्त किया तथा बुदीकोट की जागीर प्राप्त की। 1728 ई. में फतह मुहम्मद की मृत्यु हो गयी, जबकि हैदरअली केवल सात वर्ष का था। इससे हैदरअली के परिवार की स्थिति अत्यन्त खराब हो गयी और हैदरअली जवान होकर बड़ी कठिनाई से राज्य में सैनिक सेवा को प्राप्त करके अपने परिवार की स्थिति को संभाल सका। जिस समय हैदरअली ने अपने सैनिक जीवन को आरम्भ किया उस समय मैसूर का राजा कृष्णराज था। परन्तु वह केवल नाम मात्र का शासक था। राज्य की वास्तविक शक्ति सर्वाधिक नन्दराज के हाथों में थी।

कर्नाटक के युद्धों ने हैदरअली के उत्थान में बहुत सहायता की। नासिरजंग के कत्ल होने और मुजफ्फरजंग के हैदराबाद के निजाम बनने के अवसर पर हैदरअली के कर्मचारियों को नासिरजंग के खजाने का कुछ हिस्सा हाथ लग गया जिससे हैदरअली को काफी सहायता मिली। सैनिक दृष्टि से वह योग्य था ही, इस कारण निरन्तर उसके पद में वृद्धि होती गयी। उसने फ्रांसीसियों के युद्ध के तरीकों को समझा और अपने सैनिकों को उसी प्रकार शिक्षा देनी आरम्भ की। नन्दराज उसकी योग्यता से प्रभावित हुआ और उसे लेकर त्रिचनापली पर आक्रमण करने के लिए गया। वहां पर हैदरअली ने युद्ध का और अनुभव प्राप्त किया तथा सौभाग्य से उसके हाथ में अंग्रजों की कुछ तोपे आ गयी। 1755 ई. में उसे डिण्डगिल का फौजदार नियुक्त किया गया। वहां रूकर हैदरअली ने अपनी सेना मे वृद्धि की और आसपास की भूमि को लूटकर धन एकत्र किया। उस समय तक उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा में काफी वृद्धि हो गयी थी।

अगले पांच वर्षों में हैदरअली ने राजदरबार में अपनी प्रतिष्ठा बहुत बड़ा ली और 1760 ई. में राज्य की शासन–शक्ति को अपने अधिकार में कर लिया। उसने अपनी स्थिति को दृढ़ करने में एक वर्ष और लगाया तथा 1761 ई. में मैसूर राज्य की सम्पूर्ण शक्ति को अपने हाथ में कर लिया। अब हैदरअली राज्य का सर्वेसर्वा बन गया। हिन्दू राजा को तो केवल वर्ष में एक बार उसकी प्रजा को नाममात्र के लिए दिखा दिया जाता था। हैदराबाद और कर्नाटक के उत्तराधिकार के युद्धों, पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों की पराजय तथा दक्षिण में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की कट्टर शत्रुता ने हैदरअली को अपनी शक्ति, और राज्य का विस्तार करने की सुविधा प्रदान की। धीरे–धीरे उसने आसपास के क्षेत्रों, जैसे बदेनूर, कनारा आदि पर अधिकार कर लिया और बललापुर, रायदुर्ग, चित्तलदुर्ग आदि के सरदारों को अपना आधिपत्य स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार अपनी योग्यता और साहस से हैदरअली एक साधारण स्थिति से उठकर मैसूर–राज्य में राज्य के प्रधान के पद पर पहुंच गया। हैदरअली के इस उत्कर्ष के प्रति मराठा और हैदराबाद के निजाम उदासीन न थे। 1764 ई. में पेशवा माधोराव ने हैदरअली को एक युद्ध में परास्त किया और 1765 ई. में हैदरअली को मराठों से सन्धि करके उन्हें अपना कुछ भू–क्षेत्र तथा 28 लाख रूपया प्रति वर्ष देने का वायदा करना पड़ा। 1765 ई. में निजाम ने अंग्रेजों की सहायता लेकर हैदरअली पर आक्रमण किया। मराठे भी इस सन्धि में सम्मिलित हो गये और इस प्रकार 1766 ई. से हैदरअली और अंग्रेजों का संघर्ष आरम्भ हुआ।

3.1 प्रथम आंग्ल–मैसूर युद्ध (1766–1769 ई.) :

प्रथम आंग्ल–मैसूर युद्ध मद्रास सरकार द्वारा दक्षिण की राजनीति में भाग लेने के कारण आरम्भ हुआ। अंग्रेजों ने बंगाल में आशा से अधिक सफलता प्राप्त की थी और मद्रास सरकार दक्षिण में इसी प्रकार की सफलता प्राप्त करने लिए उत्सुक थी। 1765 ई. में हैदराबाद के निजाम ने हैदरअली के विरूद्ध अंग्रेजों से सहायता मांगी और उत्तरी सरकार के क्षेत्र को प्राप्त करने के बदले में अंग्रेज निजाम को सहायता देने के लिए तत्पर हो गये। मराठे भी इस सन्धि में सम्मिलित हो गये और इस प्रकार 1766 ई. में हैदरअली के विरूद्ध इन तीन शक्तियों का एक गुट बन गया।

1766 ई. में प्रथम मराठों ने मैसूर पर आक्रमण किया। हैदरअली ने बहुत चालाकी से काम लिया। उसने इस गुट को तोड़ने और मराठों के आक्रमण से बचने के लिए कूटनीति का सहारा लिया। उसने आक्रमणकारी मराठों को 35 लाख रूपया देने का वायदा किया। आधा धन उसी समय दे दिया गया और शेष आधे धन के बदले में कोलार के जिले को रखने के रूप में मराठों को दे दिया गया। मराठे इससे सन्तुष्ट हो गये और वापस चले गये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

निजाम ने जोसेफ स्मिथ के नेतृत्व में एक अंग्रेज सेना सहित मैसूर पर आक्रमण किया परन्तु यह आक्रमण बहुत सफल नहीं हुआ। इसी बीच कर्नाटक के नवाब मुहम्मदअली के भाई महफूजखाँ ने जो मुहम्मदअली और अंग्रेज का शत्रु था निजाम को भड़का दिया और सितम्बर 1767 ई. में निजाम ने अंग्रेजों से समझौता तोड़कर हैदरअली से एक समझौता कर लिया। अब निजाम और हैदरअली मिलकर अंग्रेजों के विरूद्ध हो गये। स्मिथ को इनकी सम्मिलित सेनाओं से युद्ध करना पड़ा और त्रिनोपाली वापस लोटना पड़ा जहां कर्नल वुड की सेना भी उसके साथ हो गयी। त्रिनोपाली के युद्ध में निजाम और हैदरअली की सेनाओं को असफलता मिली और दिसम्बर 1767 ई. हैदरअली की एक अन्य स्थान पर भी पराजय हुई।

इन असफलताओं को देखकर और यह जानकर कि अंग्रेज हैदराबाद पर भी आक्रमण करने के लिए एक सेना भेज रहे है, निजाम का साहस टूट गया और मार्च 1768 ई. में उसने हैदरअली का साथ छोड़कर अंग्रेजों से सन्धि कर ली। निजाम के साथ मद्रास सरकर द्वारा की गयी यह सन्धि अंग्रेजों और मैसूर राज्य के बीच स्थायी झगड़े का कारण बनी। इस सन्धि के अनुसार –

1. निजाम और अंग्रेजों ने पहली सन्धि की शर्तों को पुन: स्वीकार किया।
2. निजाम ने हैदरअली को विद्रोही माना और मैसूर–राज्यपर उसक अधिकार को स्वीकार नहीं किया।
3. मैसूर राज्य की दीवानी अंग्रेज कम्पनी को दे दी गयी (जब उसराज्य पर अधिकार कर लिया जायेगा)।
4. निजाम ने अंग्रेजों और कर्नाटक के नवाब को हैदरअली को दण्ड देने में सहायता देने का वायदा किया।

इस प्रकार 1768 ई. में हैदरअली पुन: अकेला रह गया। परन्तु उसे साहस नहीं छोड़ा और यह अंग्रेजों से तत्परता से युद्ध करता रहा। उसने बम्बई सरकार की एक सेना को परास्त करके मंगलौर पर अधिकार कर लिया और मार्च 1769 ई. में मद्रास पर आक्रमण किया तथा 4 अप्रैल, 1769 ई. को मद्रास सरकार को एक सन्धि करने के लिए बाध्य किया। इस सन्धि की शर्तों को हैदरअली ने निश्चित किया था और इसके अनुसार –

1. एक–दूसरे के जीते हुए भू–भाग एक दूसरे को वापस कर दिये गये।
2. हैदरअली ने कारूर का जिला कनार्टक के नवाब को दे दिया जिस पर मैसूर राज्य ने बहुत पहले अधिकार किया था।
3. अंग्रेज तथा हैदरअली ने एक–दूसरे को किसी भी बाह्य आक्रमण के अवसर पर सहायता देने का वायदा किया।

इस प्रकार प्रथम मैसूर युद्ध समाप्त हुआ। निस्सन्देह, इसमें हैदरअली को सफलता प्राप्त हुई थी और उसने की सन्धि की शर्तों के अनुसार उसे उसके शत्रुओं के विरूद्ध सहायता देने के लिए तत्पर थे। इसी कारण द्वितीय मैसूर–युद्ध का सूत्र पात हुआ। 1771 ई. में जब मराठों ने हैदरअली पर आक्रमण किया तो अंग्रेजों ने उसे कोई सहायता नहीं दी और हैदरअली इस बात को न भुला सका।

3.2 द्वितीय आंग्ल मैसूर युद्ध :

वारेन हेस्टिंग्ज के समय में मद्रास की अंग्रेज सरकार ने एक बार फिर राजनीति में रूचि प्रदर्शित की। उसने 1768 ई. में कर्नाटक के नवाब को तंजौर का राज्य प्राप्त करने में सहायता दी थी और बसालतजंग से, जो निजाम का एक सम्बन्धी था, गुन्टूर का जिला छीन लिया था। यही नहीं बल्कि उसन निजाम को 1768 ई. में की गयी सन्धि के अनुसार जिलों के बदले में सात लाख रूपया प्रति वर्ष देने के वायदे को भी पूरा करने से इंकार किया। इस कारण हैदराबाद का निजाम अंग्रेजों से असन्तुष्ट हो गया।

हैदरअली भी अंग्रेजों से असन्तुष्ट था। अंग्रेजों ने उसे 1769 ई. की सन्धि के अनुसार 1771 ई. में मराठा–आक्रमण के अवसर पर सहायता नहीं दी थी। गुन्टूर पर अंग्रेजों के आधिपत्य को उसने ठीक नहीं समझा और जब 1779 ई. में अंग्रेजों ने माही पर भी अधिकार कर लिया तो उसने अंग्रेजों से बदला लेने का निश्चय किया। माही की फ्रांसीसी फैक्ट्री हो हैदरअली ने अपनी सरंक्षण में ले रखा था और जब उसके विरोध प्रदर्शन के बाद भी अंग्रेजों ने उसे पर अधिकार कर लिया तब उसके क्रोध की सीमा न रही।

इस प्रकार उस समय हैदराबाद का निजाम अंग्रेजों से असन्तुष्ट था, हैदरअली अंग्रेजों से बदला लेने की सोच रहा था और मराठों से अंग्रेजों का प्रथम युद्ध आरम्भ हो चुका था। इन तीनों शक्तियों ने मिलाकर अंग्रेजों के विरूद्ध एक गुट बना लिया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और एक निश्चित योजना के अनुसार यह निश्चय किया गया कि मराठे बरार और मध्य भारत से होते हुए अंग्रेजों पर उत्तर में आक्रमण करेंगे, निजाम उत्तरी–सरकार पर आक्रमण करेगा और हैदरअली मद्रास व उसके आस–पास के अंग्रेजी भू–प्रदेश को विजय करेगा। इस प्रकार द्वितीय मैसूर–युद्ध की पृष्ट भूमि तैयार हो गयी।

जुलाई 1800 ई. 83,000 सैनिकों और 100 तोपों को लेकर हैदरअली ने कर्नाटक के मैदान में प्रवेश किया। मद्रास–सरकार ने एक सेना कर्नल बेली और दूसरी सेना बक्सर के युद्ध के विजेता सर हेक्टर मुनरो के नेतृत्व में हैदरअली को आगे बढ़ने से रोकने के लिए भेजी। हैदरअली के पुत्र टीपू ने इन दोनो सेनाओं को मिलने से रोका। कांजीवरम के निकट बेली से उसका मुकाबला हुआ जिसमें बेली को सेना सहित काट डाला गया। मनुरों, जो कांजीवरम में बेली` आने की प्रतीक्षा कर रहा था, इतना घबड़ा गया कि वह वहां से तुरन्त वापस चल दिया और उसने मद्रास में जाकर शरण ली। 1780 ई. के नवम्बर और दिसम्बर माह तक हैदरअली ने अर्काट पर अधिकार कर लिया तथा अंग्रेजों की स्थिति बहुत दुर्बल हो गयी। अल्फ्रेड लायन ने उस समय की परिस्थिति के बारे में लिखा है कि ''भारत में अंग्रेजों का भाग्य सबसे नीचे गिर चुका था।'' राजाओं को अपने यहां शरण दी थी जो टीपू की मलाबार की सीमाओं पर आक्रमण करते रहते थे, उसने डचों से मलाबार तट पर दो बन्दरगाह खरीदे थे जिन्हें टीपू अपनी सीमा में मानता था और स्वयं उन बन्दरगाहों को लेने के लिए पर्याप्त धन देने को तैयार था तथा उसने अपनी सुरक्षा के लिए जो दीवार खड़ी की थी उसके बारे में टीपू का कहना था कि उसका कुछ भाग उसके राज्य की सीमा में आता था। टीपू ने इन झगड़ों को निर्णय मद्रास–कौसिल को मध्यस्थ बनाकर भी कराना चाहा था परन्तु जब वहां से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो उसने ट्रावनकोर पर आक्रमण कर दिया। इससे स्पष्ट होता है कि अंग्रेज युद्ध का बहाना ढूंढ रहे थे और इस आक्रमण के होते ही कार्नवालिस ने टीपू के विरूद्ध युद्ध घोषित कर दिया।

परन्तु मैसूर पर आक्रमण करने से पहले कार्नवालिस ने इस बात की व्यवस्था की कि मराठे या निजाम किसी कारण टीपू का साथ देने को तत्पर न हो जाये। अतएव 1 जून, 1790 ई. को मराठों के साथ और 4 जुलाई, 1790 ई. को निजाम के साथ सन्धियां की गयी जिनके अनुसार दोनों ने अंग्रेजों को सैनिक सहायता देने का वायदा किया और यह निश्चय किया कि युद्ध के पश्चात् जीती हुई भूमि को वे आपस में बांट लेंगे। यद्यपि निजाम और मराठों ने अंग्रेजों की बहुत कम सहायता की और युद्ध का अधिकांश भार अंग्रेजों पर ही रहा परन्तु उनकी टीपू से मिलने की सम्भावना नष्ट हो गयी। इस प्रकार टीपू नितान्त अकेला रह गया। उसे फ्रांस से भी कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सकी क्योंकि एक वर्ष पहले फ्रांस में जन–क्रांति आरम्भ हो चुकी थी।

3.3 तृतीय आंग्ल मैसूर युद्ध :

टीपू और अंग्रेजों का यह युद्ध प्राय: दो वर्ष चला। आरम्भ में जनरल मीडोज के नेतृत्व में अंग्रेजों का आक्रमण विफल रहा जिसके कारण दिसम्बर 1790 ई. में स्वयं कार्नवालिस ने सेनापति का पद संभाला। कार्नवालिस ने वैलौर और अम्बर की ओर से बंगलौर की ओर बढ़ना आरम्भ किया और मार्च 1791 ई. में बंगलौर पर अधिकार कर लिया। मई तक अंग्रजी सेनाएं श्रीरंग पट्टम से एक मील दूर अरीकेरा तक पहुंच गयी। परन्तु टीपू ने उस समय बहुत साहस और सेनापति की योग्यता का परिचय दिया तथा वर्ष के दिनों में कार्नवालिस को वापस लौटना पड़ा। नवम्बर 1791 ई. में टीपू ने कोयम्बटूर को जीतन में सफलता प्राप्त की। परन्तु उसकी शक्ति क्षीण होती जा रही थी। कार्नवालिस ने श्रीरंगपट्टम के मार्ग के सभी पहाड़ी किलों पर एक–एक करके अधिकार कर लिया और फरवरी 1792 ई में वह श्री रंगपट्टम के किले की दीवार तक पहुंच गया। हताश होकर टीपू को सन्धि की बातचीत आरम्भ करनी पड़ी और मार्च 1792 ई. में श्रीरंगपट्टम की सन्धि हो गयी।

इस सन्धि की शर्तों के अनुसार –

1. टीपू का प्राय: आधा राज्य उससे छीन लिया गया। उसका एक बड़ा भाग निजाम को प्राप्त हुआ। मराठों को जो भूमि प्राप्त हुई उससे उनकी सीमाएं तुंगभद्रा नदी तक पहुंच गयी। अधिकांश भाग अंग्रेजों को प्राप्त हुआ जिसमें मलाबार दक्षिण में डिण्डीगुल और उसके समीप के सभी जिले तथा पूर्व में बाड़ामहल और आसपास के सभी पहाड़ी मार्ग सम्मिलित थे जिससे उनके राज्य का विस्तार ही नहीं हुआ बल्कि उन्हें सैनिक और राजनीतिक महत्त्व के स्थान प्राप्त हुए।

2. अंग्रेजों को कुर्ग के राजा पर आधिपत्य प्राप्त हुआ।

3. टीपू को 30,00,000 पौण्ड से अधिक धनयुद्ध की क्षतिपूर्ति के लिए देना पड़ा।

4. भविष्य की सुरक्षा के लिए उसे अपने दोनों पुत्र अंग्रेजों को सौपने पड़े।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कुछ व्यक्तियों ने कार्नवालिस के इस समझौते की आलोचना की है। उनका कहना है कि कार्नवालिस ने इस सन्धि को करने में शीघ्रता की। वह सरलता से दीमट को समाप्त कर सकता था और उसने यह एक अच्छा अवसर खो दिया। परन्तु कार्नवालिस ने यह सन्धि बहुत सूझ–बूझ से की थी। उस अवसर पर अंग्रेज–सैनिकों में बीमारी फैल गयी थी, क्रांतिग्रस्त फ्रांस की स्थिति ठीक हो गयी थी असम्भव था कि टीपू को फ्रंसीसी सहायता प्राप्त हो जाती तथा डायरेक्टरों के आदेश भी अब इस युद्ध को समाप्त करने के थे। परन्तु कार्नवालिस को इससे भी अधिक कठिनाई मैसूर राज्य के विभाजन की थी। यदि वह सम्पूर्ण मैसूर को अपने अधिकार में कर लेता तो उसे निजाम और मराठों को भी विस्तृत भू–प्रदेश देना पड़ता जिससे उनकी शक्ति में वृद्धि हो जाती। इसके लिए कार्नवालिस तत्पर न था। उसने अपनी कठिनाई को स्वयं अपने शब्दों में उस समय प्रकट किया था जबकि सन्धि की वार्ता समाप्त होने की सम्भावना हो गयी थी। उसने कहा था कि ''हे ईश्वर, मै अब इस स्थान का क्या प्रबन्ध करूंगा।'' इस कारण ही उसने यह सन्धि की थी और सन्धि के पश्चात् उसने कहा था कि ''हमने अपने मित्रों को बिना बहुत शक्तिशाली बनाये हुए अपने दुश्मन को बुरी तरह से दुर्बल कर दिया है।'' इस प्रकार निश्चित है कि तृतीय मैसूर युद्ध ने टीपू की शक्ति को अत्यधिक दुर्बल बना दिया और अब मैसूर राज्य को समाप्त करना केवल कुछ समय की बात रह गयी थी। यह कार्य लार्ड वैलेजली ने भारत में आते ही पूरा कर लिया।

3.4 चतुर्थ आंग्ल–मैसूर युद्ध :

तृतीय मैसूर–युद्ध में टीपू का जो अपमान और पराजय हुई थी, वह उसे भूलने वाला न था और न वह उस समय तक अपनी पराजय स्वीकार करने को तैयार था। उसने किले की किलेबन्दी को दृढ़ करना आरम्भ किया, अपनी घुड़सवार व पैदल सेना की संख्या और शिक्षा में उन्नति की, विद्रोही सरदारों को दबाया और कृषि की उन्नति करने का प्रयत्नकिया। 1796 ई. में नाममात्र के मैसूर के हिन्दू राजा की मृत्यु हो गयी और टीपू ने उसके अल्पायु पुत्र को नाम मात्र के लिए भी गद्दी पर बिठाने से इन्कार कर दिया। उसने अंग्रेजों के विरूद्ध मित्र प्राप्त करने के लिए अरब, काबुल, टर्की और मौरीशस में अपने राजदूत भेजे और इनमें से उसे फ्रांसीसियों की थोड़ी सहायता भी प्राप्त हुई। कुछ फ्रांसीसी स्वयंसेवक मैसूर आये जहां उन्होंने 'स्वतन्त्रता' के वृक्ष को आरोपित किया। स्वयं टीपू जैकोबिन–दल का सदस्य बन गया और उसने अपने को 'नागरिक टीपू' पुकारा। मौरीशस के फ्रांसीसी गवर्नर ने टीपू को मैसूर का सुल्तान स्वीकार किया और जिस समय लॉर्ड वैलेजली कलकत्ता पहुँचा उसी समय फ्रांसीसी सैनिकों की एक टुकड़ी मंगलोर पहुंची। इस प्रकार निश्चय था कि टीपू अंग्रेजों को भारत से निकालने और अपने अपमान का बदला लेने के लिए दृढ़ संकल्प था।

लॉर्ड वैलेजली के लिए टीपू के ये कार्य शत्रुतापूर्ण थे। वह साम्राज्यवादी था, फ्रांसीसी प्रभाव को भारत से पूर्णतया नष्ट करना उसका एक लक्ष्य था और शत्रु–राज्यों में मैसूर का राज्य ऐसा था जिसे सम्भवतया वह सरलता से समाप्त कर सकता था। इस कारण वैलेजली ने सर्वप्रथम टीपू को समाप्त करने का लक्ष्य बनाया। अपनी सफलता को निश्चित करने के लिए उसने निजाम और मराठों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। 1 सितम्बर 1798 ई. को निजाम ने सहायक सन्धि को स्वीकार कर लिया और अंग्रेजों का मित्र बन गया। मराठों में वैलेजली को कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। तब भी अपने पक्ष को दृढ़ रखने के लिए वैलेजली ने अपनी तरफ से पेशवा को यह लालच दिया कि मैसूर के जीते हुए प्रदेशों में से आधा भाग वह पेशवा को दे देगा। इस प्रकार अपनी स्थिति को दृढ़ करके वैलेजली ने मैसूर पर आक्रमण करने की योजना बनायी और 1799 ई. में मैसूर पर आक्रमण आरम्भ कर दिया।

जनरल हैरिस और आर्थर वैलेजली के नेतृत्व में एक सेना में फरवरी में वैलोर से चलकर मार्च 1799 ई. में मैसूर पर आक्रमण किया। जनरल स्टुअर्ट ने टीपू को सीदासीर और जनरल हैरिस ने टीपू को मालवेली के युद्ध में परास्त किया। टीपू को श्रीरंगपट्टम के किले में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। 17 अप्रैल, 1799 ई. को श्रीरंगपट्टम का घेरा डाल दिया गया और 4 मई, 1799 ई. को उस पर अधिकार कर लिया गया। टीपू अपने किले की दीवार पर युद्ध करता हुआ मारा गया और उसके पुत्र ने अंग्रेजों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया।

इस युद्ध से 33 वर्ष पूर्व स्थापित मैसूर का मुसलिम राज्य समाप्त हो गया। अंग्रेजों ने उसकी कुछ भूमि कुछ शर्तों पर पेशवा को दीन चाही परन्तु उसने लेने से इन्कार कर दिया। निजाम को उत्तर–पूर्व में अपनी सीमाओं के निकट का भू–प्रदेश प्राप्त हुआ जिसमें गूटी, गुरूमकोण्टा और उसके किले को छोड़कर चित्तलदुर्ग के जिले सम्मिलित थे। अंग्रेजों ने पश्चिम में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कनारा, दक्षिण–पश्चिम में बाईनाद, कोयम्बटूर और रारापुरम के जिले तथा श्रीरंगपट्टम को सम्मिलित करते हुए पूर्व में दो अन्य जिले प्राप्त किये। बाकी बचा हुआ मैसूर का राज्य पुराने हिन्दू राजा के अल्पायु पुत्र को दे दिया गया। उसने अंग्रेजों से सहायक सन्धि कर ली और यह स्वीकार कर लिया कि आवश्यकता होने पर अंग्रेज उसके राज्य के शासन को कभी भी अपने हाथ में ले सकते थे। टीपू के परिवार के सदस्य वैलोर के किले में भेज दिये गये जहां वे बन्दी की भांति रहे।

इस प्रकार अंग्रेजों के शत्रु राज्य मैसूर का अन्त हुआ। उसके अधिकांश भाग पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया और जो बाकी बचा हुआ मैसूर राज्य रहा, उसकी सीमाएं प्रत्येक और से अंग्रेजी सीमाओं से घिरी हुई थी ओरवहां का राजा पूर्णतया अंग्रेजों पर निर्भर करता था। मैसूर की विजय की इंग्लैण्ड में बहुत प्रशंसा हुई। वैलेजली को मरक्वेस का पद दिया गया। डीन हटन ने मैसूर–विजय के बारे में लिखा है कि ''सैनिक, आर्थिक और शान्ति स्थापना की दृष्टि से मैसूर की विजय, क्लाइव के समय के पश्चात् अंग्रेजी शक्ति की सबसे महत्वपूर्ण विजय थी।''

3.5 हैदरअली का मूल्यांकन :

आधुनिक भारत के इतिहास में हैदरअली का स्थान भारत के प्रमुख शासकों में है। वह एक साधारण सैनिक की स्थिति से उठकर मैसूर का सेनापति और अन्त में वहां का शासक बन गया। वह अशिक्षित होते हुए भी उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ था। वह ऐसी किसी भी शक्ति से मैत्री करने को तैयार था, जो उसे सैनिक सामग्री उपलब्ध करा सके। अतः 1778 तक वह इस बात के लिये प्रयत्नशील रहा कि उसे अंग्रेजों की सहातया उपलब्ध हो सके। जब अंग्रेजों ने उसे वह सुविधा प्रदान नहीं की तो उसने फ्रांसीसियो से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। अंग्रेजों की सहायता के बिना भी वह एक ऐसी सेना के गठन में सफल हुआ जो अंग्रेजों की सेना से समानता के स्तर पर टक्कर ले सकी। अनेक इतिहासकारों ने विशेषकर अंग्रेज इतिहासकारों ने उसे लुटेरा तथा दूसरों के राज्य का अपहरणकर्ता कहा है। किन्तु हैदर के बारे में यह कहना उचित नहीं है, क्योंकि वह जमाना ही ऐसा था, जब राज्य और शक्ति इसी तरीके से प्राप्त किये जाते थे। जिन परिस्थितियों में उसने मैसूर राज्य का निर्माण किया, वह उसकी योग्यता का प्रमाण था। सैनिक दृष्टि से हैदर अंग्रेज सेनानायकों से अधिक योग्य था। उसकी सैनिक शक्ति का एक बहुत बड़ा भाग घुड़सवार सेना का था, जिसके फलस्वरूप वह सदैव गतिशील रहता था। वह मराठों के विरूद्ध सुल्ता प्राप्त नहीं कर सका, क्योंकि मराठा आंधी की तरह टूट पड़ते थे, और हैदर को केवल रक्षात्मक युद्ध के लिये विवश होना पड़ता था।

हैदर न केवल कुशल सेनानायक ही था, बल्कि कुशल प्रशासक भी था। उसने अपने राज्य के विद्राही जीमींदारों को शक्ति से अपने अधीन किया तथा स्वामिभक्त जमींदारों को उदार नीति से अपने पक्ष में किया। राज्य में भू–राजस्व व्यवस्था प्राचीन पद्धति से प्रचलित रही। गांव में राजस्व वसूल करने वाला पटेल होता था यथा बड़े क्षेत्रों में यह कार्य आमिलदार करते थें उसकी धार्मिक नीति भी बड़ी उदार थी। ब्राह्मणों व मन्दिरों को पहले की भांति जागीरें मिलती रही। अंग्रेज सेनानायक मुनरों ने उसके प्रशासन की नियमितता एवं कुशलता की बड़ी प्रशंसा की है। एक शासक, सैनिक और सेनापति की दृष्टि से वह पूर्णतया योग्य था।

3.6 टीपू का मूल्यांकन :

टीपू के योगदान की चर्चा करते हुए प्रो. शेख अली ने लिखा है, ''टीपू मैसूर को अधिक बड़े विश्व के सम्पर्क में लाने वाला शासक था। जब तक वह जीवित रहा, अंग्रेज अपने को सुरक्षित महसूस नहीं करते थे, उसकी मृत्यु के बाद ही वे यह घोषणा कर पाये कि, ''भारत हमारा है।'' वह बहादुर सैनानायक और देशभक्त योद्धा था। अन्य सभी धर्मो के प्रति टीपू सहिष्णु था। उसके दरबार में अनेक हिन्दू उच्च पदपर नियुक्त थे। पूर्णिमा व कृष्णराव उसके मंत्री थे। जेम्स मिल ने कहा था, ''टीपू के चरित्र की विशेषता उसकी धार्मिक सहिष्णुता में है।'' मूर ने उसकी सरकार को लोकप्रिय कहा है। सर जान शोर जानकारी देता है कि, ''टीपू अपने प्रशासन के सब विभागों का स्वयं निरीक्षण करता था एवं समय–समय पर शान्ति निर्देश देता था।''

उच्च शिक्षा प्राप्त टीपू को फारसी, उर्दू व कन्नड़ का अच्छा ज्ञान था। उसका शिक्षा एवं ज्ञान के प्रति लगाव हजारों की संख्या में हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रह से ज्ञात होता है। जिन्हें अंग्रेजों ने जला दिया था। राजनीतिक रूप में वह अपने पिता से कम चतुर व व्यवहारिक था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.7 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – हैदरअली का जन्म कब हुआ?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – श्रीरंगपट्टम की सन्धि पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – आंग्ल मैसूर युद्ध की विवेचना किजिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 4

पंजाब का ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष और उनका ब्रिटिश साम्राज्य में विलीनीकरण

4.0 रणजीतसिंह
4.1 लाहौर पर अधिकार
4.2 अमृतसर सन्धि (25 अप्रैल, 1809)
4.3 राज्य विस्तार
4.4 सिक्ख–आंग्ल सम्बन्ध (1809–1839 ई.)
4.5 रणजीतसिंह का शासन प्रबन्ध
4.5.1 प्रान्तीय शासन
4.6 न्यायिक व्यवस्था
4.7 भूराजस्व
4.8 सेना प्रबन्ध
4.81 पैदल सेना
4.8.2 तोपखाना
4.8.3 सैनिक नीति का मूल्यांकन
4.9 इतिहास में रणजीत सिंह का स्थान
4.10 प्रथम आंग्ल–सिक्ख युद्ध (1845–46) : कारण
4.10.1 सिक्ख सरदारों का आपसी द्वेष
4.10.2 अयोग्य उत्तराधिकारी
4.10.3 पंजाब की राजनीति में अंग्रेजी हस्तक्षेप
4.10.4 सिक्ख सेना एवं राजनीतिक गतिविधियां
4.10.5 लाहौर की सन्धि (1846 ई.)
4.10.6 भैरोवाल की संधि
4.11 द्वितीय सिक्ख युद्ध
4.11.1 राजनीति अवस्था
4.11.2 आर्थिक पृष्ठभूमि
4.11.3 सैनिक असन्तोष
4.11.4 मुल्तान का विद्रोह
4.12 सिक्ख पराजय के कारण
4.13 बोध प्रश्न

गुरु नानक मध्यकालीन भक्ति परम्परा के सन्त थे, जिन्होंने धार्मिक सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया। मुगलों के अन्याय के परिणामस्वरूप दसवें गुरु गोविन्द सिंह के प्रयासों से सिक्ख शक्ति उग्र सैनिक रूप में उभार कर आई। गुरु गोविन्द सिंह का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक शिष्य दक्षिण भारत का निवासी बैरागी सम्प्रदाय का साधु बना था।, जिसके नेतृत्व में 1708 से 1716 ई. स्वतंत्रता के लिए सिक्ख संघर्ष करते रहे। 1716 ई. में कैद कर उसके साथ घोर अपमानजनक व्यवहार किया तथा दिल्ली में अपने हाथों से स्वयं के बेटे की हत्या करने के लिए विवश किया, तद्न्तर गर्म लोहों की सलाखों से उसकी भी हत्या कर दी गई धीरे–धीरे खालसा जो एक सामरिक शक्ति बन गई थी, मुगलों की दमन नीति उसे नष्ट नहीं कर सकी, प्रत्युत दिल्ली सरकार की बढ़ती कमजोरी ने सिक्ख संगठन को सशक्त बनाया। मार्च, 1739 के नादिरशाह और अब्दाली के पहले तीन हमलों (1748–52 ई. के बीच) ने पंजाब पर मुगल आधिपत्य को बिल्कुल समाप्त कर दिया।

प्राप्त विवरण के अनुसार 1745 ई. के लगभग पंजाब के सिक्ख 100–100 व्यक्तियों के छोटे–छोटे दल में, अपने में से एक नेता के नेतृत्व में संगठित हुए। इसी तरह के विभिन्न दलों ने मिलकर 1748 ई. में दल खालसा के रूप में अपने को संगठित किया। उल्लेखनीय है कि 'खलस' या 'खलस' अरबी भाषा का शब्द है, जिसका तात्पर्य 'शुद्ध' या 'विशेष' अथवा खास है।

कनिंघम से जानकारी मिलती है कि दल खालसा के कुल 12 जत्थे (मिसलें) थे, जिनमें प्रमुख है, भांगी (भांग पीने वाले), निशानिया (यौद्धा वंशज), अहलुवालिया, रामगठिया (रामगढ़ के), नक्कई (नकाई स्थान के), कन्हैया, सुकरचकिया (सुकेरचुकिया गांव के), दल्लेहवाला (दलेवाला गांव के), फीजुलपुरिया (फैजुल्लापुरिया), एवं फुलकिया। इन मिसलों के नेताओं की समिति थी, जो समस्त दलों के कार्यों पर नियंत्रक शक्ति का काम करती थी। अमृतसर में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाला सरबत खालसा इनके मध्य एकता का सूत्र था। मिसलों के सरदार वर्ष में एक बार मिलते थे उसे 'गुरुमथा' (गुरुमता) कहा गया। हरिराम गुप्त दल खालसा की स्थापना को सिक्ख इतिहास की महत्वपूर्ण घटना मानते है। कहा गया है कि उपर्युक्त में से केवल पांये ही मिसलें शक्तिशाली थी, सुकरचकिया, कन्हैया, नकाई, अहलुवालिया व भांगी। धीरे–धीरे भांगी शक्तिशाली मिसल के रूप में उभर कर आई और अमृतसर, लाहौर, पश्चिमी पंजाब के कुछ इलाकों पर इसका अधिकार हो गया। हरबंस सिंह के अनुसार 16 अप्रैल , 1765 को सिक्खों ने पंजाब के कुछ भाग पर आधिपत्य कर लिया था और गुरु के सम्मान में इस अवसर पर सिक्के जारी किये। दल खालसा में 1753 ई. में शुरू हुई राखी प्रथा से इनकी वित्तीय स्थिति भी मजबूत हुई। राखी प्रथा में प्रत्येक गांव से उपज का 1/5 भाग लेकर दल खालसा उसके संरक्षण का दायित्व स्वीकार करता था। दूसरे शब्दों में इस पद्धति में न केवल स्वतंत्र सुरक्षा व्यवस्था का आविर्भाव हुआ अपितु राजस्व प्रबन्ध की नई तकनीक भी विकसित हुई।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि दलों में परस्पर सौहार्द था और पंजाब में पूरी तरह शान्ति थी। काफी समय तक अराजकत की स्थिति बनी रही और ऐसे नेतृत्व की अपेक्षा थी, जो समस्त दलों में एकता ला सके। कहा जा सकता है कि परस्पर मिसलों के विवादों ने रणजीतसिंह के उत्कर्ष का रास्ता बनाया।

4.0 रणजीतसिंह :

सुकरचकिया मिसल के नेता महासिंह के यहां 13 नवम्बर, 1780 को रणजीतसिंह का जन्म हुआ। पेने ने लिखा है कि , ''उसके भाई फागन सिंह एवं दौलासिंह ने उसे शिक्षित बनाने का पूरा प्रयास किया, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। यद्यपि उसे खेलकूद तथा युद्ध कला में काफी रूचि थी जिसके आधार पर उसका भावी जीवन बना।'' बचपन में ही उसके पिता ने रणजीतसिंह की सगाई जयसिंह कन्हैया की पोती से कर दी थी। अपने पुत्र विहीन पिता की मृत्यु पर यह लड़की कन्हैया मिसल के प्रदेशों की शासक बन गई। अपनी पत्नी के माध्यम से रणजीतसिंह को कन्हैया मिसल के सभी प्रदेश आसानी से मिल गये। लगभग 12 वर्ष की अवस्था में रणजीतसिंह के पिता का निधन हो गया। प्रारम्भ में अपनी सास सदाकौर के निर्देशानुसार उसे कार्य करना पड़ा। अहमदशाह अब्दाली का पोता 1793 में काबुल का शासक बना था उसने 1796 ई. में पंजाब पर आक्रमण कर दिया। संयोग से जमानशाह को आन्तरिक विद्रोहों से निपटने हेतु वापस लौटना पड़ा।

4.1 लाहौर पर अधिकार :

अगले वर्ष सिक्खों को सजा देने हेतु उसने पुनः हमला किया। इस समय सिक्खों का नेतृत्व रणजीतसिंह के हाथों में था। सिक्खों ने अफगान सेना को भारी आघत पहुँचाया और लाहौर तक पीछे खदेड़ा गया, इस प्रकार अफगानों द्वारा हस्तगत प्रदेश वापस हासिल कर लिए गये। कनिंघम लिखते है, ''वह लाहौर पर अधिकार प्राप्त करना चाहता, जिसे शक्ति का केन्द्र समझा जाता था, झेलम बढ़ी हुई थी और दुर्रानीशाह अपने भारी तोपखाने को उस पार ले जाने में असमर्थ था, अतः उसने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रणजीतसिंह को सन्देश भेजा कि उन तोपों को भिजवाने में मदद करने पर शाह उसकी सेवा को बहुत महत्त्व देना रणजीतसिंह ने तोपें भेज दी उसे पंजाब की राजधानी के सम्बन्ध में शाही प्रतिनिधि मान लिया गया।'' खुशवंत सिंह कनिंघम, एन.के.सिन्हा व अब्दुल लतीफ के विचारों से सहमत नहीं है। उनकी मान्यता है कि, ''अप्रैल, 1800 ई. में कैलिंग द्वारा लिखे गये पत्रों से स्पष्ट होता है कि जमानशाह ने रणजीतसिंह को भेंट लाहौर के अधिकार के बाद भेजी थी एवं तोपों को लौटाने का इससे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था। इन पत्रों के आने से पहले ही रणजीतसिंह लाहौर पर आक्रमण कर चुका था।''

रणजीतसिंह ने अपने प्रभाव को बढ़ाने हेतु तीन कार्य किये। छोटी–छोटी मिसलों का सहयोग प्राप्त करने हेतु उसने कई शादियां की अर्थात् वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना द्वारा अपनी सत्ता को सुदृढ़ बनाया गया। दूसरे, कुछ मिसलों के नेताओं से मैत्री सम्बन्ध बनाये। अहलुवालिया मिसल का नेता फतेहसिंह रणजीतसिंह का मित्र था। एन.के.सिन्हा के अनुसार, ''रणजीत का उत्थान राजनैतिक मैत्री एवं विवाह सम्बन्धों की सहायता से हुआ।'' अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने हेतु उसने प्रादेशिक विस्तार की नीति अपनाई। लाहौर विजय से सांगी, रामगढ़िया, जैसी मिसलों के नेता रणजीतसिंह के विरोधी हो गये थे और लाहौर के पूर्व भसीन गांव में विरोधी दल की सेना भी एकत्र हुई। लेकिन युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व ही विरोधी गुट में परस्पर विवाद हो और गुलाबसिंह भांगी के मर जाने से संघर्ष टल गया। तत्कालीन छोटे–छोटे राज्यों के आपसी द्वेष का रणजीत ने लाभ उठाया तथा 1805 ई. तक जम्मू, नरवल, मिरोवल, अकलगढ़, पिंडी, भाटिया, धन्नी, फागवाड़ा, जिंद, कर्ला, कठिया आदि को उसने अपने अधीन बनाया। 1806 से 1809 ई. के मध्य कसूर, पठानकोट, जसरोटा, छम्ब, बसोली, शेखपुरा, गुजरात (चिनाब किनारे स्थित) तथा कांगड़ा पर उसका कब्जा हो गया। रणजीतसिंह के बढ़ते प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए 1804–1805 ई में जसवंतराव होल्कर ने लार्ड लेक के आक्रमण के विरूद्ध उससे सहयोग चाहा। उसके साथ सम्पूर्ण सेना भी थी। दूसरी और जनरल लेक ने रणजीतसिंह को सूचित करवाया कि उसकी सहायता ब्रिटिश शक्ति के लिए चुनौती माना जायेगा। रणजीतसिंह होल्कर को सहयोग इस शर्त पर करने को तत्पर हुआ कि पहले वह पठानों को दबाने में सहयोग करे, किन्तु अन्त में, होल्कर एवं अंग्रेजों के मध्य सन्धि हो गई और समस्या से रणजीतसिंह को राहत मिली। रणजीतसिंह की विस्तार योजना से सि–सतलज राज्य भयभीत थे। सिस–सतलज राज्यों (सतलज के इस पार के) पर रणजीतसिंह के आक्रमण की सम्भावना ने अंग्रेजों के हस्तक्षेप को अवश्यम्भावी बना दिया। 1806–07 ई. में रणजीतसिंह जींद, कैथल एवं नाभा के राजाओं का प्रतिनिधि मण्डल दिल्ली स्थित रेजीडेंट मिस्टर सेटन से रणजीतसिंह के आक्रमण की सम्भावना के बम में मिला।

अंग्रेज सामरिक व कूटनीतिक कारणों से यह मानने लगे कि रणजीतसिंह के पूर्वी फैलाव को रोका जाये। लेकिन साम्राज्यवादी शासन तुर्कों और फारसियों के साथ मिलकर फ्रांसिसियों के भारत आक्रमण की सम्भावना के आकलन में व्यस्त था एवं नेपोलियन की 1807 में रूस के जार के साथ सम्पन्न सन्धि पर भी उसकी दृष्टि थी। ऐसी स्थिति में उत्तर–पश्चिम की शक्ति को शत्रु बना लेना औपनिवेशिक सरकार के लिए हानिकारक होता। कूटनीति अपनाते हुए लार्ड मिंटो (1807–1813 ई.) ने मेटकॉफ को सिक्ख राना के पास, परोक्षतः फ्रांसीसियों द्वारा फारस की और से आक्रमण के विरूद्ध आक्रमणात्मक एवं प्रतिरक्षात्मक सन्धि की बातचीत करने हेतु भेजा। वास्तविक उद्देश्य रणजीतसिंह के पूर्वी और प्रसार पर पाबन्दी लगाना था।

जनवरी, 1809 में इंग्लैण्ड एवं टर्की के बीच डार्डेनल्स की सन्धि से बदलाव आया तथा फारस के साथ ब्रिटेन के सम्बन्ध सुधर गये। अब साम्राज्यवादी शासन का उद्देश्य केवल रणजीतसिंह को सतलज के पार बढ़ने से रोकना हो गया। 3 मई, 1809 को मेटकॉफ की घोषणा के प्रथम आर्टिकल में कहा गया कि मालवा (पंजाब स्थिति) और सरहिन्द क्षेत्र के ब्रिटिश संरक्षण में आ जाने से सन्धि की शर्तो के अनुरूप वे भविष्य में रणजीतसिंह के आतंक एवं प्रभाव से मुक्त रखे जायेंगे। यह प्रावधान इंगित करता है कि अंग्रेजों ने सतलज केपूर्वी तट के सरदारों को संरक्षणार्थ नहीं प्रत्युत रणजीतसिंह को सतजल के पूर्वी तट की और न बढ़ने के लिए विवश कर दिया था। यद्यपि रणजीतसिंह सतलज के पूर्वी तट पर अंग्रेजों के प्रभुत्व में वृद्धि का विरोधी था, लेकिन वह इस स्थिति में नहीं था कि अंग्रेजों से शत्रुता रखे। सन्धि के अतिरिक्त उसके समक्ष कोई उपाय शेष न था।

4.2 अमृतसर सन्धि (25 अप्रैल, 1809) :

ब्रिटिश सरकार की और से सी.टी. मेटकॉफ एवं रणजीतसिंह ने 25 अप्रैल, 1809 को अमृतसर में सन्धि पर हस्ताक्षर किये। जिसके अनुसार सतजल के उत्तर स्थित राजा के क्षेत्र व प्रजा से ब्रिटिश सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं रहा। रणजीतसिंह ने सतजल पार के राज्यों पर ब्रिटिश संरक्षण को स्वीकार किया और उन पर आक्रमण न करने का वचन दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दोनों पक्षों ने परस्पर मैत्री बनाये रखने का निश्चय किया। अंग्रेजों ने रणजीतसिंह की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की। कोई भी पक्ष सतलज के किनारे अधिक सेना नहीं रख सकेगा, लेकिन सतलज पार के 45 परगनों में (जो रणजीतसिंह के आधिपत्य में थे) आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था हेतु सेना रखने के लिए रणजीतसिंह अधिकृत था। उत्तर–पश्चिम में प्रसार की सम्भावनाएं निहित थी। यद्यपि सतलज तक अंग्रेजों का पहुंच जाना पंजाब के लिए अवश्य घातक सिद्ध हुआ।

4.3 राज्य विस्तार :

अमृतसर सन्धि ने रणजीतसिंह के लिए सतलज पार का मार्ग अवरूद्ध कर दिया था, अब उत्तर एवं उत्तर–पश्चिम की और बढ़ने का ही विकल्प शेष था इस दृष्टि से 1809 में कांगड़ा पर कब्जा किया और 1815 में अफगानों के साथ हुए संघर्ष में वह सुल रहा। सिक्खों का अटक पर भी अधिकार हो गया। मुल्तान जीतने की इच्छा बहुत पहले से थी लेकिन 1818 ई. में ही उसे हासिल किया जा सका। कश्मीर के लिए 1819 में अभियान शुरू किया गया तथा अफगान सूबेदार को पराजित कर उसे सिक्ख राज्य में शामिल किया। कश्मीर विजय रणजीतसिंह की विशेष उपलब्धि मानी जाती है। अब उसकी सीमाएं तिब्बत एवं चीन से जा टकराई।

डेरागाजी खां, डेरा इस्माइल खां तथा लेह पर 1820 व 1824 के मध्य उसका आधिपत्य हो गया था। 1823 ई.` सिक्ख सेना ने पेशावर पर आक्रमण किया। जवाबी हमले में अफगानों ने गहरा आघात किया लेकिन विजय रणजीतसिंह को ही मिली। इस प्रकार 1824 तक सिन्धु घाटी का एक बड़ा भाग उसके अधिकार में था। 27 जून, 1839 को रणजीतसिंह का निधन हो गया।

4.4 सिक्ख–आंग्ल सम्बन्ध (1809–1839 ई.) :

अमृतसर सन्धि (1809–1839 ई.) से रणजीतसिंह की मृत्युपर्यन्त अवधि के आंग्ल–सिक्ख सम्बन्धों को, शुवन्त सिंह ने तीन प्रकालों में विभक्त किया है। प्रथम 1809 से 1812, दूसरा 1812 से 1831 से 1839 ई. तक। प्रथम दौर में मोटे रूप में सद्भावनाएं बनी रहीं। सतलज के पश्चिम में महाराज की राज्य विस्तार योजना का प्रतिरोध नहीं किया जाना ही इसका आधार था। औपनिवेशिक शासन की गतिविधियों से सशंकित रणजीतसिंह ने फिल्लोर में एक छोटे किले का निर्माण करवाया था, जिससे अंग्रेजों की सैन्य कार्यवाही पर नजर रखी जा सके। यह भी कहा गया है कि अमीर खाँ, बेमसमरू तथा होल्कर से गुप्त रूप से बातचीत भी की जाती रही। 1812 ई. से सम्बन्धों में कुछ सुधारवादी दृष्टिकोण दिखाई पड़ा, क्योंकि 1815 ई. में महारज ने नेपाल के विरूद्ध अंग्रेजों की सहायता करने की इच्छा व्यक्त की। लेकिन समय गुजरने के साथ सम्बन्धों की सहजता कम हुई, इसका कारण यह रहा कि अंग्रेज रणजीत सिंह को नियंत्रण में रखने के इच्छुक सदैव बने रहे। सिस–सतलज राज्यों की और विस्तार की सम्भावना खत्म होने से महाराज ने सिन्ध की और बढ़ने के बारे में सोचना शुरू किया।

सिन्ध के अमीरों की निर्बल सैनय व्यवस्था को देखते हुए महाराज उस और प्रसार की कोशिश में था लेकिन अंग्रेज उससे दो कदम आगे थे। मध्य एशिया के बाजारों को नियंत्रित करने तथा सिन्ध में नौ संचालन द्वारा व्यापार की सम्भावनाओं को आधार बनाकर अंग्रेजों ने 1809 ई. में सिन्ध के अमीरों से सन्धि की, जिसका 1820 ई. में नवीनीकरण किया गया। रणजीतसिंह समुद्र तट पर अधिकार को उत्सुक था और अंग्रेज इसके लिए तैयार न थे।

पंजाब को चारों और से घेर लेने हेतु सिन्ध पर अधिकार अंग्रेज नीति का अंग था और पंजाब पर अधिकार अंग्रेजों की दूरगामी योजना का हिस्सा था। इस परिप्रेक्ष्य में सिन्ध में दोनों के हित टकराने लगे। यह भी कहा गया कि सिन्ध को हस्तगत किये जाने सेब्रिटिश सीमा अफगानिस्तान से जा मिलती और वहां से रूस के बढ़ते प्रभाव को रोका जाना सम्भव माना गया।

गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक (1828 से 1835 ई.) ने रणजीतसिंह से मिलने के लिए कैप्टिनबर्न्स को 1831 ई. में भेजा, इंग्लैण्ड नरेश विलियम चतुर्थ की और से भेजे गये चार घोड़े एवं एक बग्गी भी उपहार में दी जानी थी। जानबूझ कर बर्न्स को सिन्ध के मार्ग से भेजा गया। रणजीतसिंह से बिना युद्ध किये सिन्ध को प्रभाव में लेने और आगे चलकर उस पर कब्जा करने की योजना का यह एक भाग था। यद्यपि बर्न्स को सिन्ध की और से भेजना सन्धि की भावना के बिल्कुल विपरीत था।

सिन्ध में शिकारपुर व्यापार का केन्द्र था जहां से कन्धार पर आक्रमण किया जाना आसान होता, रणजीतसिंह ने शिकारपुर को कब्जे में लेने के उद्देश्य से सेना भेजी, अंग्रेजों ने भी लुधियाना से शिकारपुर की और से सेना रवानी की। अन्ततः

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रणजीतसिंह ने अपनी सेनाएं वापस बुलाई। इस अपमान से सिक्ख सरदार बहुत क्रुद्ध हुए थे, परन्तु महाराज ने आंग्ल–मराठा संघर्ष की याद दिलाकर उन्हें शानत किया।

जैसा पूर्व में उल्लेख किया गया है कि अंग्रेजों की पंजाब जीतने की दूरगामी योजना थी, इसी योजना के तहत लाहौर से मात्र 40 मील दूर फिरोजपुर पर 1835 ई. में अधिकार कर लिया और 1838 ई. में इसे एक कण्टोनमैट में बदल दिया गया। रणजीतसिंह बहुत नाराज हुआ, लेकिन अंग्रेज कहां सुनने वाले थे। डॉ. एन.के. सिन्हा की धारणा है कि अंग्रेजों के प्रति नीति में रणजीतसिंह अपनी सबसे खराब स्थिति में दिखाई पड़ता है। उसने कभी बहादुरी और साहस से काम नहीं लिया। उसने सदैव ढिलमिल नीति अपनाई और वह संकोच में रहा। दरअसल अंग्रेजों ने महाराज को न केवल सैन्य–शक्ति के आधार पर नियंत्रण में रखा अपितु व्यक्तिगत रूप से भी दबाये रखा। विलियम बैंटिक स्वयं पर नाम के स्थान पर रणजीतसिंह से मिला तथा मैत्री सम्बन्ध बनाये, दूसरी और सिन्ध में अंग्रेजों की योजना को गुप्त रखा गया। जब रूपरसम्मेलन में गवर्नर जनरल के साथ महाराज व्यस्त था उसी समय कर्नल पोटिंगर को सिन्ध के अमीरों से व्यापारिक समझौते हेतु भेजा गया एवं 1832 ई. में अमीरों के साथ व्यापारिक सन्धि की। इस अवसर पर भी रणजीतसिंह को कड़वी घूंट पीनी पड़ी।

4.5 रणजीतसिंह का शासन प्रबन्ध :

लेपेल ग्रीफिन ने अपने ग्रंथ 'रणजीतसिंह' ने ठीक ही कहा है कि, ''राज्य करना एक कला है, जो कि बिना विशेष प्रशिक्षण के अत्यन्त योग्यता वाले व्यक्ति ही कार्यन्वित कर सकते है। रणजीतसिंह की गणना ऐसे ही योग्य व्यक्तियों में हो सकती है। उसने समयानुकूल एक उत्तम प्रशासन का निर्माण किया।'' महाराज ने खालसा के नाम से शासन संचालित किया था, अतः उसकी सरकार 'खालसा सरकार' कहलाई। यद्यपि महाराज निरंकुश शासक था एवं समस्त प्रशासन की धुरी भी, यही कारण था कि उसने गुरुमत (प्रजातान्त्रिक सिक्ख व्यवस्था) को सदैव हतोत्साहित किया गया। सिक्ख सामन्तों पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से डोगरा सरदारों एवं मुसलमानों को उच्च पदों पर लगाया गया। जहां तक उसके मंत्रियों का सम्बन्ध है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद मुख्यमंत्री का था, ध्यानसिंह को यह दायित्व सौपा गया। विदेशमंत्री जैसे महत्त्व के पद पर फकीर अजीजुद्दीन की नियुक्ति की गई। अंग्रेजों से मैत्री सम्बन्ध बनाये जाने में अजीजुद्दीन का विशेष योगदान रहा। रक्षामंत्री या सेनापति जैसे विशिष्ट पद पर दीवान मोहकमचन्द, मिश्र दीवानचन्द तथा हरिसिंह नलवा ने कार्य किया था। 'सदर–ए–ड्योढ़ी' जैसा पद सम्भवतः व्यक्तिगत सचिव जैसा था जिस पर निकट सम्पर्क वाला व्यक्ति ही रहा। डोगरे सामन्तों मे से राज की पदवी वाला गुलाबसिंह छोटी टुकड़ी का सरदार था, राजौरी के उपद्रवी मुसलमान सरदार को पकड़वाने में उसकी भूमिका रही थी। ध्यान सिंह एवं सुचेता सिंह (दोनों गुलाब सिंह के भाई थे) को भी राजा की उपाधि दी गई।

केन्द्र में 12 विभागों की जानकारी मिलती है, उनमें महत्त्वपूर्ण – 'दफ्तर–ए–अबवाब–उलमाल (भूराजस्व एवं अन्य आय से सम्बन्धित), 'दफ्तर–ए–तोजिहात' (राज परिवार के व्यय), 'दफ्तर–ए–मवाजाब' (सैनिक व असैनिककर्मियों के वेतन सम्बन्धी कार्य) एवं 'दफ्तर–ए–राजनामचा खर्च' (प्रतिदिन के व्यय विवरण) थे।

4.5.1 प्रान्तीय शासन :

लगभग एक लाख चालीस हजार वर्ग मील क्षेत्र में फैले साम्राज्य को महाराज ने चार प्रान्तों में विभक्त किया। कश्मीर (जन्नत–ए–नाजिर), मुल्तान (दारूल अमन,) पेशावर एवं लाहौर। इसके अतिरिक्त पहाड़ी प्रदेशों के सामन्त महाराज को प्रतिवर्ष कर देते थे। कुछ जागीरदारों को रणजीतसिंह ने प्रशासनिक अधिकार भी प्रदान किये।

प्रत्येक प्रान्त 'सूबा' कहा गया जो परगनों में विभक्त था, परगने तालुकों में तथा प्रत्येक तालुका मौजों में बंटा था जो 50 से 400 की संख्या में होते थे। सूबे का प्रमुख अधिकारी 'नाजिम' कहा गया। इस पद पर योग्य एवं विश्वसनीय व्यक्ति ही लगाये जाते थे। नाजिम अपने क्षेत्र का न्यायाधीश, खजाँजी तथा लेखाधिकारी भी था। उसके अधीन कई करदार (कारदार) थे। भूराजस्व वसूली हेतु करदार, मुकद्दम व पटवारी नियुक्त किये गये।

प्रान्तीय विभाजन के क्रम में डॉ. सिन्हा का विचार है कि प्रदेश प्रान्तों में विभक्त न होकर जिलों में विभक्त था। जिलों का प्रशासन तीन तरह के लोगों द्वारा निष्पादित किया जाता था। प्रथम केन्द्र द्वारा नियुक्त करदार द्वारा संचालित जिले, दूसरे स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा प्रशासित, जैसे मुल्तान के दीवान सावनमल को पैतृक आधाार पर कार्य सौपा गया। इस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तरह के अधिकारी स्वतं रहकर वार्षिक कर देते थे। तीसरे प्रकार के सैनिक अधिकारी थे, जिन्हें जमींदारी प्रदान कर दी गई थी, जिसके बदले आवश्यकतानुसार सैनिक मुहैया करवाते थे।''

4.6 न्यायिक व्यवस्था :

रणजीतसिंह के राज्य में लिखित कानून अथवा विधान नहीं था। परम्पराओं एवं धार्मिक मान्यताओं के आधार पर निर्णय की व्यवस्था थी। प्रत्येक जाति को उसकी धार्मिक मान्यताओं के आधार पर न्याय प्रदान किया जाता था। मुसलमानों के न्याय हेतु काजियों को नियुक्त किया गया। राज्यमें पांच प्रकार की अदालतो की जानकारी मिलती है –

- पंचायत
- कारदार अदालत
- नाजिम अदालत
- अदालत–उल–आला या केन्द्रीय अदालत जिसका कार्यालय लाहौर में था।
- महाराज की अन्तिम अदालत।

अदालत –उल–आला की अपील महाराज के यहां होती थी। रणजीतसिंह की न्याय प्रक्रिया में काफी रूचि थी। जागीरों में जागीरदार नय प्रदान करते थे। सजा अधिक कठोर नहीं थी। पेशवर जैसे सीमान्त इलाके में फांसी की सजा के प्रावधान थे। स्ट्रीन बैक ने व्यक्त किया है कि ''शायद ही कोई अपराध हो जिसका दण्ड, आर्थिक दण्ड के रूप में न बदला जा सके।''

4.7 भूराजस्व :

राज्य की आय का प्रमुख स्रोत भूराजस्व था। कुल 3 करोड़ प्राप्तियों में 2 करोड़ लगान के शामिल थे। पूरे वर्ष की उपज पर 2/5 से 1/3 तक लगान वसूल किया जाता था। मुगलकालीन भूराजस्व की 'बटाई' प्रथा 1823 ई. तक प्रभावी रही। इस प्रणाली में कर वस्तु के रूप में लिया जाता था। दूसरी 'कनकूत' व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि के परिमापन द्वारा क्षेत्र के आधार पर लगान निर्धारण किया जाता था, जो 1824 से 1834 ई. तक प्रचलित रही। लॉरेंस की मान्यता है कि विभिन्न प्रकार की भूमि पर पृथक्–पृथक कर लगाया जाता था। उपज के अनुसार भूमि तीन भागों में वर्गीकृत थी, उपजाऊ मध्यवर्ती तथा तीसरी निम्न श्रेणी की। लॉरेंस के अनुसार उपजाऊ, मध्यवर्ती तथा तिसरी निम्न श्रेणी। लॉरेंस के अनुसार उपजाऊ, भूमि उपज का 2/3 भाग, मध्यवर्ती पर 1/4 एवं निम्न श्रेणी पर 1/5 भाग लगान रूप में वसूल किया जाता था। इस सम्बन्ध में कनिंघम ने लिखा है 'वे भूमि से अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त करते थे जो सरलता से मिल जाता था, इसी प्रकार वे व्यापारियों से वह अधिकतम राशि लेते थे जिसे देकर भी व्यापारी स्वयं को अन्याय से पीडित महसूस नहीं करता था, उन्होंने खुली लूटपाट को एकदम समाप्त कर दिया था। सिक्ख किसानों को बहूत साधारण–सा कर देना पड़ता था, किसी भी स्थानीय अधिकारी में खाला के किसी सदस्य को सताने का साहस नहीं था।''

4.8 सेना प्रबन्ध :

कनिंघम जानकारी देता है कि ''रणजीतसिंह ने स्वयं कहा था कि 1805 ई में वे लार्ड लेक की सेना का क्रम व अनुशासन देखने के लिए गये थे और यह भी ज्ञात तथ्य है कि 1809 में उन्होंने मि मेटकॉफ के साथ रक्षकों के रूप में छोटी–सी ब्रिटिश टुकड़ी की बड़ी प्रशंसा की थी जिसने क्रुद्ध अकालिजयों के एक अचानक धावे को विफल कर दिया था।'' वस्तुतः रणजीतसिंह बढ़ती अंग्रेजी शक्ति से भली–भांति परिचित थे। कई राज्य अंग्रेजी साम्राज्य में विलय होते उन्होंने देखे थे इसलिए उन्होंने शक्तिशाली सेना की आवश्यकता अनुभव की। अंग्रेज सैन्य–व्यवस्था के अवलोकन के बाद ही पैदल सेना की स्थापना के महत्त्व को समझा एवं तोपखाने के विकास पर ध्यान दिया गया। उसकी सैन्य–व्यवस्था की तीन प्रमुख विशेषताएं थीं, आधुनिक ढंग से प्रशिक्षित घुड़सवार सेना दूसरी प्रशिक्षित विशाल पैदल सैना एवं तीसरा विकसित तोपखाना।

सेना को सामान्यतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। नियमित सेना या 'फौज–ए–खास' दूसरी अनियमित सेना अथवा 'फौज–ए–बेकवाय' फौज–ए–खास को तीन भागों में बांटा जा सकता है, घुड़सवार, पैदल एवं तोपखाना। नियमित सेना (फौज–ए–खास) के घुड़सवारों की संख्या फोर्सटर के अनुमान से 3 लाख तथा प्रिंसेप के अनुसार 59,000 थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नियमित घुड़सवारों को यूरोपीय ढंग से प्रशिक्षण हेतु 1822 ई में फ्रांसिसी सेनापति जीन–फ्रैक्वेस अलार्ड को नियुक्त किया। प्रशिक्षण कार्य 1805 ई. में शुरू कर दिया था लेकिन अलार्ड को 1822 ई में इस कार्य हेतु लगाया गया।

4.81 पैदल सेना :

ग्रीफिन लेपेल का विचार है कि 'प्रारम्भ में पैदल जवानों को किलों की रक्षा अथवा युद्धादि के समय स्त्रियों की रक्षा के लिए छोड़ा जाता था। यूरोपियन सेना के अवलोकन के बाद ही महाराज के विचारों में बदलाव आया और पैदल सेना के महत्त्व को समझा गया। इटालियन सेनापति वेन्तुरा को प्रशिक्षण हेतु नियुक्त किये जाने तथा कठोर परिश्रम और अच्छे वेतन का ही प्रतिफल था कि पैदल सेना अधिक सक्षम हो सकी। 900 सैनिकों की एक बटालियन का नेतृत्व कमांडेंट के हाथों में था। कमांडेंट को एडजुटेंट और मेजर सहयोग करते थे। बटालियन आठों कम्पनियों में विभक्त थी और एक कम्पनी में चार दस्ते और प्रत्येक दस्ते में 25 जवानों का प्रावधान था। एक दस्ते का नियंत्रक हवलदार और हवलदार के अधीन नायक, सूबेदार जमादार और सार्जेंट होते थे।

लार्ड आकलैण्ड ने 1838 ई. में पंजाब का दौरा करते समय रणजीतसिंह के घुड़सवारों को देखकर कहा था, ''संसार की सबसे सुन्दर फौज है।'' कुछ विद्वानों के अनुसार उसकी नियमित पैदल सेना में 40 हजार प्रशिक्षित जवान थे। स्मिथ के अनुसार खालसा सेना में कुल सैनिक 750000 थे।

4.8.2 तोपखाना :

रणजीतसिंह के तोपखाना प्रबन्ध के लिए 1839 ई में आस बोर्न ने लिखा था कि रणजीतसिंह को अपने तोपखाने की कुशलता पर और योग्यता पर बड़ा अभिमान था, जो उचित भी था, क्योंकि किसी भी स्थानीय शक्ति के पास इतना बड़ा अनुशासित तोपखाना नहीं था। 1819 ई. में तोपखाने के समुचित विकास हेतु 'दरोगा–ए–तोपखाने' की नियुक्ति की गई।

- तोपखाना व्यवस्था चार भागों में विभक्त थी –
- तोपखाना–ए–फीली (हाथियों का तोपखाना) इसमें मध्यम व भारी तोपें शामिल थीं।
- तोपखाना–ए–अस्पी (घोड़ो की तोपें) हल्की तोपों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।
- तोपखाना शुत्री या जम्बूरक (ऊँटों का तोपखाना) यह रेगिस्तानी इलाकों के लिए उपयोगी था।
- गयी तोपखाना (बैलों का तोपखाना) एक स्थान से दूसरे स्थान पर हल्की तोपों को ले जाने योग्य।

प्रारम्भ में तोपखाने को फ्रांसीसी जनरल कोर्ट तथा बाद में कर्नल गार्डनर ने संगठित किया। इस कार्य में ध्यान दिये जाने से ही उसे पदोन्नति मिली थी। प्राप्त विवरण के अनुसार 190 मध्यम स्तरीय तथा 122 बड़ी तोपें थी। स्टीन बैच के विवरणानुसार महाराज के पास 176 बन्दूकें थी और जानवरों पर रखकर प्रयोग की जाने वाली चक्करदार बन्दूकों की संख्या लगभग 370 थी।

4.8.3 सैनिक नीति का मूल्यांकन :

रणजीतसिंह के सैन्य प्रबन्ध पर विद्वानों ने काफी लिखा है। सम्भवतः इसके दो कारण रहे है, एक तो रणजीतसिंह की सैन्य–व्यवस्था ईर्ष्या योग्य थी, कई अंग्रेज अधिकारी एवं गवर्नर जनरल प्रशंसा किये बिना नहीं रह सके। दूसरे, उत्कृष्ट सैन्य प्रबन्ध के बावजूद आंग्ल–सिक्ख युद्धों में पंजाब की हार के कारणों को सैन्य–व्यवस्था में खोजने की कोशिश की गई। विद्वानों ने जिन कमियों की और ध्यान आकृष्ट किया है, उसका जिक्र करना युक्तिसंगत होगा।

जागीरदारों के आधिपत्य वाली सेना को अनियमित सेना कहा गया, जिसके उचित प्रशिक्षण की और जागीरदार ध्यान नहीं देते थे। न ही उन्हें घोड़े सही हालत में देखे गये।

महाराज ने युद्धों में व्यस्त रहने के कारण सैनिक अधिकारियों को अधिक महत्त्व दिया, सामान्य प्रशासन से सम्बद्ध लोग अपने को तिरस्कृत महसूस करते थे।

उनकी सेना में फ्रांसीसी, जर्मन, अमेरिकन, इटालियन, अंग्रेज, रूसी व स्पेनी लोगों को भर्ती किया गया। सामान्य भारतीय जवान विदेशियों से ईर्ष्या करते थे। उनका अधिक वेतन भी लोगो को खलता था। कर्नल फाक्स (अंग्रेज) को मार डाला

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गया और वेन्तुरा का घर लूट लिया गया। महाराज के जीवन के उत्तरार्द्ध काल में यूरोपीय सैनिक अवश्विसनीय हो गये थे। कुछ लोगों ने महाराज के उत्तराधिकारियों के साथ धोखा किया।

सैनिकों की लम्बी सेवाओं के लिए न तो पेंशन एवं न ही विधवाओं के लिए किसी तरह का कोई प्रावधान रहा जो अखरने वाला था।

रणजीतसिंह जैसा जादुई व्यक्तित्व ही भिन्न–भिन्न राष्ट्रीय वाले सैनिकों को नियंत्रण में रख सकता था उसके उत्तराधिकारियों के लिए यह सम्भव न था।

उपर्युक्त तथ्यों को आधुनिक विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है। सर चार्ल्स गौफ ने कहा था, ''सिक्ख सेना ने एक अनुशासन की छाया में युद्ध किया और उन्होंने वह टक्कर दी जो अभी तक किसी सेना ने न दी थी। और वे ऐसा इसलिए कर सके, क्योंकि रणजीतसिंह ने अपनी विधि से उन्हें प्रशिक्षण दिया था।''

डॉ. फौजासिंह की धारणा है कि सिक्खों की पराजय पश्चिमी प्रशिक्षण के फलस्वरूप नहीं अपितु दोषपूर्ण सैनिक नेतृत्व से हुई थी। जहां तक असैनिक अधिकारियों के महत्त्व का प्रश्न है महाराज ने समय की मांग के अनुरूप कार्य किया। यदि अयोग्य उत्तराधिकारी नियंत्रण बनाये नहीं रख सके तो इसमें रणजीतसिंह का दोष नहीं था।

साथ ही विदेशियों को योग्यता के आधार पर रखा गया और उन्हें पंजाब में रहने के लिए पाबन्द किया गया। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि 1832 ई. के बाद रणजीतसिंह ने विदेशियों की सेना में नियुक्ति बंद कर दी थी।

4.9 इतिहास में रणजीत सिंह का स्थान :

इतिहास में रणजीत सिंह के महत्त्व का जिक्र कनिंघम के शब्दों में इस प्रकार कर सकते है, ''जिस समय रणजीत सिंह पंजाब के राजनीतिक रंगमंच पर प्रकट हुए, देश अनेक अस्थायी मिसलों में विभाजित था, उनका भाग्य सरदारों की कमजोरियों व दोषों पर त्रस्त किए हुए थे, और वे अंग्रेजों के आगे घुटने टेकने की स्थिति तक आ गये थे, उन्होंने असंख्य छोटी–छोटी रियासतों व जागीरों को एक संगठित साम्राज्य का रूप दिया और सबल अंग्रेज शासकों को कभी भी ऐसा अवसर नहीं दिया कि वे उनकी व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का बहाना ढूंढ सकें।'' 27 जून, 1839 में रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई। विशाल खालसा सेना के संगठन के कारण उनकी योग्यता की सराहना की जाती है। पेने ने कहा है कि ब्रिटिश सेना ने ऐसे शत्रु के हाथों मुंह की खाई जिस पर खालसा सेना ने एक से अधिक बार निर्णायक विजय प्राप्त की थी। रणजीत सिंह के लिए यह भी कहा जाता है कि वह इस युग का प्रथम भारतीय शासक था जिसने सर्वथा धर्म निरपेक्ष शासन की स्थापना की। उसकी जीवनी लेखक लेपेल ग्रिफिन (रणजीत सिंह) ने लिखा है, ''उन्होंने अपनी सैनिक प्रतिभा से विजित प्रदेश प इच्छा–शक्ति औ उस योग्यता के साथ राज्य किया जिसने उन्हें सदी के राजनीतिज्ञों की अगली पंक्ति में बैठा दिया। फ्रांसीसी यात्री विक्टर जैक्वीमों ने उसे एक असाधारण पुरुष, छोटे पैमाने पर एक बोनापार्ट कहा है।''

4.10 प्रथम आंग्ल–सिक्ख युद्ध (1845–46) : कारण

यह तो रणजीत सिंह के समय में ही प्रतीत होने लगा था कि अंग्रेज सिक्खों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करेंगे। लेकिन इतनी सुसंगठित सैन्य–शक्ति वाले साम्राज्य का बहुत ही अल्पसमय में धराशायी होना आश्चर्यजनक अवश्य लगता है। हम पिछली घटनाओं, सिक्ख सरदारों की गतिविधियों, सैन्य संगठन, अंग्रेजी नीतियों तथा असैनिक कार्मिकों और योग्य उत्तराधिकारियों के अभाव में सिक्ख साम्राज्य के भविष्य का कुछ आकलन करने की स्थिति में अवश्य थे। प्रथम सिक्ख युद्ध की पृष्ठभूमि को कुछ शीर्षकों में सहज ही विभाजित कर सकते है।

4.10.1 सिक्ख सरदारों का आपसी द्वेष :

महाराज की मृत्यु के तत्काल बाद ही लाहौर में खुशामदी, धोखेबाजी, षड्यंत्र एवं कुचक्रों का सिलसिला शुरू हो गया था। तात्कालीन तीन प्रमुख दलों मे पहले दल का मुखिया सिन्धनवालिया था। दूसरे थे, डोगरा राजपूत सरदार जिनका प्रधान गुलाबसिंह बना हुआ था। तीसरी श्रेणी मे बाहर से आये सैनिक अधिकारियों को शामिल करना होगा, जिसका नेतृत्व लालसिंह के हाथों में था। कनिंघम की धारणा है कि रणजीत सिंह ने सिक्ख सरदारों पर नियंत्रण रखने के लिए डोगरा राजपूतों तथा बाहर से आये सेनापतियों को प्रोत्साहन दिया। उसकी मृत्यु के बाद तीनों दलों के स्थिति को शोचनीय बना दिया। सिक्ख सरदार एक दूसरे का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विरोध उनके बढ़ते प्रभाव को समाप्त करने के लिए ही कररहे थे। योग्य नेतृत्व के अभाव में पारस्परिक द्वेष ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि एक दूसरे की हत्याएं की जाने लगीं। परिणामतः योग्य एवं प्रभावी सिक्ख सरदारों के अभाव मे सेना एवं राज्य के सामान्य प्रशासन मे अराजकता फैल गई।

4.10.2 अयोग्य उत्तराधिकारी :

रणजीत सिंह का एक भी उत्तराधिकारी योग्य होता तो लाहौर राजधानी षड्यंत्रों, धोखेबाजी के जाल में न फंसती। महाराज के सात पुत्र थे, उनकी इच्छानुसार बड़ा लड़का खड़कसिंह राजा बना, दूसरे पुत्र शेर सिंह ने सत्ता के लिए अंग्रेजों से सहायता की कोशिश की, डोगरा सरदार भी उसके साथ थे। इसी दौरान नवम्बर, 1840 में खड़कसिंह की मृत्यु हो गई और उसके लड़के नौनिहाल सिंह की पित ा के दाह से लौटते समय रास्ते में एक दरवाजे के गिर जाने से मृत्यु हो गई। कुछ विद्वान इसे डोगरा सरदार गुलाबसिंह के षडयंत्र का ही परिणाम मानते है, क्योंकि नौनिहाल ने पिता के समय डोगरा सरदारों की बढ़ती शक्ति का विरोध किया था। सिंधनवालिया सरदार खड़कसिंह की विधवा चांदकौर को संरक्षिका और दूसरी गर्भवती नौनिहाल की विधवा के समर्थन में जुटे हुए थे। दूसरी और डोगरा सरदार विलासी शेरसिंह के समर्थक बने हुए थे। अवसर मिलते ही शेरसिंह ने सिक्ख सेना के सहयोग से 1841 ई. में लाहौर पर कब्जा कर लिया। उसके डोगरा सरदार समर्थक होने से दूसरे पक्ष ने विरोधी रूख अपनाया। 1843 ई. में शेरसिंह एवं उसके पुत्र की हत्या सिंधनवालिया सरदारों के इशारे पर हो गई और डोगरा सरदार ध्यानसिंह जो वजीर था, किसी षड्यंत्र का शिकार हो गया। अन्ततः ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह ने रणजीत सिंह की अन्य रानी के लड़के दिलीप सिंह को 15 सितम्बर, 1843 में पंजाब का राजा बनाया। उसकी माता जिन्दन के दिलीप सिंह की अभिभाविका (रीजेन्ट) नियुक्त किया।

4.10.3 पंजाब की राजनीति में अंग्रेजी हस्तक्षेप :

राजनीति में जो कुछ घटित हो रहा था उसे देखकर साम्राज्यवादी सरकार में कोई प्रतिक्रिया न हो क्या ऐसा सोचा जा सकता है लाहौर स्थित रेजीडेंट क्लार्क ने रानी जिन्दन, लालसिंह एवं तेजसिंह ने हीरासिंह के प्रभाव को समाप्त करने के लिए उसके सलाहकार पण्डित जलला एवं स्वयं हीरासिंह की 1844 में हत्या करवा दी थी। इतिहासकारों का मत है कि इन सब हत्याओं में षड्यंत्रकारी क्लार्क की योजना काम कर रही थी अब ऐसा प्रतीत होने लगा कि पंजाब की आन्तरिक स्थिति तथा सत्ता का संघर्ष स्वयं अंग्रेजों को हस्तक्षेप करने के लिए आमन्त्रित कर रहा था। एलनबरो (1842–44 ई.) जब गवर्नर जनरल बनकर आया ब्रिटिश सरकार का ध्यान पंजाब पर विशेष रूप से था। पंजाब पर आधिपत्य करने की इच्छा का बोध मिसेज हेनरी लॉरेन्स के पत्र से होता है, जिसमें उल्लेख था कि, "अगले ठंड के मौसम में बहुत समय से रूका हुआ पंजाब जीतने का प्रश्न हल हो जायेगा।" स्पष्ट है कि रणजीतसिंह के बाद से ही अंग्रेज पंजाब विजय को उत्सुक थे और राजनीतिक षड्यंत्रों को बढ़ावा दे रहे थे। उन्हें उस अवसर का इन्तजार था, जबकि सिक्ख सरदारों के मतभेद इतने उग्र हो जायें कि अंग्रेज हस्तक्षेप हो, आवश्यकता करार दिया जा सके। पंजाब विजय से ही सम्पूर्ण भारत पर साम्राज्य स्थापना का औपनिवेशिक सरकार का लक्ष्य पूर्ण हो सकता था, दूसरे अंग्रेज पंजाब को प्राकृतिक सीमा के रूप में उपयोग करने के इच्छुक थे।

4.10.4 सिक्ख सेना एवं राजनीतिक गतिविधियां :

राजनीति में सिक्ख सेना का हस्तक्षेप 1841 ई. में शुरू हुआ जब 1200 सेना के साथ क्लार्क ने सतलज सीमा पर करने की योजना बनाई, घबराकर शेरसिंह ने सैनिक अधिकारियों से चर्चा की। इसके बाद सैनिक अधिकारी राज्य की प्रत्येक गतिविधि में भाग लेने लगे। हरिराम गुप्ता लिखते है, "सिक्ख सेना ने अपने आपको सर्वोच्च सत्ताधारी तथा जनता का सच्चा प्रतिनिधि समझ लिया और राज्य का कार्य संचालन आरम्भ किया।" राजनीतिक निर्णय भी सेना की छत्रछाया में लिये जाने लगे और दबाव तथा रिश्वत जैसे हथकण्डों से निर्णय बदलने लगे।

कई विद्वानों ने इस बात का जिक्र किया है कि रानी जिन्दन, लालसिंह, तेजसिंह तथा गुलाबसिंह ने सेना के चंगुल से मुक्त होने के लिए यह निश्चित किया कि सेना को किसी मोर्चे पर लगा दिया जाये। सेना को प्रशासन से मुक्त करने का यही सरल उपाय लगा। लालसिंह एवं उसके उसाये जाने से रानी जिन्दन यह सोचने लगी कि सिक्ख एवं अंग्रेज सेना के संघर्ष का कोई भी परिणाम रहे, लेकिन दोनों ही परिस्थितियों में उन्हें लाभ होगा। पराजय से सिक्ख सेना की शक्ति क्षीण होगी और रानीपर दबाव डालने की भविष्य में कोशिश बन्द हो जायेगी। यदि जीत हुई तो उत्साहित सेना को साम्राज्य विस्तार में लगाया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जाना सहज होगा एवं प्रशासन में हस्तेप समाप्त हो जायेगा। विचारणीय है कि यह धारणा लाहौर दरबार में बनी हुई हो और अंग्रेज रेजीडेंट की पैनी नजरों से यह सब कुछ छिपा रह जाये, सम्भव न था। यदि यह कहा जाये तो अनुचित न होगा कि रेजीडेंट के खुराफाती मस्तिष्क की ही यह सब उपज हो, जैसा कि हार्डिंग द्वारा भेजे दूत मेजर ब्रोडफुट ने लाहौर के प्रमुख सरदारों को षड्यंत्र में फंसा लिया था। वे लोग अंग्रेजों से गुप्त रूप से पत्र–व्यवहार में लगे हुए थे। 1843–44 ई. में दूर–दूर तक यह बात फैल गई थी कि सतलज पर नावों का पुल बनाने के लिए अंग्रेज मुम्बई में नावें तैयार करवा रहे थे। कनिंघम ने सूचित किया है कि, ''सिक्ख सरकार को कुछ नहीं बताया गया परन्तु ये तैयारियां प्रतिरक्षात्मक नहीं बल्कि आक्रामक थी। अंग्रेज सेना 7–8 दिसम्बर, 1845 को मेरठ तथा अम्बाला से चलकर फिरोजपुर पहुंच गई थी।

कनिंघम ने तत्कालिन परिस्थितियों का गहन अध्ययन किया था वे लिखते है, ''लालासिंह और तेजसिंह चाहते थे कि ब्रिटिश सेना खालसा सेना की शक्ति के मद को चूर करके उसे बिखेर दे और अंग्रेज सरकार विजय प्राप्त कर लेने पर उनकी ब्रिटिश भक्ति के पुरस्कार मे उन्हें एक अधीनस्थ राज्य का वजीर या प्रधान सेनापति बना देगी।'' जहां अंग्रेज सेना एकत्र थी अर्थात सतलज पार सिक्ख सेना आक्रमण रखना चाहती थी लेकिन दोनों धोखेबाजो नेसेना को यह कह कर रोक दिया कि, ''सीधे गवर्नर जनरल को मारा जाये या कैद किया जाये तो खालसा कीर्ति में वृद्धि होगी।''

मुड़की व फिरोजपुर में 21 दिसम्बर, 1845 को सिक्ख सेना ने अंग्रेज सेना के आक्रमक को विफल कर दिया। लेकिन सोबराव के युद्ध में लालसिंह, तेजसिंह तथा गुलाम सिंह ने देश द्रोह का निकृष्टतम उदाहरण प्रस्तुत किया। सतलज पार करते समय पुल तोड़ दिया गया, जिससे खालसा सैनिक नदी में डूब कर मर गये और लाहौर पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया।

4.10.5 लाहौर की सन्धि (1846 ई.) :

दोनों सत्ताओं के मध्य 9 मार्च, 1846 को लाहौर की सन्धि हुई। सन्धि पर हस्ताक्षर करने हेतु दिलीपसिंह को गवर्नर जनरल के शिविर में लाया गया। सन्धि के प्रावधान इस प्रकार थे –

- सतलज नदी के दक्षिण का क्षेत्र जिस पर अंग्रेजों का भले ही आधिपत्य था उनका अधिकार होगा।
- सतलज व व्यास के बीच में जालन्ध दोआबों. पर भी अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया।

लाहौर दरबार पर डेढ़ करोड़ रूपये (पांच लाख पौण्ड) क्षतिपूर्ति रूप में लादे गये। पंजाब ने 50 लाख चुकाने का आश्वासन दिया। एक करोड के बदले हजारों एवं कश्मीर प्रदेश कम्पनी को सौपे गये। गुलाबसिंह ने 10 लाख पौण्ड देकर कश्मीर ले लिया था।

सिक्ख सेना को घटाकर 20, 000 पैदल और 12,000 घुड़सवार निश्चितकर दिये। 250 तोपें लेकर हार्डिंग्ज कलकत्ता लौट आये।

दिलीपसिंह को महाराज तथा मानसिंह को मंत्री माना गया। सर हेनरी लॉरेन्स प्रथम रेजीडेन्ट नियुक्त हुआ।

अंग्रेज सेना को सीमा प्रदेश अफगानिस्तान के लिए पंजाब होकर गुजरने की सुविधा दी गई।

11 मार्च, 1846 को एक पूरक सन्धि द्वारा दिलीपसिंह की सुरक्षार्थ अंग्रेज सेना रखे जाने का प्रावधान किया।

4.10.6 भैरोवाल की संधि :

सिक्ख सरदारों के अनुरोध पर 15 दिसम्बर, 1846 पंजाब एवं कम्पनी के मध्य नयी सन्धि हुई, जिसकी घोषणा 26 दिसम्बर को की गई। महाराज दिलीपसिंह के वयस्क होने तक शासन कार्य परिषद् को सौपा गया। अंग्रेज रेजीडेंट परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त हुआ एवं उसे परिषद के आठों सदस्यों के मनोनय का अधिकार दिया। दूसरे कम्पनी सेना पंजाब में रखने का निर्णय हुआ जिसके पक्ष में 22 लाख वार्षिक कम्पनी को दिया जाना था।

4.11 द्वितीय सिक्ख युद्ध :

पहले सिक्ख युद्ध में अंग्रेजों की विजय षड्यंत्र, देशद्रोह एवं विश्वासघात का प्रतिफल थी। इस पराजय से न केवल खालसा सेना एवं राज परिवार में असन्तोष रहा अपितु पंजाब के आम लोगों में भी भारी आक्रोश था। विशेष रूप से भैरोवाल सन्धि द्वारा स्थापित व्यवस्था स्थायी नहीं हो सकती थी। दूसरे युद्ध के बीज की गई सन्धियों में निहित थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.11.1 राजनीति अवस्था :

प्रथम युद्ध में सिक्ख अपने को पराजित नहीं मानते थे। पंजाब के सामन्तों को भावनाओं को कनिंघम ने इस प्रकार व्यक्त किया है, ''उनका उद्देश्य अंग्रेजों में अपनी बची–खुची सेना को बर्बाद करके सुलह करना नहीं था बल्कि विरोधियों की सेना के सामने अपनी सेना को इधर–उधर कर देना था। वे विजय द्वारा सहायक राज्यों की स्थापना का उद्देश्य रखते थे।'' महारीन जिन्दन को अपनी भूल का ही अहसास नहीं हुआ था, प्रत्युत वह चाहती थी कि अंग्रेज पंजाब में न रहें। अंग्रेज रेजीडेंट फ्रेडरिक करी (जान लॉरेंस के बाद) ने मुलतान विद्रोह को भड़काने का आरोप लगाकर रानी जिन्दन को शेखपुरे महल में नजरबंद करवा दिया,, पेंशन घटाकर 12 हजार कर दी गई और अन्त में बनारस भेज दिया गया। आम लोग इसे राष्ट्रीय अपमान तथा रानी के लड़के को सत्ताच्युत करने का एक प्रयास तथा राज्य बर्बादी के रूप में देखने लगे।

गुलाबसिंह को कश्मीर मिल गया था, परन्तु लालसिंह मंत्रित्वपद से सन्तुष्ट नहीं था। अंग्रेज रेजीडेंट ने केवल रानी व दिलीपसिंह के साथ दुर्व्यवहार किया, बल्कि कई सिक्ख सरदारों को महत्वपूर्ण पदों से हटाये जाने के कारण वे संतुष्ट थे।

4.11.2 आर्थिक पृष्ठभूमि :

रणजीत सिंह के समय बड़ी संख्या में सिक्ख बिना लगान की भूमि पर काबिज थे। अंग्रेजों ने सभी किसानों से कठोरता से भूराजस्व वसूली शुरू की। अनाधिकृत कब्जा वाले लोग अंग्रेजी व्यवस्था से भड़क उठे। दूसरी ओर, पंजाब ने ब्रिटिश नागरिकों के लिए राज्य सेवाओं में प्रवेश के नये अवसर प्रदान किये। सैनिक छावनियों, प्रांतीय प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना को अंग्रेज उत्सुक थे। अंग्रेजों के लिए पंजाब का कपास आकर्षण का प्रमुख कारण बना। यही नहीं पंजाब से अंग्रेज सेना में भर्ती द्वारा साम्राज्य स्थापना की कामना करने लगी। प्रथम सिक्ख युद्ध स्थापित व्यवस्था से न तो सिक्ख सन्तुष्ट हुए और न अंग्रेज साम्राज्यवादी नीति ही पूरी हुई थी।

4.11.3 सैनिक असन्तोष :

जहां तक खालसा सेना का प्रश्न है अधिकांश सिक्ख सेना भंग कर दी गई। प्राप्त जानकारी के अनुसार जनवरी, 1848 में 10,000 सैनिकों को सेना से अलग किया गया। रेम्जेम्यूर लिखता है, ''सिक्ख सेना का अपराजित अभिमान पहली पराजय को हजम नहीं कर सका था।'' कनिंघम ने सेना से निष्कासित लोगों की विचारधारा को इन शब्दों में व्यक्त किया है, ''यह स्पष्ट है कि अपने सैनिक संगठन के समाप्त किये जाने के समय न तो विद्रोही सैनिकों ने नैराश्य प्रकट किया और न ही धृष्टता और तटस्थता।'' लेकिन गांवों में लोगों की छींटाकशी से उनका खून खौलता था।

4.11.4 मुल्तान का विद्रोह :

गवर्नर जनरल डलहौजी ने भारत आते ही पंजाब को ब्रिटिश साम्राज्य में विलय की योजना बना ली। उसने मुल्तान के शासक मूलराज के विद्रोह को दबाने हेतु दो अधिकारी (एन्डरसन व एग्न्यू) भेजे, जिन्हें मार डाला गया। दूसरी ओर अंग्रेजों ने बदले की भावना से रानी जिन्दनको चुनार के किले में नजरबन्द कर दिया। 13 नवम्बर, 1848 को ह्यु गौफ सेना सहित लाहौर पहुंचा। 22 नवम्बर का रामनगर का युद्ध हुआ लेकिन युद्ध अनिर्णित रहा। 13 जनवरी, 1849 को झेलम के तट पर 'चेलियान वाला' में भयंकर युद्ध हुआ। यह लड़ाई भारत में अंग्रेजी साम्राज्य विस्तार के विरूद्ध अत्यधिक घमासान युद्धों में से एक थी। लायनल जेम्स ट्रोटर के अनुसार, ''अंग्रेजों की इतनी हानि हुई जितनी भारतीय युद्धों में उनकी कभी नहीं हुई थी।'' अन्त में, चिनाब के किनारे गुजराल में 22 जनवरी, 1849 को हुए युद्ध में सिक्ख सेना को हरा दिया। मूलराज, शेरसिंह व छतरसिंह आदि सभी प्रमुख सिक्खसरदारों ने एक के बाद एक आत्म समर्पण कर दिया।

4.12 सिक्ख पराजय के कारण :

युद्ध के घटनाक्रम के आधार पर विद्वानों की मान्यता है कि पंजाब की बहादुर सेना विश्वासघाती एवं धोखेबाज सैनिक अधिकारियों के कारण पराजित हुई।

लाहौर दरबार में सेना को नेतृत्व प्रदान करने एवं मनोबल बढ़ाने वाला कोई नहीं था। 1821 ई. में एक एशियाई जर्नल में प्रकाशित लेख में एक अंग्रेज ने स्वीकार किया था, भारत के एक–एक संग्राम में हमारी विजय का कारण इतने अधिक हमारे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शानदार कार्य नहीं है जितनी की एशियाई चरित्र की निर्बलता।'' तत्कालीन इतिहासकारों ने अवगत करवाया है कि रणजीतसिंह के योग्य उत्तराधिकारी का न होना उतना महत्वपूर्ण न था जितनी की देशद्रोहियों की धोखबाजी।

सिक्ख इतिहास के अध्ययन से दो बातें उभर कर आती है, रणजीतसिंह के योग्य उत्तराधिकारियों के अभाव में उसके राज्य का पतन आवश्यक तथ्य बन गया था। दूसरे, देशद्रोहियों ने सेना की पराजय को अपरिहार्य बना दिया। रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद अंग्रेजों की पंजाब पर नजरें लगी हुई थी, वे सिन्ध नदी व पश्चिम में स्थित पर्वत श्रृंखला का प्राकृतिक सीमा के रूप में उपयोग चाहते थे और उन्होंने द्वितीय सिक्ख युद्ध की परिस्थितियां तैयार कीं एवं येन–केन प्रकारेण सिक्ख सेना को पराजित किया। भेदनीति का सहारा लेकर डलहौजी ने युद्ध भड़काया और इस प्रकार पंजाब का विलय किया गया। डलहौजी ने एक घोषणा द्वारा 29 मार्च, 1849 को दिलीपसिंह का राज्य ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल कर लिया। स्वयं दिलीपसिंह से कोहिनूर हीरा तथा अपना राज्य अंग्रेजों को समर्पित करवाया गया, जिससे कम्पनी संचालकों से पंजाब विलय की अनुमति लेने की आवश्यकता न रहे।

4.13 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – रणजितसिंह किस मिसल से सम्बन्धित थे?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – अमृतसर की सन्धि पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – आंग्ल–सिक्ख युद्ध को विस्तार से समझाइए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 5

अवध का ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष और उनका ब्रिटिश साम्राज्य में विलीनीकरण

5.0 अवध और अंग्रेज

5.1 सहायक सन्धि

5.2 बोध प्रश्न

5.0 अवध और अंग्रेज :

अवध के साथ अंग्रेजों का सम्पर्क सर्वप्रथम क्लाइव के समय में हुआ। बक्सर के युद्ध के पश्चात् क्लाइव ने जो राजनीतिक समझौता किया था उसके अनुसार नवाब से इलाहाबाद और कड़ा जिले लेकर मुगल–बादशाह शाहआलम को दे दिये गये थे और 50 लाख रूपया लेकर अवध नवाब को वापस कर दिया गया था।

वारे हेस्टिंग्ज के समय में 1773 ई. में 50 लाख रूपया लेकर इलाहाबाद और कड़ा नवाब को पुनः वापस कर दिये गये और अंग्रेजों की सहायता पाकर नवाब ने रूहेलखण्ड पर अपना अधिकार किया। 1775 ई. में एक सन्धि के अनुसार अंग्रेजों ने अवध से बनारस का राज्य छीन लिया। वारेन हेस्टिंग्ज से सहायता प्राप्त करके अवध के नवाब ने अपने पिता की बेगमों से धन का अपहरण किया और अंग्रेजी सेना के व्यय के लिए नवाब से उसी समय से धन भी लिया जाने लगा।

जिस समय लॉर्ड कार्नवालिस भारत आया, अवध की शासन–व्यवस्था काफी खराब थी। अवध को बहुत काफी धन अंग्रजी सेना के व्यय के लिए देना पड़ता था और अंग्रेज प्रतिनिधि का हस्तक्षेप उसके शासन में काफी था। स्वयं कार्नवालिस ने अवध के शासन की कटु शब्दों में आलोचना की थी। लेकिन अंग्रेजों के लिए वध काफी महत्वपूर्ण था। अंग्रेज चाहते थे कि अवध का राज्य उनके और मराठा राज्य के बीच का राज्य बना है। इस कारण वे उसे सर्वाधिक निर्बल भी नहीं बनाना चाहते थे इस प्रकार अवध उस समय तक अंग्रेजों के लिए मराठा आक्रमण से बचने का आधार था। कार्नवालिस ने तत्कालीन नवाब के यौग्य मंत्री हैदरबेग से भेंट की। हैदरबेग ने मांग की कि अंग्रेजी सेना अवध से हटा ली जाय क्योंकि उसके व्यय का भार बहुत अधिक था। कार्नवालिस ने अंग्रेज सेना को हटाना तो स्वीकार नहीं किया, परन्तु नवाब से प्रति वर्ष लिये जाने वाले धन में कमी कर दी। उस समय से 74 लाख रूपये के स्थान पर नवाब 50 लाख रूपये प्रति वर्ष अंग्रेजों को देने लगा।

1797 ई. में नवाब आसफउद्दौला की मृत्यु हो जाने के बाद उसके भाई सादतअली और उसके लड़के वजीरअली में गद्दी के लिए झगड़ा हुआ। सर जान शोर ने इस झगड़े में हस्तक्षेप किया और 1798 ई. में सादतअली को नवाब बना दिया। उसके साथ एक सन्धि की गयी जिसके अनुसार –

1. अंग्रेजों को प्रति वर्ष दी जानेवाली धन–राशि 50 लाख से 76 लाख रूपया कर दी गयी।

2. इलाहावाद का किला अंग्रेजों को दे दिया गया।

3. नवाब ने 12 लाख रूपये अंग्रेजों को इसलिए दिये कि उन्होंने उसे गद्दी पर बैठाने में सहायता दी थी।

4. नवाब ने वायदा किया कि वह बिना अंग्रेजों की आज्ञा से किसी अन्य राज्य से कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा और किसी भी यूरोपियन व्यक्ति को अपने यहां नौकरी न देगा और न उसे अपने राज्य में बसने देगा।

5. नवाब मृतक नवाब आसफउद्दौला के लड़के वजीरअली को 1/2 लाख रूपया प्रति वर्ष ओरउसके अन्य भाइयों को भी उचित धन पेन्श के रूप में देगा।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.1 सहायक सन्धि :

इस प्रकार सर जान शोर की इस सन्धि से नवाब का व्यय बढ़ा और अंग्रेजों की सत्ता भी अवध में बढ़ी। इससे शासन में और बुराइयां बढ़ी। लॉर्ड वैलेजली ने आते ही अवध की और ध्यान यिा। उसका लक्ष्य अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने का था। उसने नवाब से मांग की वह अपनी सेना को भंग कर दे क्योंकि अंग्रेज सेना उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध करेगी और नवाब केवल उतनी ही सेना अपने साथ रखे जितनी कर वसूल करने के लिए आवश्यक है। नवाब ने एक बार गद्दी छोड़ने का निर्णय कर लिया परन्तु बाद में अपने निश्चय में परिवर्तन कर दिया और वैलेजली के हाथ से अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने का एक अवसर निकल गया। लेकिन 1801 ई. में वैलेजली ने नवाब को एक सहायक सन्धि स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जिसके अनुसार –

1. अंग्रेजों की सहायक सेना के व्यय के लिए रूहेलखण्ड और निचले दोआब को सर्वदा के लिए अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

2. अवध का नवाब किसी भी अन्य राज्य से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकता था।

3. अवध की सीमाओं में एक अंग्रेजी सहायक सेना रखी गयी और

4. एक अंग्रेज रेजीडेण्ट नवाब के दरबार में रखा गया।

इस प्रकार लॉर्ड वैलेजली के समय तक अवध का नवाब पूरी तरह से अंग्रेजों के हाथ में चला गया और उसका आधा राज्य उससे छीन लिया गया। नवाब अपने आन्तरिक शासन में केवल नाममात्र कलिए स्वतन्त्र था। अन्यथा वास्तव में उसे अंग्रेज रेजीडेण्ट की आज्ञा का पालन करना पड़ता था। नवाब के हाथों में वास्तविकता में कोई सत्ता न थी, उसकी अपनी कोई सेना न थी, शासन में अंग्रेज हस्तक्षेप करते थे और विदेशी आक्रमण से उसकी सुरक्षा करने का उत्तरदायित्व अंग्रेजों का था। ऐसी स्थिति में अवध का शासन निरन्तर खराब होता चला गया। नवाब और उसके ताल्लुकेदारों के अत्याचार जनता पर बढ़ते गये और उससे बचने का कोई मार्ग न था, क्योंकि आन्तरिक विद्रोह और विदेशी आक्रमण से नवाब की सुरक्षा अंग्रेज करते थे। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि शासन की दुर्व्यवस्था का उत्तरदायित्व बहुत कुछ अंग्रेजों पर था। अंग्रेज निरन्तर नवाब से धन की मांग करते थे और केवल अपने हित की रक्षा के लिए शासन में हस्तक्षेप करते थे। ऐसी स्थिति में कोई योग्य नवाब भी शासन की बुराइयों को दूर नहीं कर सकता था। अंग्रेजों ने कई बार नवाब को धमकी दी कि यदि उसने शासन में सुधार नहीं किया तो उसका राज्य उससे छीन लिया जायेगा, परन्तु अवध को अंग्रेजी राज्य मे सम्मिलित नहीं किया। उसका मुख्य कारण था कि अवध का प्रत्येक नवाब हमेशा अंग्रेजों के प्रति वफादार रहा। एक अंग्रेज इतिहासकार लिखता है कि नवाब की अंग्रेजों के लिए उपयोगिता इस कारण थी कि "इसमें सन्देह नहीं कि नवाब बुरे शासक थे परन्तु इसे भी स्वीकार करना पड़ेगा कि वे अच्छे मित्र थे। अपनी मनुष्यता और अपनी प्रजा को धोखा देते हुएभी वह अंग्रेज सरकार के प्रति वफादार थे।" इस कारण अवध को काफी समय तक अंग्रेजी राज्य में नहीं मिलाया गया।

लॉर्ड हेस्टिंग्ज को युद्धों के कारण धन की आवश्यकता हुई और अवध के नवाब ने उसे दो करोड़ रूपया दिया। इसके बदले में उसे राजा का पद दिया गया। लॉर्ड एम्हर्स्ट के समय में नवाब से 1/2 करोड़ रूपया लिया गया और लॉर्ड विलियम बैन्टिक ने नवाब से 62 लाख रूपया प्राप्त किया।

लॉर्ड विलियम बेन्टिक ने नवाब से धन भी प्राप्त किया और उसे धमकी भी दी कि यदि उसने अपने शासन में सुधार नहीं किया तो उसका राज्य अंग्रजी राज्य में मिला लिया जायेगा। नवाब और उसके योग्य मंत्री हकीम मेहदी ने शासन में सुधार करने क प्रयत्न किया और इस विषय में अंग्रेजों से सहायता मांगी। परन्तु बेन्टिक ने सहायता देने से स्पष्ट इंकार कर दिया। इस बात पर हकीम मेहदी ने अपने पद को छोड़ दिया। बैवरित ने इस विषय में लिखा है कि अवध के जागीरदारों का यह सोचना ठीक था कि "गवर्नर जनरल का मुख्य उद्देश्य अवध के शासन में सुधार करने का न था। वह तो शासन की कुव्यवस्था को अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलानेका आधार बनाना चाहता था।

1837 ई. में नवाब नासिरूद्दीन की मृत्यु हो जाने पर अंग्रेजों ने अवध के उत्तराधिकार के प्रश्न पर पुनः हस्तक्षेप किया और नासिरूद्दौला को गद्दी पर बैठा दिया। यह एक दुर्बल और वृद्ध व्यक्ति था तथा उसने अंग्रेजों को विश्वास दिलाया था कि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यदि वे उसे नवाब बना देंगे तो वह किसी भी प्रकार की सन्धि पर हस्ताक्षर कर देगा। गद्दी पर बैठते ही उसने यही किया। एक नवीन सन्धि के द्वारा उसने स्वीकार किया कि नवाब अपनी पुरानी सेना को पूर्णतया समाप्त कर देगा और एक नवीन सेना की भर्ती करेगा जिसका संगठन अंग्रेज करेंगे लेकिन जिसका व्यय नवाब देगा। उसने यह भी वायदा किया कि वह अंग्रेज रेजीडेण्ट की सहायता से शासन में सुधार करेगा और आवश्यकता होने पर सम्पूर्ण अथवा उसके किसी भी हिस्से का शासन अंग्रेजों को सौप देगा इस सन्धि को ब्रिटिश सरकार ने भी स्वीकार नहीं किया। इस बात का प्रमाण था कि यह सन्धि सर्वथा अनैतिक थी। परन्तु भारत सरकार के सम्मान की रक्षा करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने इस सन्धि को समाप्त करने का अधिकार भारत सरकार को ही दे दिया। परन्तु भारत सरकार ने इस सन्धि की अस्वीकृति की सूचना नवाब को कभी भी नहीं दी।

अगले दस वर्षों तक भारत सरकार पंजाब, अफगानिस्तान और सिन्ध के युद्धों में व्यस्त रही। इस कारण उसे अवध की और ध्यान देने का अवसर नहीं मिला। 1847 ई. में लॉर्ड हार्डिन्ज ने पुनः अवध की और ध्यान दिया। उसने तत्कालीन नवाब वाजिदअली शाह से भेंट की और उसे चेतावनी दी कि यदि नवाब ने अगले दो वर्षों में शासन में सुधार नहीं किया तो अवध उससे छीन लिया जायेगा। नवाब शासन में कोई सुधार न कर सका लेकिन द्वितीय सिख–युद्ध के आरम्भ हो जानेके कारण अवध उस समय बच गया।

नवीन गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी पूर्ण साम्राज्यवादी था। उसने अवध को अंग्रेजी राज्य मे सम्मिलित करने लिए बहाने तलाश करने आरम्भ किये। अवध के नवाब पर युद्ध आरम्भ करने, विद्रोह करने या अंग्रेजों के विरूद्ध षडयन्त्र करने का दोष तो लगाया नहीं जा सकता था क्योंकि अवध के नवाब सर्वदा अंग्रेजों के प्रति वफादार रहे थें इस कारण अवध के नवाब पर केवल शासन की खराबी का ही दोष लगाया जा सकता था। इसी आधार पर पिछले गवर्नर जनरल भी निरन्तर अवध के नवाबों को उसने उनका राज्य छीनने की धमकी देते रहे थें लॉर्ड डलहौली ने भी उसी आधार का सहारा लिया। सर्वप्रथम, सर डब्ल्यू. एच. स्लीर्मन को, जो अवध का रेजीडेण्ट था, आदेश दिया गया कि वह अवध में घूमकर शासन के बारे में एक रिपोर्ट तैयार करे। स्लीमैन के त्यागपत्र देने के पश्चात् जनरल आउट्रम को एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए कहा गया और इनकी रिपोर्ट के आधार पर तथा शासन की खराबी का आरोप लगाकर अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने का निर्णय किया गया।

अवध को किस प्रकार अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया जाये, इस विषय में मतभेद था। इस विषय में स्वयं अंग्रेजों में दो प्रकार के मत थे। एक मत उदारवादियों का था जिनका कहना था कि अंग्रेजों को अवध का शासन अपने हाथों में लेना चाहिए लेकिन नवाब को हटाने की आवश्यकता नहीं है। शासन पर व्यय किये जाने के पश्चात् अवध की आय में से जो भी धन बचे उसे नवाब को दे देना चाहिए। स्वयं स्लीमैन जिसकी रिपोर्ट के आधार पर अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया गया, अवध को पूरी तरह से अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने के विरूद्ध था। उसकी राय थी कि "अवध का शासन अपने हाथों में ले लो नेकिन उस देश की आय पर अधिकार न करो। अवध की सारी आय अवध के नवाब उसके परिवार और वहां की प्रजा के हित में व्यय की जानी चाहिए।" स्लीमैन राजनीतिक आधार पर भी अवध तथा अन्य भारतीय राज्यों को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने के विरूद्ध था। एक बार उसने कहा था कि "देशी राज्य तो एक प्रकार से पानीपर लगे बाँधों के समान है। जब यह समाप्त हो जायेंगे तो हम भारतीय सेना की दया पर निर्भर हो जायेंगे जिसको अपने अधिकार में रखना सर्वदा असम्भव हो। अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने के विषय में सर हेनरी लॉरेन्स ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये कि "अन्त में अवध का शासन एक व्यक्ति अर्थात् नवाब के हित में न होकर उसके और उसकी प्रजा के हित में होना चाहिए। जहां तक सम्भव हो सके, शासन भारतीयों के ही हाथ में रखा जाये। एक रूपया भी कम्पनी के खजाने में नहीं आना चाहिए।" इस प्रकार अनेक अंग्रेज भी नैतिक और राजनीतिक आधार पर अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने के विरूद्ध थे। वे केवल अवध के शासन को अंग्रेजों के हाथों में लिये जाने के पक्ष में थे।

परन्तु दूसरा वर्ग उन व्यक्तियों का था जो पूर्णतया साम्राज्यवादी थे और स्पष्ट रूप से नवाब को हटाकर अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने के पक्ष में थे। लॉर्ड डलहौजी भी पूर्ण साम्राज्यवादी था और उसी के हाथों में निर्णय था। इस कारण नवाब को हटाकर अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने का निर्णय लिया गया।

4 फरवरी, 1856 ई. में अंग्रेज रेजीडेण्ट ने नवाब वाजिदअली शाह से भेंट की और एक सन्धि पर हस्ताक्षर करने की मांग की जिसके अनुसार नवाब से मांग की गयी कि वह स्वेच्छा से अपनी गद्दी को त्याग दे और अवध को अंग्रेजों को सौप दे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लेकिन इस अवसर पर वाजिदअली शाह ने एक राज के सम्मान के अनुकूल कार्य किया। उसने कहा कि ''सन्धियां बराबर वालों में हुआ करती है, इस कारण सन्धि पर उसके हस्ताक्षर आवश्यक नहीं हे। उसने सन्धिकरने से इंकार कर दिया और अपनी पगड़ी उतारकर अंग्रेज रेजीडेण्ट के हाथों में रख दी। अंग्रेज उसे 12 लाख रूपया प्रति वर्ष देना चाहते थे। उसने उसे भी अस्वीकार कर दिया। उसने कहा कि ''अंग्रेजों ने उससे उसका सम्मान और देश छीन लिया है। वह अपने जीवन की सुरक्षा के लिएउनसे कुछ नहीं मांगेगा।

इस प्रकार सन्धि पर नवाब के हस्ताक्षर न हो सके। अंग्रेजी ने एक घोषणा द्वारा अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया।

अवध का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना न नैतिक कार्य था और न लाभदायक सिद्ध हुआ। अवध को शासन के दोषों के आधार पर अंग्रेजों ने अपने राज्य में सम्मिलित किया था, लेकिन यह प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि वास्तव में अवध का शासन इतना खराब था। सर्वप्रथम, स्लीमैन नेअवध के शासन के बारे में रिपोर्ट दी थी। वह अवध के ताल्लुकेदारों के बारे में लिखता है कि ''चौरी और हत्याएं उनका मुख्य कार्य और खेल था। वे उन पुरूषों, स्त्रियों और बच्चों की, जिन्होंने उन्हें कोई हानि नहीं पहुचायी थी, जिन्दगी लेने में और हिरनों तथा जंगली सूअरों की जिन्दगी लेने में कोई अन्तर नहीं मानते थे।'' लेकिन स्लीमैन ने अवध के शासन के दोषों के बारे में जो कुछ लिखा है उसे पूर्णत: सत्य नहीं माना जा सकता। डलहौनजी अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करना चाहता था यह स्लीमैन को स्पष्ट था। इस कारण डलहौजी को प्रसन्न करने के लिए अवध के शासन की खराब रिपोर्ट देना स्लीमैन के लिए स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त तत्कालीन पत्रों के आधार पर यह भी सिद्ध होता है कि डलहौजी ने स्लीमैन को अवध का प्रथम शासन–प्रबन्धक बनाने का भी लालच दे रखा था। दो अंग्रेज अधिकारियों ने उसी समय यह लिखा था कि ''1849 में कर्नल स्लीमैन को रेजीडेण्ट बनाया गया और उसकी नियुक्ति ने अवध और उसके राज्यवंश के भाग्य का निर्णय कर दिया। कर्नल स्लीमैन उस कार्य की खोज के लिए भेजा गया था, जिसका निर्णय पहले ही हो चुका था। उसका कार्य देखभल करके एक रिपोर्ट तैयार करने का था परन्तु वह अवध के साथ अंग्रजों के सम्बन्ध .....अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया जाना।

रिपोर्ट क्या होगी, इसका निर्णय उसके अवध में प्रवेश करने से पहले ही हो चुका था। उसने देखभाल का विश्वास दिलाया, परन्तु उसे दण्ड देने के आदेश पहले ही मिल चुके थे। उसने कोशिश करने का दिखावा किया परन्तु उसे केवल बुराई करने के आदेश मिले हुए थे।'' इस प्रकार स्लीमैन की रिपोर्ट विश्सनीय नहीं मानी जा सकती। इसके अलावा स्वयं स्लीमैन भी नवाब को हटाकर अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने के पक्ष में न था, बल्कि अंग्रेजों द्वारा केवल शासन–प्रबन्ध किये जाने के पक्ष में था। 1854 ई. में जब स्लीमैन नेस्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण त्यागपत्र दे दिया तो जनरल आउट्रम को रेजीडेण्ट बनाया गया और उससे भी एक रिपोर्ट मांगी गयी। उसने अपनी रिपोर्ट स्लीमैन की रिपोर्ट के आधार पर तैयार की, जैसा कि उसने स्वयं लिखा था कि ''जबकि मुझे इस देश का कोई व्यक्तिगत अनुभव नहीं है, मै अपनी सूचना के लिए पूर्णतया रेजीडेन्सी के रिकॉर्ड पर निर्भर हूँ ओर अपने से पहले कार्य किये हुए व्यक्ति के साधनों के आधार पर ही निर्णय ले सकता हूँ। इस प्रकार यह निश्चित है कि आउट्रम की रिपोर्ट भी पूर्णतया विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती है।

इसके अतिरिक्त जहां हमें अनेक तत्कालीन और बाद में अंग्रेज लेखकों द्वारा अवध के शासन की बुराइयों के बारे में काफी कुछ लिखा हुआ मिलता है, वहां हमें यह भी प्रमाण मिलते है कि अवध का शासन वास्तव में इतना खराब न था। अवध के शासन की अच्छाइयों के बारे में भी हमें अनेक लेख प्राप्त होते है। 1818 ई. में लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने स्वयं नवाब को देश की अच्छी खेती, बढ़ती हुई जनसंख्या और उसकी अच्छी स्थिति के बारे में बधाई दी थी। बिशप हीबर जो 1824–25 ई. में अवध में अच्छी तरह से घूमा था लिखता है कि ''अवध के बारे में बहुत कुछ सुनने के पश्चात् जब मैने वहां की खेती की अच्छी स्थिति को देखा तो मुझे आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता भी। वहां की जनसंख्या और उद्योग को देखकर कोई यह विश्वास नहीं कर सकता कि वहा नागरिकों पर अत्याचार किया जाता है, जैसा कि अक्सर कहा गया है।'' हीबर ने लिखा है कि अनेक स्थानों पर जब उसने व्यक्तियों से पूछा कि ''क्या वे अंगेजी राज्य को पसन्द करेगे, तो सभी स्थानों से उसे यही उत्तर मिला कि वे यह कभी नहीं चाहेंगे। इसी प्रकार कैप्टेन लोकिट का भी कथन है कि अवध के व्यक्ति अंग्रेजों के शासन में जाना पसन्द नहीं करते थे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अवध का शासन इतना खराब न था जैसा कि अंग्रेज इतिहासकारों ने बताया है और जिसके आधार पर अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना उचित स्वीकार किया जा सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

डलहौजी और उसके समर्थक इस बात पर अत्यधिक बल देते है कि अवध के नवाबों को निरन्तर शासन में सुधार करने लिए कहा गया था, परन्तु उन्होंने उस और कोई ध्यान नहीं दिया। इस कारण अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना आवश्यक हो गया। परन्तु यह तर्क उचित तर्क नहीं माना जा सकता। लॉर्ड ऑकलैण्ड ने स्वयं 1839 ई. में नवाब नासिरूद्दौला के शासन की प्रशंसा की थी। इसके अतिरिक्त जिन नवाबों ने सुधार की और प्रयत्न भी करना चाहा, वे कोई सुधार इस कारण नहीं कर सके क्योंकि उन्हें अंग्रेजों का कोई सहयोग नहीं प्राप्त हुआ। वजीर हकीम मेहदी ने जब बेंटिक से सुधारों के लिए सहायता मांगी थी तो उसे अस्वीकार कर दिया गया था। उसी प्रकार 1848 ई. में जब वजीर नवाब अली नुकूरखां ने सुधारों के लिए अंग्रेजों से सहायता मांगी तो उसे अस्वीकार कर दिया गया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अंग्रेज गवर्नर जनरल अवध के विभिन्न नवाबों को धमकी तो देते रहते थे, परन्तु शासन सुधार में नवाबों को कोई सहयोग देना नहीं चाहते थे। यह भी स्पष्ट है कि अवध की उन परिस्थितियों में, जबकि वहां वास्तविक शासक अंग्रेज ही बन गये थे, अवध के शासन में कोई सुधार उस समय तक सम्भव न निकलता है कि अंग्रेज वास्वत में अवध के शासन सुधार के लिए इच्छुक न थे बल्कि शासन की खराबी को अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने का आधार बनाना चाहते थे। यह देखते हुए कि अवध कीभूमि बहुत उपजाऊ थी और अंग्रेजी राज्य के मध्य में थी, अंग्रेजों की ऐसी इच्छा रही हो, इसके विषय में अधिक सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है।

अन्त में यह भी विचारणीय है कि क्या अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने से वहां के नागरिकों को कोई लाभ हुआ? इस विषय में भी यह कहा जा सकता है कि अवध के अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने के अन्तिम परिणाम कुछ भी हुए हो, परन्तु जो प्रभाव अवध की स्थिति पर उस समय पड़ा वह अच्छा न था। केयी के अनुसार, अंग्रेज अधिकारियों पर यह आरोप लगाया गया था कि उन्होंने लखनऊ के महलों को बरबाद कर दिया, खजाने को लूट लिया, दुर्बल स्त्रियों को बेघरबार करके अपमानित किया और नवाब की व्यक्तिगत वस्तुओं को बाजारों में बेचा। इसमें सन्देह नहीं कि अवध पर अंग्रेजों के अधिकार से दरबार के अनेक व्यक्ति, पेन्शन पाने वाले, व्यापारी आदि बरबाद हो गये। आर.सी. मजूमदार लिखते है कि ''अनेक परिवार जो कभी भी जनानखाने से बाहर नहीं गये थे, रात को घर से बाहर जाकर भीख मांगते थे। जमींदारों को अंग्रेजों की नवनी भूमि व्यवस्था से हानि हुई और किसानों को अधिक लगान देने के कारण दुख उठाना पड़ा। अवध की सेना के 60 हजार सैनिकों में से 50 हजार को नौकरी से अलग कर दिया गया, वस्तुओं की कीमतें बढ़ गयी और नवीन न्याय व्यवस्था में विलम्ब और अधिक व्यय होने लगा।

इस प्रकार यह निश्चित है कि अवध के अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने का मुख्य आधार नैतिक न होकर अंग्रेजों की साम्राज्यवाद की भावना थी और उसके परिणाम उस अवसर पर अच्छे न हुए थे। अवध के ताल्लुकेदारों और नागरिकों का 1857 ई. के विद्रोह में बड़े पैमाने पर भाग लेना इस बात का प्रमाण था।

5.2 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – सादतअली नवाब कब बना?

(अ) 1795 ई. (ब) 1798 ई.

(स) 1788 ई. (द) 1789 ई.

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – सहायक सन्धि की शर्तों पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – अवध का ब्रिटिश साम्राज्य में विलिनीकरण का विस्तार से विवेचन किजिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग – 3

इकाई – 1

1857 ई. का विद्रोह

1.0 भूमिका
1.1 1857 ई. के स्वतन्त्रता संग्राम के कारण
1.1.1. मुगल बादशाह के साथ दुर्व्यवहार
1.1.2. बेदखली की निति
1.1.3. अवध का विलय
1.1.5. क्रीमिया तथा अफगान युद्ध
1.1.6. आर्थिक शोषण
1.1.7. सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था में हस्तक्षेप
1.1.8. अकाल
1.1.9. सैनिक कारण और चर्बी वाली कारतूस
1.2 स्वतन्त्रता संग्राम की विफलता के कारण
1.2.1. योजना से पूर्व क्रान्ति का विस्फोट
1.2.2. सिक्खों और गोरखों की गद्दारी
1.2.3. सही नेतृत्व का अभाव
1.2.4. नागरिकों का असहायोग
1.2.5. दक्षिण भारत की उदासीनता
1.2.7. अंग्रेजों के अनुकूल परिस्थितियां
1.2.8. विभिन्न सैनिक कारण
1.3 क्रांति का स्वरूप
1.4 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम का परिणाम
1.4.1. कम्पनी शासन का अन्त
1.4.2. महारानी का घोषणा-पत्र
1.4.3. सेना का पुनर्गठन
1.4.4. साम्प्रदायिकता एवं घृणा की उत्पत्ति
1.4.5. प्रशासन के निम्न पदों पर भारतीय और उसके कुप्रभाव
1.4.6. आर्थिक प्रभाव
1.4.7. भारतीयों को लाभ
1.5 बोध प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.0 भूमिका :

1856 ई. वीं लॉर्ड डलहौजी भारत से चला गया और उसके स्थान पर लॉर्ड केनिंग भारत का गर्वनर जनरल होकर आया। उसके आने के एक वर्ष के भीतर ही 1857 ई. का महान् स्वतंत्रता संग्राम छिड़ गया। इसको अंग्रेज इतिहासकारों ने

सिपाही विद्रोह कहा है लेकिन वास्वत में यह भारतीयों को पहला जबरदस्त स्वतंत्रता संग्राम था। राष्ट्रीय चेतना का उदय भारत में पहले ही हो चुका था। 1857 ई. में प्रथम बार मूर्त रूप में प्रकट हुआ। यह इसलिए स्वतंत्रता संग्राम था क्योंकि इसका उद्देश्य भारत को परतंत्रता की बेडियों से मुक्त करना था। लॉड केनिंग जिस समय अपना पद संभालने के लिए इंग्लैण्ड से रवाना हुआ तभी आभास हो गया था कि सम्पूर्ण भारत में ब्रिटिश राज्य का आतंक छाया रहा है और उपरी शान्ति के नीचे प्रशांति की एक भीषण आग सुलग रही है। पर उसकी बड़ी भूल यह थी कि वह इस असन्तोष की भीषणता का पूरी तरह अनुमान नहीं लगा सका था। उसे संभवत इस बात का पूर्ण ज्ञान नहीं था कि डलहौजी के कारनामों ने भारत में कैसी आग लगा दी है और केवल दक्षिण को छोड़कर देश का प्रत्येक भाग विप्लव के लिए तैयार हो रहा है।

1.1 1857 ई. के स्वतन्त्रता संग्राम के कारण :

1857 ई. के स्वाधीनता संग्राम के मूल मे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सैनिक सभी प्रकार के कारण निहित थे –

1.1.1. मुगल बादशाह के साथ दुर्व्यवहार :

मुगल सम्राटों से विभिन्न अधिकार पत्र प्राप्त करने वाले अंग्रेजों ने अपनी राजनीतिक प्रभुत जमाने के साथ–साथ उनके प्रति उचित सम्मान प्रकट करना भी बन्द कर दिया। मुगल सम्राट् बहादुरशाह को अंग्रेज अफसरों द्वारा जो नजर भेंट की जाती थीं वे बन्द कर दी गई। अनेक प्रकर से अंग्रेज अफसरों ने सम्राट् की खुली अवहेलना और अपमान करना शुरू कर दिया। गवर्नर जनरल की मुहर पर से दिल्ली सम्राट् विशेष सेवक शब्द हटा दिए गए और सम्राट् से यह अधिकार छीन लिया गया कि वह अपनी इच्छा से युवराज चुन सके। लॉर्ड डलहौजी ने सम्राट् द्वारा चुने गए सबसे बड़े लड़के जवांबत को यवुराज मानने से इन्कार कर दिया और एक छोटे पुत्र को अपनी और तोड़कर 1856 ई. में उसके साथ एक समझौता कर लिया। उसे इस शर्त पर यवुरांज माना गया कि उसे सम्राट् के स्थान पर केवल शाहजादा कहा जाएगा, वह दिल्ली का किला खाली कर देगा और एक लाख रूपये मासिक की बजाय केवल 15 हजार रूपये मासिक पेन्शन स्वीकार करेगा। इन शर्तो के मान लिए जाने के बाद डलहौजी ने सम्राट् को आज्ञा दी कि वह लाल किला खाली करके कुतुग पर जाकर रहे। इन समाचारों से मुगल सम्राट् ही नहीं वरन् दिल्ली के भारतीय सैनिक और आम लोग भी क्रोध तथा अपमान से तिलमिला उठे।

1.1.2. बेदखली की निति :

अपहरण तथा बेदखली की नीति के अन्तर्गत भारतीय राजाओं पर यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि था कि उनके पुत्र न हो तो वे कम्पनी की सहमति के बिना किसी को गोद लेकर राज्य का उत्तराधिकारी नहीं बना सकते। यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि गोद लेने की अनुमति बहुत ही कम और विशेष परिस्थितियों में एक विशेष कृपा और बहुत–से देशी राज्यों को किसी न किसी बहाने कम्पनी के राज्य–क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया। सतारा की गद्दी हड़प कर उसने मराठों में असन्तोष की आग भड़का दी और नागपुर को अपनी जब में डाल कर उनके रहे–सहे धैर्य को भी समाप्त कर दिया। झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिलाकर उसने लक्ष्मीबाई को शत्रु बना लिया। तंजौर, कर्नाटक, अर्काट, सम्भलपुर, जैतपुर आदि अनेक छोटी–छोटी रियासतों पर कब्जा करके उसने सारे भारत में आतंक फैला दिया। डलहौजी की इस नीति से कितने ही राजे, महाराजे और नवाब ब्रिटिश शासन के शत्रु हो गए। जिनकी रियासतें नहीं छीनी गई थी वे भी अंग्रेजों को देश से निष्काषित करने के लिए तैयार हो गए क्योंकि इन्हे भी भय था कि किसी न किसी दिन उनकी रियासत भी अंग्रेजी राज्य में मिला ली जाएगी।

1.1.3. अवध का विलय :

अवध की समृद्ध रियासत ने अंग्रेजों की धन और सैनिकों से अपार सहायता की थी, किन्तु शासन खराब होने का बहाना ढूंढ कर अवध को भी कम्पनी के राज्य–क्षेत्र में मिला लिया गया। इस घटना से अवधी सैनिक जो बंगाल की सेना में थे, अंग्रेजों के दुश्मन बन गए। नैलसन के अनुसार, अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाए जाने और वहां पर नई व्यवस्थ शुरू करने से मुस्लिम कुलीनतन्त्र अंग्रेजों के विरूद्ध हो गया और अवध असन्तोष का केन्द्र बन गया।''

1.1.5. क्रीमिया तथा अफगान युद्ध :

इन युद्धों में अंग्रेजों की जो दुर्दशा हुई उससे भारतीयों में यह विचार प्रबल हुआ कि सैनिक–शक्ति में अंग्रेज अजेय नहीं है और उनके अत्याचारों के विरूद्ध सफल विद्रोह किया जासकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.1.6. आर्थिक शोषण :

अंग्रेजों ने देश के आर्थिक ढांचे को नष्ट कर डाला। भारत की विपुल सम्पदा इंग्लैण्ड पहुंचने लगी। भारतीय ग्रामों की अर्थव्यवस्था के आधार घरेलू उद्योग–धन्धों को नष्ट कर दिया गया। भारत के पैसे से इंग्लैण्ड का जितना अधिक औद्योगीकीरण हुआ, भारत के परम्परागत उद्योगों का उतना ही अधिक विनाश किया गया ताकि भारत इंग्लैण्ड की फैक्ट्रियों के लिए कच्चा माल की खपत के लिए बाजार का भी काम दे। भारतीय बुनकर संसार भर को चकित कर देने वाली ढाके की प्रसिद्ध मलमल बुनते थे, उन्हें अंग्रेजी मिलों में काम करने के लिए बाध्य किया गया। बम्बई, बंगाल और अवध में कितने ही किसानों और जमींदारों की जमीनें छीनली गई। कम्पनी के राज्य–क्षेत्र के कुछ भागों में अकाल और भुखमरी से जनता त्रस्त हुई और बहुत–सी जाने गई। अंग्रेजों के इस आर्थिक शोषण ने कारीगर, मजदूर, किसान, जमींदार, व्यापारी सभी को असन्तुष्ट और त्रस्त कर दिया।

1.1.7. सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था में हस्तक्षेप :

अंग्रेजों ने हिन्दुओं की धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की जो नीति अपनाई उसे भारत की रूढ़िवादी जनता ने पसन्द नहीं किया। अंग्रेजों ने हिन्दू उत्तराधिकार कानून में भी ऐसा परिवर्तन कर दिया कि यदि कोई हिन्दू ईसाई धर्म ग्रहण कर ले तो भी उस व्यक्ति का अपनी पैतृक सम्पति में भाग बना रहेगा। अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा का भी विनाश किया।

अंग्रेजों ने भारतीयों के साथ हर प्रकार से दुर्व्यहार किया। मेलकम ल्यूइन ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "समाज के सदस्यों की हैसियत से हम दोनों अर्थात् अंग्रेज और हिन्दुस्तानी एक दूसरे से अपरिचित है। हमारा एक दूसरे से मालिकों और गुलामों जैसा सम्बन्ध है। हमने प्रत्येक ऐसी वस्तु भारतीयों से छीन ली है जो उन्हें मनुष्य की हैसियत से ऊँचा कर सकती थी। हमने उन्हें जाति भ्रष्ट कर दिया है, उनके उत्तराधिकार के नियम को रद्द कर दिया है, उनकी वैवाहिक संस्थाओं को बदल दिया है, उनके धर्म के पवित्रतम रिवाजों की अवहेलना की है, उनके मन्दिरों की जायदादों को जब्त कर लिया है। अपने सरकारी लेखों में हमने उन्हें काफिर कहकर कलंकित किया है, अपनी लूट–खसोट से हमने देश को बर्बाद कर दिया है और लोगों से जबरदस्ती माल–गुजारी बसूल की है। हमने संसार के सबसे प्राचीन उच्च परिवारों को गिराकर पतित शूद्रों की स्थिति में ढ ाकेलने की चेष्टा की है।"

अंग्रेजों ने भारतीयों को ईसाई बनाने का प्रयत्न करके भी भारत के धर्म और सम्मान पर गहरा आघात कियां अंग्रेज समझते थे कि यदि एक बड़ी संख्या में भारतीयों को ईसाई बना लिया जाएंगा। तो वे देश पर भली प्रकार शासन कर सकेंगे क्योंकि तब भारतीय जनता उनके विरूद्ध विद्रोह नहीं करेगी और शासक और शोषित दोनों का धर्म एक हो जाएगा। तो वे देश पर भली प्रकार शासन कर सकेंगे क्योंकि तब भारतीय जनता उनके विरूद्ध विद्रोह नहीं करेगी और शासक और शोषित दोनों का धर्म एक हो जाएगां ब्रिटिश सरकार अपनी इस नीति के कारण भारतीय सिपाहियों के धार्मिक भावों की अवहेलना करने लगी। बात–बात में उनके धार्मिक नियमों का उल्लंघन किया जाने लगा और अंग्रेज अफसर खुले तौर पर भारतीय सिपाहियों का धर्म परिवर्तन करने के काम में लग गए।

अंग्रेजों द्वारा भारत के सामाजिक और धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप की इस नीति से भारतीय जनता केलगभग प्रत्येक वर्ग में विक्षोभ और विद्रोह के भाव उत्पन्न हो गए, विशेषकर भारतीय सिपाहियों में भारी असन्तोष फैला।

1.1.8. अकाल :

कम्पनी के शासन–काल में अकालों ने देश का स्वरूप ही बदल दिया। सरकार सिर्फ लगान वसूल करती थी। अकाल में जनता की सहायता करना उसका कर्तव्य नहीं था। विलियम डग्वी के अनुसार —18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सरकारी आंकड़ों के अनुसार 15 लाख आदमी अकाल में मरे।" दुर्भिक्षों से निपटने की कोई सरकारी नीति नहीं थी। विनाशकारी अकालों ने जनता को यह समझा दिया कि स्वार्थी अंग्रेजों से सहानुभूति की आशा व्यर्थ है, अतः स्वयं अपनी रक्षा के लिए भारतीय जनता उठ खड़ी हुई। अकालों ने जनता का विश्वास समाप्त कर दिया और लूटमार आदि साधारण बात हो गई जिसने क्रान्ति की लपट में आहुति का काम किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.1.9. सैनिक कारण और चर्बी वाली कारतूस :

ब्रिटिश शासन की सैनिक नीति ने क्रान्ति के विस्फोट में महान् योग दिया। भारतीय सिपाहियों को अंग्रेजी सैनिकों से न केवल कम वेतन व भत्ते मिलते थे वरन् उनके साथ अंग्रेजी अधिकारियों का व्यवहार भी बहुत खराब था। भारतीय सिपाहियों में लॉर्ड केनिंग के उस कानून से भी बड़ा असन्तोष फैला जिसके अनुसार उन्हें लड़ने के लिए समुद्र पार विदेशों में भेजा जा सकता है। भारतीय सैनिकों का विचार था कि विदेश जाने से उनका धर्म नष्ट हो जायेगा।

1.2 स्वतन्त्रता संग्राम की विफलता के कारण :

1857 का स्वतन्त्रता संग्राम जोर–शोर से प्रारम्भ होकर भी अन्ततः सफल नहीं हो सका और ब्रिटिश शासन ने उसे कुचल दिया। इतिहासकारों ने क्रांति की असफलता के भिन्न–भिन्न कारण बतलाए है, लेकिन कुछ मुख्य और आधारभूत कारण ये थे –

1.2.1. योजना से पूर्व क्रान्ति का विस्फोट :

डॉ. सुभाष काश्यप ने ठीक ही लिखा है कि क्रांति की असफलता का एक बहुत बड़ा कारण था देश भर में सभी क्रान्तिकारियों द्वारा पूर्व–निश्चित योजना के अनुसार एक साथ उसी समय कदम न उठाना, क्रान्ति का निश्चित समय से पूर्व छुट–पुट ढंग से जहां–तहां फूट पड़ना और अंग्रेजों को अपने बचाव की तथा क्रांति के दमन की तैयारी करने का अवसर मिल जाना।

1.2.2. सिक्खों और गोरखों की गद्दारी :

राजपूत, सिक्ख और गोरखे सैनिक अपनी वीरता के लिए विश्व–विख्यात है, पर राजपूतों ने विद्रोह की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा और सिक्ख तथा गोरखे अपने वंशानुगत शत्रु मुसलमानों से बदला लेने के लिए अंग्रेजों से मिल गए। गोरखों ने पहले अवध पर और फिर लखनऊ पर आक्रमण कर क्रान्तिकारियों की शक्ति को क्षीण कर दिया जिससे अंग्रेजों को बहुत बड़ी मदद मिली। इसी प्रकार पंजाब के सिक्खों ने दिल्ली और लखनऊ को जीत कर कमर तोड़ दी।

1.2.3. सही नेतृत्व का अभाव :

क्रान्तिकारियों के पास सैनिक दृष्टि से पूर्ण योग्य नेता नहीं थे। झांसी की रानी वीर होते हुए भी अनुभवहीन थी और उसका कार्य–क्षेत्र सीमित था। कंदरसिंह और तात्या टोपे के चरित्र ऊँचे थे, किन्तु अंग्रेज जनरलों जैसी सैनिक योग्यता उनमें नहीं थी। सारे क्रान्तिकारियों में एक भी नेता ऐसा नहीं था जो उनकी बिखरी हुई विशाल शक्ति को संगठित कर एक धागे में पिरो देता। सम्राट बहादुरशाह बूढ़ा था, उसके शाहजादों को युद्ध का कोई अनुभव नहीं था। योग्य नेता के अभाव ने क्रान्ति को 'बिना मांझी की नाव' बना दिया।

1.2.4. नागरिकों का असहायोग :

क्रांति मुख्यतः कुछ राजाओं, ताल्लुकेदारी, जमींदारों और सैनिकों तक ही सीमित रही। देश की बहुसंख्यक किसान जनता का सहयोग प्राप्त करने की कोई चेष्टा नहीं की गई। क्रांति वास्तव में जन–साधारण की क्रांति नहीं बनसकी। जनता में असन्तोष था, लेकिन क्रान्तिकारी मुख्यतः पुरानी व्यवस्था के प्रतिनिधि थे जो विशेषकर अपने सामान्तवादी अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। आम जनता के सहयोग के अभाव में शक्तिशाली अंग्रेजों से अधिक समय तक युद्ध चलाना असम्भव हो गया। बहुत से क्रांतिकारियों ने लूट–मार करके भी जनता की सहानुभूति खो दी।

1.2.5. दक्षिण भारत की उदासीनता :

जिस उत्साह से नर्मदा के उत्तर के लोगों ने स्वतन्त्रता–संग्राम में भाग लिया, यदि उसी उत्साह से दक्षिण भारत भी साथ देता तो क्रांति सफल हो सकती थी। बम्बई, मद्रास, मैसूर कर्नाटक, महाराष्ट्र आदि भागों में तो एक–आध छोटी–मोटी घटना के सिवाय कुछ नहीं हुआ। इसलिए उत्तरी भारत में अंग्रेज अपनी केन्द्रित शक्ति का प्रयोग कर सके दक्षिण वफादारी अंग्रेजों के लिए एक वरदान सिद्ध हुई। जनरल आइन्स ने लिखा है – ''उसकी (सिन्धिया की) वफादारी ने अंग्रेजों के लिए भारत को बचा लिया।'' निजॉम ने हैदाराबाद में विद्रोह नहीं होने दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.2.6. केन्द्रीभूत विद्रोह :

विद्रोह व्यापक और उग्र अवश्य था, लेकिन किसी सीमा तक केन्द्रीभूत था। जिन क्षेत्रों में विद्रोह भड़का, वह प्रायः नर्मदा और चम्बल के बीच संयुक्त प्रान्त, पंजाब, अवध, रूहेलखण्ड, पश्चिम बंगाल व बिहार मात्र थे। एक प्रकार से यह मध्य–उत्तर भारत में केन्द्रित हो गया। राजपूताना शान्त था, सिंध में विद्रोह का कोई प्रभाव नहीं था, अफगानिस्तान का अमीर दोस्त मुहम्मद अंग्रेजों का मित्र बना रहा। पंजाब व नेपाल भी शांत थे। केन्द्रीय और पूर्वी बंगाल में भी कोई उपद्रव नहीं हुआ। इस प्रकार विद्रोह देश–व्यापी रूप धारणा नहीं कर सका। इसका सीमित क्षेत्र इसकी विफलता का कारण बन गया।

1.2.7. अंग्रेजों के अनुकूल परिस्थितियां :

क्रांति थोड़ी देर से चेती। यदि यह कुछ पहले शुरू हो जाती तो अंग्रेजों के लिए परिस्थिति बहुत ही विषम बन जाती। क्रांति के समय तक क्रीमिया का युद्ध बन्द हो चुका था और अंग्रेज चीन में दूसरा अफीम–युद्ध भी जीत चुके थे। अंग्रेजों की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति सन्तोजनक थी, अतः वे निश्चिंत होकर क्रांति से निपटने में लग गए। भारत में उन्हें अधिकांश राजाओं तथा बुद्धिजीवी वर्ग का समर्थन प्राप्त था।

1.2.8. विभिन्न सैनिक कारण :

क्रांति की असफलता के उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त दूसरे कारण प्रधानतः सैनिक थे जिनका सरकार एवं दत्त ने इस प्रकार उल्लेख किया है –

(i) सिपाही साज–सामान की दृष्टि से कमजोर थे। अंग्रेज सिपाहियों के पास न–आविष्कृत ब्रीच लोड्स बन्दूकें थी। उनकी गोलियां ज्यादा दूर तक मार कर सकती थी। हिन्दुस्तानी सिपाहियों के हाथ में पुरानी बन्दूकें थी जो दूर तक मार नहीं कर सकती थी।

(ii) समूचे देश मे विस्तृत टेलीग्राम तथा डाक व्यवस्था पर अधिकार रहने अंग्रेजों को बहुत बड़ी सहायता मिली। वे उचित सैनिक कार्यवाही के लिए देश कि एक भाग से दूसरे भाग तक सूचना तथा अदेश आसानी से पहुँचा सकते थे। विद्रोही इन चीजों के विषय में कुछ नहीं जानते थे और उन्होंने इन पर अधिकार करने की भी कोई चेष्टा नहीं की।

(iii) उच्चकोटि के सेनापतित्व तथा भीषण यूरोपीय युद्ध के हाल के अनुरूप के कारण उनकी अवस्था अच्छी थी और उनके पास नेता के रूप मे अनेकों प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इनके विपरीत विद्रोहियों में आपस में फूट थी और उनमें योग्य सेनापति बहुत कम थे।

(iv) कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों की अनभिज्ञता के कारण विद्रोही पूर्ण रूप से कारगर न हो सके। अंग्रेजों ने आधुनिक सुधारों का उपयोग किया, परन्तु विद्रोहियों को इसका कोई ज्ञान नहीं था और वे नए आविष्कारों से डरते थे। अन्त में विद्रोहियों ने अपनी विवेकहीन लूट–पाट के कारण धीरे–धीरे नागरिक जनसंख्या की सहानुभूति खोदी और जिन्हें उन्होंने अपने हाथों तरह–तरह का कष्ट दिया, देश में अव्यवस्था फैल गई। पेशेवर बदमाशों और कैदियों ने विद्रोह के नाम पर बहुत से अत्याचार किए। स्वभावतः बहुसंख्यक लोग विद्रोहियों से क्रुद हो गए और उनकी सहानुभूति ब्रिटिश के साथ हो गई क्योंकि वे स्थापित सरकार के द्वारा स्थायी शान्ति व्यवस्था के समर्थक थे।

1.3 क्रांति का स्वरूप :

यद्यपि इस बात से कोई इन्कार नहीं करता कि 1857 ई. की क्रांति भारत के राष्ट्रीय इतिहास की प्रथम महत्व पूर्ण घटना थी लेकिन इसके स्वरूप के बारे में अवश्य मतभेद है। इस क्रांति के मुख्यतः निम्नलिखित स्वरूप बताए जाते है –

1. अंग्रज इतिहासकारों के अनुसार यह कोरा सिपाही विद्रोह था जिसका तात्कालिक कारण कारतूस वाली घटना थी।

2. कुछ विद्वानों के अनुसार यह केवल मुसलमानों का विद्रोह था जिसका मूल उद्देश्य सम्राट् बहादुरशाह की छत्र–छाया में सारे भारत पर मुस्लिम सत्ता पुनः स्थापित करना था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. कतिपय इतिहासकारों के अनुसार क्रांति का स्वरूप सामन्तवादी था क्योंकि असन्तुष्ट देशी राजा और नवाब विद्रोह करके अपने राज्य, पद और पेंशनों की पुनः प्राप्त करना चाहते थे। सिपाही–विद्रोह के साथ सहयोग करके इन लोगों ने इसे राजनीतिक रूप देने का प्रयत्न किया।

4. कुछ विद्वानों ने क्रांति को हिन्दुओं के पिछड़ेपन और अन्ध–विश्वासों का परिणाम माना है। एस.एन. सेन के अनुसार ''अंग्रेजी सरकार ने अनजाने में ही भार में एक सामाजिक क्रांति का प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने महिलाओं की असमानता दूर की और विधि के समक्ष सबकी समानता स्थापित करने का प्रयास किया। 1857 ई. के विद्रोह के नेता अगर सफल हो गए होते तो एक बार फिर प्रगति का मार्ग अवरूद्ध हो जाते।''

5. अधिकांश भारतीय इतिहासकारों के मत में यह राष्ट्रीय आन्दोलन भारत का पहला स्वाधीनता संघर्ष था। वीर सावरकर, पट्टाभि सीतारमैया आदि ने इसे निश्चित रूप से भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम माना है।

यदि इन सभी मतों का विश्लेषण किया जाए तो कहना होगा कि 1857 ई का विद्रोह वास्वत में एक राष्ट्रीय आन्दोलन और भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम था जिसे सैनिकों ने शुरू किया, जिसे सामन्तों से सहयोग प्राप्त हुआ और जिसमें हिन्दू और मुसलमान पारस्परिक मतभेदों को भुलाकर कन्धे से कन्धा भिड़ा कर अंग्रेजों को भारत से निकाल फेंकने के लिए लड़े। डॉ. के.एम. परिणक्कर ने सही निष्कर्ष निकाला है कि –

''एक राष्ट्रीय आन्दोलन की कसौटी यह है कि उसका उद्देश्य देश की स्वाधीनता प्राप्त करना है या नहीं। विद्रोह का लक्ष्य था अंग्रेजों का बाहर निकालना तथा भारत को पुनः स्वतन्त्रता करना। विद्रोह के नेताओं ने जिस स्वतन्त्रता की कल्पना की, थी चाहे उससे फूट और अराजकता कीपुरानी स्थितियां जन्म ले लेती, किन्तु इस तथ्य से इन्कार नहींकिया जा सकता कि यह स्वाधीनता का आन्दोलन था और इस अर्थ में राष्ट्रीय संघर्ष था। यह आन्दोलन इस अर्थ में भी राष्ट्रीय था कि उसने साम्प्रदायिक भावना को दूर किया, हिन्दू–मुसलमानों ने मिलजुल कर कार्य किया।

1.4 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम का परिणाम :

1857 का विप्लव असफल रहा, किन्तु इसके परिणाम अभूतपूर्व, व्यापक और स्थायी सिद्ध हुए। इतिहासकार ग्रिफिन ने लिखा है, ''भारत में सन् 1857 की क्रांति से अधिक महत्वपूर्ण घटना कभी नहीं घटी।'' रशब्रुक सिलियम के अनुसार, ''एक रक्त की नदी ने, कम से कम उत्तरी भारत में तो जातियों को अलग–अलग कर दिया तथा उस पर पुल बांधना एक कठिन कार्य ही था।'' डॉ0 मजूमदार ने भी लिखा है कि, ''सन् 1857 का महान् विस्फोट भारतीय शासन के स्वरूप और देश के भावी विकास में मौलिक परिवर्तन लाया।'' अतः इन कथनों के आधार पर क्रान्ति के परिणामों पर विचार करना समीचीन होगा।

1.4.1. कम्पनी शासन का अन्त :

1600 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की गयी थी तथा अब तक हर बार 20 वर्ष बाद चार्टर एक्ट्स द्वारा उसकी प्रविधि में वृद्धि होती रही। विद्रोह का महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला की 2 अगस्त, 1858 को ब्रिटिश संसद ने एक अधिनियम पारित कर भारत में कम्पनी शासन का अन्त कर दिया तथा ब्रिटिश भारत का प्रशासन ब्रिटिश ताज ने ग्रहण कर लिया। पिट्स इण्डिया एक्ट द्वारा जो बोर्ड ऑफ कंट्रोल स्थापित किया गया था, उसे तथा बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स समाप्त कर दिये गये। इनके स्थान पर भारत मन्त्री या भारत सचिव और उसकी सहायता के लिये 15 सदस्यों की एक इण्डिया कौसिल बनायी गयी। कम्पनी द्वारा भारत में किये गये सभी समझौतों को मान्यता प्रदान की गई। इस अधिनियिम के द्वारा गवर्नर जनरल को ब्रिटिश भारत में गवर्नर जनरल के नाम से तथा देशी राज्यों से सम्बन्ध स्थापित करते समय उसे वायसराय के नाम से पुकाराने की व्यवस्था की गई। इस प्रकार विद्रोह के फलस्वरूप जो परिवर्तन किये गये, उससे नये युग का सूत्रपात हुआ।

1.4.2. महारानी का घोषणा–पत्र :

विद्रोह के कारण जन साधारण में अनिश्चितता उत्पन्न हो गयी थी। अतः विप्लव के बाद जनता के प्रति निश्चित नीति एवं सिद्धान्तों की घोषणा के लिये इलाहाबाद में बड़ी धूमधाम से एक दरबार का अयोजन किया गया, जिसमें लार्ड केनिंग ने महारानी के घोषणा–पत्र को पढ़कर सुनाया (1 नवम्बर 1858)। इस घोषणा–पत्र की प्रमुख बातें निम्न थी –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. भारत में जितना अंग्रेजोंका राज्य है, उसके विस्तार की अब कोई इच्छा नहीं है। भविष्य मेंराज्य विस्तार नहीं किया जायेगा।

2. देशी नरेशों व नवाबों के साथ जो समझौते और प्रबन्ध हुए है, उनका ब्रिटिश सरकार सदैव आदर करेगी तथा उनके अधिकारों की सुरक्षा करेगी।

3. धार्मिक सहिष्णुता एवं स्वतन्त्रता की नीति का पालन किया जायेगा।

4. भारतीयों के साथ समानता का व्यवहार किया जायेगा तथा उनके कल्याण के लिये कार्य किये जायेंगे।

5. प्राचीनरीति–रिवाजों, सम्पत्ति आदि का सरक्षण किया जायेगा।

7. बिना किसी पक्षपात के शिक्षा, सच्चरित्रता और योगयतानुसार सरकारी नौकरियां प्रदान की जायेगी।

8. उन सभी विद्रोहियों को क्षमादन मिलेगा, जिन्होंने किसी अंग्रेज की हत्या नहीं की है।

महारानी की इस घोषणा को भारतीय स्वतन्त्रता का मेग्नाकार्टा कहा गया, यद्यपि इस घोषणा की बहुत सी बातों को कभी लागू नहीं किया गया। किन्तु यह घोषणा 1919 तक भारतीय शासन की आधारशिला बनी रही। इस घोषणा ने भारत के देशी नरेशों के सन्देह को दूर कर दिया तथा भारतीय नरेशों को सनदें देकर उनके गोद लेने के अधिकार की पुनः स्थापना की गई। सर जॉन स्टीफन ने लिखा है, ''विक्टोरिया का घोषणा–पत्र केवल दरबार मेंसुनाये जाने के लिये था। यह कोई सन्धि नहीं थी, जिसके अनुसार कार्य करने के लिये अंग्रेजों पर किसी प्रकार का उत्तरदायित्व हो।'' परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस उद्देश्य से यह घोषणा पत्र प्राकशित किया गया था, उसकी पूर्ति अवश्य हुई। भारत की भोली भाली जनता पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

1.4.3. सेना का पुनर्गठन :

1857 ई. के विप्लव का विस्फोट सैनिक विप्लव के रूप में हुआ था, अतः सेना का पुनर्गठन आवश्यक था। अंगेजों को अब भारतीय सेना पर बिल्कुल विश्वास नहीं रहा, अतः अंग्रेज सैनिकों की इतनी विशाल सेना रखने का निर्णय लिया गया कि भविष्य में होने वाले विद्रोहों का दमन कर सके। तोपखाना पूर्णतया यूरोपियन सैनिकों के हाथ में रखाा गया। भारतीय सैनिकों की संख्या आधी कर दी गई तथा भारतीय सैनिकों के पुनर्गठन में जातीयता एवं साम्प्रदायिकता आदि के तत्वों को ध्यान में रख गया। भारतीयों को गोरखे, पठान, डोगरे, राजपूत, सिक्ख, मराठे आदि में बांट दिया गया। इन सैनिकों को अपने स्थानीय क्षेत्रों से हटाकर दूर–दूर क्षेत्रों में भेज दिया, ताकि स्थानीय लोगों के सहयोग से वे पुनः विद्रोह न कर सके। भारतीय सैनिकों को घटिया किस्म के अधिकार दिये गये। सैनिकों की भर्ती के लिए एक रॉयल कमीशन की नियुक्ति की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज सैनिकों की संख्या 1859 में, 45, 322 से बढ़ कर 1862 में 91,897 हो गयी। इसके अतिरिक्त भारतीय खर्च पर इंग्लैण्ड में 16,427 सैनिक रखे गये, जो संकट के समय काम आ सके।

1.4.4. साम्प्रदायिकता एवं घृणा की उत्पत्ति :

1857 ई. के संघर्ष में हिन्दू मुसलमानों ने संयुक्त रूप से भाग लिया गया था, किन्तु मुसलमानों ने हिन्दुओं से अधिक उत्साह दिखाया। अतः अब अंग्रेजों ने हिन्दुओं का पक्ष लेना आरम्भ कर दिया जिससे हिन्दू और मुसलमानों में दरार उत्पन्न हो गयी। अंग्रेजोंने 'फूअ डालो और राज्य करो' की नीति का पालन जारी रखा, जिससे दोनों जातियों में वैमनस्य पैदा हो गया। यह वैमनस्यता भावी राष्ट्रीय आन्दोलन में बाधक सिद्ध हुई, जिसका अन्तिम परिणाम देश का विभाजन हुआ। आगे चलकर तो अंग्रेजों ने हिन्दुओं को अनुसूचित जातियों से भी पृथक कर दिया। अंग्रेजों की इस नीति के कारण भारतीय के बीच खाई उत्पन्न हो गई। विप्लव के बाद अंग्रेजों व भारतीयों के सम्बन्ध भी कटु हो गये और इस कटुता को अन्त तक नहीं मिटाया जा सका। दोनों के बीच कभी सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित न हो सके। फलस्वरूप शासक और शासितों के बीच खाई बनी रही। इस घृणा और अविश्वास का देश की राजनीति और शासनपर कुप्रभाव पड़ा।

1.4.5. प्रशासन के निम्न पदों पर भारतीय और उसके कुप्रभाव :

महारानी की घोषणा में यह आश्वासन दिया गया था कि बिना किसी पक्षपात के शिक्षा, सच्चरित्रता एवं योग्यतानुसार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सरकारी नौकरियों में भारतीयों को स्थान दिया जायेगा। किन्तु इसका पालन कभी नहीं किया गया। कोई भी भारतीय सैनिक रॉयल कम्पनी के सामने जाने के लिए उपयुक्त नहीं समझा जाता था और यदि वह वायसराय का कमीशन प्राप्त भी कर लेता तो उसे एक नये अंग्रेज रंगरूट के मुकाबले अधिक योग्य नहीं समझा जाताथा। अब भारतीयों को प्रशासन में क्लर्कों तथा सहायकों के निम्न पदों पर लिया जाने लगा। ये सरकार कर्मचारी ब्रिटिश अधिकारियों तथा जनता के बीच एक प्रकार से विचौलिये थे और ये चापलूस थे। अंग्रेज यही चाहते थे कि ये लोग उनकी चापलूसी करे ताकि वे उनके आज्ञाकारी बने रहें। इसका परिणाम यह हुआ कि ऐसे सरकारी कर्मचारियों की से वास्तविक सैन्य शक्ति से अधिक प्रबल सिद्ध हुई। इस वर्ग ने अंग्रेजों के प्रति पूर्ण वफादारी रखी, जो देश के लिये बड़ी विश्वासघाती सिद्ध हुई।

1.4.6. आर्थिक प्रभाव :

आर्थिक दृष्टि से भी विप्लव के कुप्रभाव दृष्टिगोचर हुए। अंग्रेजों ने अब केवल ब्रिटिश पूंजीपतियों को भारत में पूंजी लगाने हेतु प्रोत्साहित किया तथा उन्हें सुरक्षा प्रदान की। अब चाय, कपास, जूट, कॉफी तम्बाकू आदि के व्यापार को बहुत बढ़ावा दिया गया, जो अंग्रेजों के नियन्त्रण में थे। भारतीय उद्योगों को संरक्षण नहीं दिया। नई ईस्ट इण्डिया कॉटन कम्पनी स्थापित की गई जो भारत से रूई ले जाकर इंग्लैण्ड से कपड़ा बनवा कर भारत भेजती थी। यातायात के साधनों का विकास भी अंग्रजों के लिये लाभप्रद रहा। इसके अतिरिक्त कम्पनी भारत सरकार पर 3 करोड़ 60 लाख्पाण्ड का कर्ज छोड़ गई थी, जिसकी पूर्ति भारत सरकार अब भारतीयों का शोषण करके ही कर रही थी। अंग्रे जीों के इस आर्थिक शोषण से देश निरन्तर गरीब होता गया।

1.4.7. भारतीयों को लाभ :

यद्यपि विद्रोह पूरी तरह से असफल रहा तथा इसके अनेक दुष्परिणाम भी निकले, किन्तु इस विद्रोह केकारण भारतीयों को अनेक लाभ भी हुए। विद्रोह के पश्चात् सर्वप्रथम ब्रिटिश सरकार ने देश की आन्तरिक दशा ठीक करने का प्रयत्न किया तथा लोगों की भौतिक उन्नति के प्रयास आरम्भ हुए। विप्लव के बाद से ही भारत के संवैधानिक विकास की प्रक्रिया आरम्भ हुई, जिसका सूत्रपात 1858 के अधिनियम से हुआ था। इससे देश में प्रजातान्त्रिक शासन का बीजारोपण हुआ। धीरे–धीरे भारतीयों को शासन में भाग लेने का अवसर मिलने लगा। शासन में भाग लेने से अब उनमें एकनयी चेतना आने लगी। यद्यपि 1857 में विदेशी शासन को समाप्त करने के प्रयास का दमन कर दिया गया था, किन्तु इससे भारतीयों के मन में राष्ट्रीय आन्दोलनों का संचालन किया तथा 1947 में विदेशी सत्ता की इतिश्री कर दी।

1857 का विप्लव भारतीय इतिहास की प्रेरणादायक घटना है, जिसने प्रथम प्रहार में ही ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को हिला दिया। भविष्य में भी यह विप्लव भारतीयों को प्रेरणा देता रहा और हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनों के काल में 1857 के शहीदों को बड़े गौरव से याद किया गया। वस्तुतः अनेक इतिहासकार विद्रोह के द्वारा मध्य युग का अन्त तथा आधुनिक युग का प्रारम्भ मानते है।

1.5 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – महारानी का घोषणा पत्र कब पढ़कर सुनाया गया?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – 1857 के विद्रोह की प्रकृति पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – 1857 के विद्रोह के कारण व परिणामों पर प्रकाश डालिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 2

ब्रिटिश सर्वोच्चता का भारतीय रियासतों में विकास

2.0 अंग्रेजों के भारतीय राज्यों से सम्बन्ध

2.1 रिंग–फेन्स नीति

2.2 अधीनस्थ अलगाव की नीति (1813–1858 ई.)

2.3 अधीनस्थ संघ की नीति

2.4 भारतीय राज्यों का पुनर्गठन और विलय

2.5 सम्बन्धों का प्रभाव

2.6 बोध प्रश्न

2.0 अंग्रेजों के भारतीय राज्यों से सम्बन्ध :

अंग्रेजों के भारतीय राज्यों के साथ सम्बन्ध अत्यन्त आकर्षक और महत्वपूर्ण रहे। विभिन्न भारतीय राज्यों का उत्थान मुगल–साम्राज्य के पतन के पश्चात् हुआ। वे पूर्णतया स्वन्तत्र थे यद्यपि नाममात्र के लिए वे मुगल बादशाह का आधिपत्य स्वीकार करते थे। ऐसे ही समय में वे एक विदेशी शक्ति अंग्रेजों के सम्पर्क में आये जिसने मुगल–साम्राज्य के पतन से उत्पन्न हुए शक्ति के केन्द्र स्थान की पूर्ति की।

भारतीय राज्यों के अंग्रेजों के साथ सम्बन्धों पर विचार करते हुए हमें दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है। प्रथम, हम सभी भारतीय राज्यों को एक श्रेणी में नहीं रख सकते है। वे विभिन्न श्रेणी के थे पणिक्कर ने उन्हें निम्नांकित तीन श्रेणियों में विभाजित किया है –

1. वे जो सन्धियों के आधार पर पूर्णतया स्वतन्त्र थे।

2. वे जो सन्धियो के आधार पर अपने अधिकारों का उपयोग किसी अन्य बड़ी शक्ति की देखभाल में करते थे और

3. वे जिनके अधिकार सनद या घोषणा–पत्रों पर आधारित थे।

द्वितीय, हमे ध्यान रखना पड़ता है कि उनके सम्बन्धों में कुछ परिस्थितियों के कारण, कुछ अंग्रेज कम्पनी के अधिकारियों के विचारों के कारण, कुछ विभिन्न गवर्नर जनरलों के विचारों और उनकी महात्वकांक्षाओं के कारण, तथा कुछ वैलेजली और उसके सद्देश्य अन्य गवर्नर जनरलां के इस विचार के कारण कि अंग्रेज भारत की सर्वोच्च सत्ता है, परिवर्तन होत रहे है।

विलियम ली वार्नर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक भारत की देशी रियासतें में 1919 ई. के सुधारों के समय तक अंग्रेजी सरकार के भारतीय राज्यों के साथ सम्बन्ध के विषय में निम्नलिखित तीन युगों का उल्लेख किया है '

1. रिंग–फेन्स नीति का युग, जो 1765 से 1813 ई. तक रहा।

2. अधीनस्थ अलगाव की नीति का युग, जो 1813 ई. से 1858 तक रहा।

3. अधीनस्थ संघ की नीति का युग जो 1858 से 1919 ई. तक रहा।

2.1 रिंग–फेन्स नीति :

ली वार्नर के अनुसार इस समय में अंग्रेज कम्पनी ने भारतीय नरेशों के साथ स्वतन्त्र नरेशों की भांति व्यवहार किया और उनके पारस्परिक सम्बन्धों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। परन्तु कुछ अवसरों पर, जैसे वारेन हेस्टिंग्ज और लॉर्ड वैलेजली के समय में इन राज्यों के पारस्परिक मामलों में कम्पनी ने हस्तक्षेप किया। बनारस की सन्धि, रूहेला–युद्ध और प्रथम मराठा युद्ध,

Gram Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

द्वितीय मैसूर–युद्ध, तृतीय मैसूर–युद्ध, चतुर्थ मैसूर–यूद्ध और द्वितीय मराठा युद्ध इसके उदाहरण है। वैलेजली ने अवध और हैदराबाद के राज्यों को भी सहायक सन्धि मानने के लिए विवश किया। लॉर्ड मिन्टों ने भी इसी समय 1809 ई. में महाराजा रणजीतसिंह से अमृतसर की सन्धि की थी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस युग में भी अंग्रेजों ने भारतीय राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति का पालन पूर्णतया नहीं किया। जहां कही और जब कभी अंग्रेजों के हितों की सुरक्षा के लिए हस्तक्षेप करना आवश्यक समझा गया, वहां अंग्रेजों ने हस्तक्षेप किया। वास्तविक कारण यह था कि अंग्रेज आरम्भ में इतनी दृढ़ स्थिति में न थे कि वे प्रत्येक स्थान पर हस्तक्षेप कर सकते थे। वे उस समय भारत की विभिन्न शक्तियों में से एक थे। इस कारण वे उस समय तक इन राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करना पसन्द नहीं करते थे जब तक कि वह उनकी सुरक्षा के लिए आवश्यक न हो। वारेन हेस्टिंग्ज ने मराठों के आक्रमणों से सुश्रखा पानेहेतु अवध और रूहेलखण्ड में हस्तक्षेप किया था। प्रथम मराठा–युद्ध और द्वितीय मराठा–युद्ध भी इसी आधार पर लड़े गये थे।

लॉर्ड वैलेजली ने अपनी सहायक सन्धि की नीति और युद्धों से अंग्रेजों को भारत की एक प्रभुत्व शक्ति बना दिया। परन्तु उस समय में भी भारतीय राज्यों और अंग्रेजों के सम्बन्धों पर विचार करते हुए निम्नलिखित दो बातें स्पष्ट है –

1. मैसूर–राज्य के अतिरिक्त अन्य सभी राज्यों से सन्धियां समता के आधार पर की गयी थी। उनमें कम्पनी ने किसी प्रकार के बडप्पन अथवा साम्राज्यवादी अधिकार का दावा नहीं किया था और प्रत्येक सन्धि यह स्पष्ट करती थी कि जिन राज्यों को जीता नहीं गया था, उनसे लेने देने की भावना पर सम्बन्ध स्थापित किये गये थे।

2. प्रतयेक सन्धि यह स्पष्ट करती थी कि शासक का अपनी प्रजा पर पूर्ण अधिकार होगा और राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की भावना का प्रत्येक सन्धि खण्डन करती थी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैलेजली के समय तक भी अंग्रेजों ने राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करने के अधिकार को स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया था। वे ऐसे अधिकार का कोई दावा नहीं करते थे यद्यपि आवश्यकतानुसार हस्तक्षेप अवश्य करते रहे थे। 1809 ई. में अमृतसर की सन्धि भी रणजीतसिंह के सतलज नदीं के इस पार बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के आशय मात्र से की गयी थी।

2.2 अधीनस्थ अलगाव की नीति (1813–1858 ई.) :

1805 ई. में लॉर्ड वैलेजली ने अंगेजी सत्ता को भारत की सर्वश्रेष्ठ शक्ति बना दिया। उसकी सहायक सन्धि के कारण अधिकांश भारतीय नरेश अपनी विदेशी नीति की स्वतन्त्रता को ही नहीं खो बैठे बल्कि अपनी आन्तरिक नीति पर भी उनका पूर्ण अधिकार न रहा। परन्तु जो भी कार्य उससे बाकी रह गया उसे लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने अपने समय में पूरा कर दिया और 1818 ई. तक अंग्रेज भारत में सर्वोच्च शक्ति बन गये। लॉर्डहेस्टिंग्स ने भारतीय नरेशों से जो भी सन्धियां की उनके अनुसार भारतीय नरेशों ने अपनी विदेश नीतियां पूर्णतया अंग्रेजों के हाथों में दे दीं। आन्तरिक नीति के विषय में यद्धपि यह स्वीकार किया गया था कि अंग्रेज कोई हस्तक्षेपनहीं करेंगे फिर भी वास्तविकता में अंग्रेजों का हस्तक्षेप निरन्तर बढ़ता गया। अवध, मैसूर, नागपुर, उदयपुर, जयपुर आदि राज्यों में किये गये हस्तक्षेप इस बात के प्रमाण थे। किस राज्य में कितना हस्तक्षेप किया गया, यह अंग्रेज रेजीडेण्टों के व्यक्तित्व और स्वभाव पर निर्भर करता था। लेकिन लॉर्ड हेस्टिंग्ज के विषय में यह बात स्वीकार की जाती है कि यद्यपि उसकी नीति अग्रगामी थी परन्तु वह राज्य विस्तार का समर्थक न था। उसने अंग्रेजी प्रभाव को बढ़ाने का प्रयत्न अवश्य किया परन्तु साम्राज्य विस्तार हेतु वह उत्सुक न था। लॉर्ड एम्हर्स्ट को बर्मा युद्ध के कारण राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करने का अवसर नहीं मिल पाया लेकिन फिर भी भरतपुर राज्य में उसे हस्तखेप करना पड़ा जबकि दुर्जनसाल ने राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी राजा बलदेवसिंह की गद्दी पर अधिकार कर लिया और अंग्रेजों के विरूद्ध मराठा और राजपूतों से मिलने का प्रयत्न किया। लॉर्ड हेस्टिंग्स और 1857 ई. के विद्रोह के बीच के समय में अंग्रेजों और भारतीय शासकों के सम्बन्धों पर दृष्टिपात करते हुए निम्नलिखित दो बातें स्पष्ट होती है।

1. भारतीय नरेशों के आन्तरिक मामलों में अंग्रेज रेजीडेण्ट का हस्तक्षेप निरन्तर बढ़ता गया, और
2. इस समय के गवर्नर जनरल स्पष्ट रूप से साम्राज्यवादी थे और अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार करते गये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अंग्रेजों की इस साम्राज्यवादी नीति के आधार राजनीतिक और आर्थिक दोनों ही थे। राजनीतिक आधार पर उनकी लालसा अधिकाधिक भारतीय भूमि को प्रत्यक्ष रूप से अपने राज्य में सम्मिलित करने की थी। आर्थिक आधार पर वे जानते थे कि जितनी अधि ाक भूमि उनके पास होगी उतनी ही आवागमन की सुविधा उन्हें प्राप्त होगी, उतनी ही उनकी आय बढ़ेगी और उतनी ही उनके व्यापार की उन्नति होगी। इस कारण, इस समय में अंगेजों ने साम्राज्य विस्तार और आर्थिक लाभ की आशा से भारतीय नरेशों की अधिक से अधिक भूमि पर अधिकार किया। अंग्रेजों के कथनानुसार भारतीय नरेशों के दोषपूर्ण शासन से भारतीय प्रजा की रक्षा करने तथा उन्हें अंग्रेजी शासन की सुविधाएं प्रदान करने के लिए अंग्रेजों ने यह साम्राज्य विस्तार किया। परन्तु स्पष्ट है कि यह केवल बहाना मात्र था। इसमे कोई सन्देह नही कि भारतीय नरेशों का शासन दोषपूर्ण था परन्तु इसके लिए स्वयं अंग्रेज भी उत्तरदायी थे। अंग्रेज रेजीडेण्टों के विस्तृत अधिकारों और उचितानुचित हस्तक्षेप के कारण भारतीय नरेश अपने शासन में कोई सुधार करने की स्थिति में न थे। स्वयं हेनरी लॉरेन्स ने 1848 ई. में लिखा था कि ''अगर कुशासन की व्यवस्था के लिए कोई तरीका है तो वह यह है कि एक भारतीय नरेश और उसका मंत्री एक अंग्रेज रेजीडेण्ट द्वारा चालित संगीनों पर निर्भर करें।

सम्राज्य विस्तार की यह नीति, जो लॉर्ड विलियम बेन्टिक के समय से आरम्भ हुई, लॉर्ड ऑकलैण्ड के समय में दृढ़ की गयी। 1841 ई. में डायरेक्टरों की सभा ने घोषणा की कि ''न्याय और सम्मान के साधनों द्वारा किसी भी भूमि और आय को ग्रहण करने का अवसर नहीं छोड़ा जोयगा। लॉर्ड डलहौजी के समय में यह नीति अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी, जबकि युद्ध द्वारा ही नहीं बल्कि 'गोद की प्रथा' और 'शासन व्यवस्था के दोषों' के आधार पर अधिकाधिक भारतीय राज्यों को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया गया। 'गोद की प्रथा' के अनुसार यदि किसी भारतीय नरेश की मृत्यु हो जाय और उसका स्वयं का कोई उत्तराधिकारी न हो तो उसके राज्य की सत्ता अर्थात् सर्वोच्च शक्ति अंग्रेजों के हाथों में चली जायेगी। उन नरेशों को किसी बच्चे को गोद लेने का अधिकार नहीं दिया गया। उसके लिए अंग्रेजों की स्वीकृति की आवश्यकता थी। परन्तु यह कहना कि अंग्रेजो पर निर्भर करते थे या जिनका अंग्रेजों द्वारा निर्माण किया गया था। परन्तु यह कहना कि अंग्रेजों ने भारत में कुछ राज्यों का निर्माण किया था, अंग्रेज मुगल बादशाह के पश्चात् सर्वोच्च सत्ता थे और भारतीय नरेशों को बच्चा गोद लने के लिए उनकी स्वीकृति की आवश्यकता थी जिसे वे अस्वीकार भी कर सकते थे, विवादपूर्ण है। अंग्रेजों के इन अधिकारों का मुख्य आधार शक्ति था, न कि कोई नैतिक आधार। सत्यता यह है कि साम्राज्यवाद के सिद्धान्त का आरम्भ 1834 ई. से ही हो गया था परन्तु डलहौजी ने उसका विस्तृत रूप से कार्यरूप में परिणाम किया। इन्स डलहौजी के विषय में लिखता है कि उससे पहले के गवर्नर जनरल साधारणतया इस सिद्धान्त पर कार्य करते थे कि साम्राज्य का विस्तार न किया जाये, यदि वह टल सकता है। डलहौजी ने साधारणतया इस सिद्धान्त का पालन किया कि साम्राज्य विस्तार करना चाहिए जहां कही ऐसा सम्भव हो। इसमें भी सन्देह नहीं कि डलहौजी की नीति का समर्थन कम्पनी के डायरेक्टरों ने भी किया। करौली राज्य को छोड़कर डलहौजी द्वारा हस्तगत किये गये सभी राज्यों को डायरेक्टरों की स्वीकृति से अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया गया था।

इस समय में सिन्ध, पंजाब, बर्मा और असम युद्ध द्वारा अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किये गये। इनके अतिरिक्त समय–समय पर अन्य राज्यों को भी विभिन्न आधारो पर अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया गया। 1831 ई. में शासन की खराबी के आधार पर उदयपुर और मैसूर के शासकों को हटाया गया और 1881 ई. तक वहां अंग्रेजों ने शासन किया। इसी आधार पर कछार, कुर्ग, मणीपुर और जैन्तिया के राज्यों को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया गया। 1842 ई. में लॉर्ड ऑकलैण्ड ने कुर्नूल को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया। 1843 ई. में लॉर्ड एलनबरों ने ग्वालियर राज्य में सशस्त्र हस्तक्षेप किया। यद्यपि ग्वालियर को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित नही किया गया परन्तु एक सन्धि के द्वारा उसकी सेना कम कर दी गयी और उसे एक संरक्षित राज्य घोषित कर दिया गया। डलहौजी से पहले भी गोद की प्रथा के आधार पर 1839 ई. में मांडवी, 1840 ई. में कोलाबा और जालौन तथा 1842 ई. में सूरत को अंग्रेजी राज्य मे सम्मिलित किया गया था। डलहौजी के समय में इस आधार पर 1848 ई में सतारा, 1850 ई..में जैतपुर, सम्भलपुर और बैजहट, 1852 ई. में उदयपुर, 853 ई मे झांसी और 1854 ई. में नागपुर को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया गया। डलहौजी ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा था कि ''जिन राज्यों की उत्पत्ति हमारी सनद या मेहरबानी से हुई थी, यदि वहां पर कोई उत्तराधिकारी नहीं है, तो हम अपनी सनद के आधार पर ही उसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लेते है। लेकिन डलहौजी का उपर्युक्त विचार विवदपूर्ण है। अंग्रेजो ने भारत मे किसी राज्य की स्थापना की थी, यह कहना गलत है। प्रत्येक राज्य किसी न किसी रूप में अंग्रेजो से पहले ही विद्यमान था। इस कारण डलहौजी का मुख्य आधार साम्राज्यवादी था, यह स्पष्ट है। सतारा और नागपुर राज्यो को हस्तगत कर लेने के विषय मे डलहोजी के समर्थक ली वार्नर ने भी लिखा है कि उसके लिए साम्राज्यवादी कारण प्रमुख थे

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Jodhpur

ये बम्बई और मद्रास तथा बम्बई और कलकत्ता के मार्ग में पड़ते थे। इन्हें अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करके अंग्रेजी राज्य को संगठित किया गया। इसके अलावा 1850 ई. मे सिक्किम के राजा से 1676 वर्ग मील का भू–क्षेत्र प्राप्त किया गया और 1853 ई. में हैदराबाद से बरार का सूबा लिया गया। डलहौजी ने अनेक राजाओं की पेशन आदि भी बन्द कर दी तथा 1856 ई. में शासन की खराबी के आधार पर अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया।

2.3 अधीनस्थ संघ की नीति :

1857 ई. के विद्रोह के पश्चात् अंग्रेजों और भारतीय नरेशों के सम्बन्धों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। भारतीय नरेशों ने विद्रोह के समय में अंग्रेजों को बहुत सहायता दी थीजिसके उपलक्ष में उनमें से अनेक को पद, सम्मान और भू–क्षेत्र प्रदान किये गये। 1858 ई. में जब ब्रिटिश उन ने भारत की राजसत्ता अपने हाथ में ली तो भारतीय नरेशों से कम्पनी द्वारा की गयी सन्धियों को पूर्णत: स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार कानूनी तौर पर तो अंग्रेजों और भारतीय नरेशों के सम्बन्धों में तुरन्त कोई परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु व्यवहारिक दृष्टि से धीरे– धीरे उनके सम्बन्धों में परिवर्तन होता गया। सर्वप्रथम भारतीय राज्यों की अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने की नीति को छोड़ दिया गया। 1858 ई. में महारानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा में स्पष्ट किया कि ''हमें अपने वर्तमान राज्य की सीमाओं में वृद्धि करने की कोई इच्छा नहीं है। हम अपनी सीमाओं और अधिकारों पर किसी अन्य के द्वारा अधिकार करना पसन्द नहीं करते और हम किसी अन्य की सीमा या अधिकारों को छीनने का प्रयत्न नहीं करेंगे। द्वितीय, उसी अवसर पर यह भी स्वीकार किया गया कि हिन्दू और मुसलमान दोनों को अपने धर्म अनुसार किसी भी बालक को उत्तराधिकारी के रूप में गोद लेने का अधिकार है परन्तु यह स्पष्ट कर दिया गया कि ऐसे प्रत्येक अवसर पर भारतीय नरेशों को अपने उत्तराधिकारी के लिए ब्रिटिश सरकार की अनुमति लेनी पड़ेगी।

इस प्रकार रानी की घोषणा द्वारा भारतीय नरेशों की उनकी सीमाओं और सम्मान की सुरक्षा का आश्वासन अवश्य दिया गया परन्तु भारतीय राज्य निश्चित रूप से ब्रिटिश सरकार के अधीन स्वीकार किये गये। आगे आने वाले समय में भारत सरकार की नीति का आधार था कि भारतीय राज्य स्वतन्त्र और विदेशी राज्य नहीं है,, बल्कि भारत के सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य का एक भाग है जिसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व भारत सरकार पर है। लॉर्ड कैनिंग ने 1862 ई. में घोषणा की कि इंग्लैण्ड का क्राउन ही भारत की निर्विवाद सर्वोच्च सत्ता है। लॉर्ड कैनिंग से लॉर्ड कर्जन तक सभी गवर्नर जनरलों ने निरन्तर इसी बात पर बल दिया कि अंग्रेज सरकार भारत की सर्वोच्च सत्ता है, और विभिन्न तरीकों व कारणों द्वारा अंग्रेज सरकार का अधिकार भारतीय राज्यों पर बढ़ता गया। 1875 ई. में प्रिन्स ऑफ वेल्स इसी उद्देश्य से भारत आया तथा 1876 ई. में लॉर्ड लिटन ने दिल्ली दरबार का आयोजन किया जिसमें महारानी विक्टोरिया को भारत की सम्राज्ञी घोषित किया गया।

इस समय में भारत सरकार ने भारत की राजनीतिक एकता के सिद्धान्त को भी आरम्भ किया। भारत के समस्त महत्वपूर्ण स्थानों कोु रेल और तार द्वारा एक–दूसरे से जोड़ दिया गया और ऐसा करने में राज्य की सीमाओं का कोई ध्यान नहीं रखा गया। पोस्ट ऑफिस की व्यवस्था भी भारत सरकार ने अपने हाथों में रखी। अंग्रेजों की मुद्रा सम्पूर्ण भारत में सर्वमान्य हो गयी। विश्वविद्यालय ऐसे स्थान बन गये जहां सम्पूर्ण भारत के विद्यार्थी पढ़ने के लिए जाने लगे। अंग्रेजों द्वारा स्थापित उच्च न्यायालय भारतीय नरेशों के न्यायालायों के लिए आदर्श बन गये। भारत सरकार ने अस्त्र–शस्त्रों पर अपना पूर्ण अधिकार रखा। राज्यों के दीवानों, मुख्य–मंत्रियों तथा अन्य बड़े पदाधिकारियों की नियुक्ति के लिए भारत सरकार की स्वीकृति आवश्यक हो गयी। अल्पायु के भारतीय नरेशों के लिए संरक्षक नियुक्त करने अथवा उनके शासन की देखभाल करने का अधिकार भी भारत सरकार को प्राप्त हो गया। राज्य के लिए कोई महत्वपूर्ण कानून बनाने हेतु भारत सरकार की स्वीकृति आवश्यक हो गयी। इस प्रकार धीरे–धीरे स्पष्ट हो गया कि हर महत्वपूर्ण विषय में अब अन्तिम उत्तरदायित्व भारत की अंग्रेज सरकार का है और भारतीय नरेश पूर्णतया उसके अधीन है।

राजनीतिक एकता के इस सिद्धान्त को स्वीकार करने से अंग्रेजों के अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों में वृद्धि हुई। 1860 ई. में लॉर्ड कैनिंग ने यह घोषणा कीकि भारत सरकार को भारतीय नरेशों के कुशासन को दूर करने का अधिकार है। लॉर्ड मेयो ने राजपूताना के शासकों के सामने कहा था कि ''अगर हम तुम्हारा भी यह कर्तव्य है कि तुम उन व्यक्तियों के अधिकारों और विशेष सुविधाओं का ध्यान रखा जो तुम्हारे अधीन है। अगर हम तुम्हारी शक्ति को स्थापित रखने में तुम्हे सहायता देते है तो तुम से भी अच्छे शासन की अपेक्षा की जाती है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लॉर्ड मेयो ने भारतीय राज्यों से अपने सम्बन्धों के विषय में निम्नलिखित तीन बातें स्पष्ट की थी –

1. अंग्रेज भारतीय शासकों के कुशासन के अवसर पर उनके राज्यों में हस्तक्षेप करने का पूर्ण अधिकार रखते थे।
2. यदि किसी योग्य शासक के विरूद्ध राज्य में कोई विद्रोह होता है तो अंग्रेज उस विद्रोह को दबायेंगे।
3. किसी भी राज्य में अंग्रेज गृहयुद्ध नहीं होने देंगे।

भारतीय राज्यों में विभिन्न समय पर अंग्रेजों ने हस्तक्षेप किया। उन हस्तक्षेपों में तीन उदाहरणस्वरूप लिये जा सकते है – बड़ौदा का मामला मणीपुर का मामला और हैदराबाद का मामला।

बड़ौदा राज्य के शासक मल्हार राव पर कुशासन का आरोप लगाया गया और इस पर विचार करने के लिए तीन व्यक्तियों के एक कमीशन की नियुक्ति की गयी। उसे शासन को ठीक करने के आदेश दिये गये। परन्तु एक वर्ष के पश्चात् उस पर यह अरोप लगाया गया कि उसने अंग्रेज रेजीडेण्ट को जहर देने का प्रयत्न किया था। 13 जनवरी 1875 ई. को मल्हाराव को कैद कर लिया गया। उसका न्याय करने के लिए एक विशेष न्यायालय का निर्माण किया गया जिसमें तीन अंग्रेज और तीन भारतीय न्यायाधीश थे। भारतीयों में सिन्धिय, जयपुर का शासक और राजा सर दिनकरराव थे। भारतीय न्यायाधीशों ने यद्यपि मल्हारराव को निर्दोष पाया, फिर भी भारत सरकार ने उसे और उसके उत्तराधिकारियों को गद्दी से वंचित कर दिया।

1891 ई. में मणीपुर में विद्रोह हुआ। इस कारण राजा शूरचन्द्रसिंह को गद्दी से हटा दिया गया, उसके भाई सेनापति को फांसी दे दी गयी और एक अंग्रेज प्रतिनिधि के संरक्षण में राज्य एक बालक को सौप दिया गया। इस झगड़े से अंग्रेज और भारतीय नरेशों के सम्बन्धों के विषय में निम्नांकित सिद्धान्त निर्धारित हुए –

1. अंग्रेजों को किसी भी राज्य के उत्तराधिकार के प्रश्न को निर्णय करने का अधिकार था।
2. अंग्रेजों की आज्ञा का पालन न करना राजा के द्वारा विद्रोह माना जा सकता था।
3. अंग्रेजो को भारतीय राजाओ अथवा अंग्रेजों के विरोधी राज्य के व्यक्तियो को कठोर से कठोर दण्ड देने का अधिकार था।
4. भारतीय राज्यों के विषय में अन्तर्राष्ट्रीय कानून स्वीकार नहीं किये जा सकते थे।

1926 ई. में हैदराबाद के राज्य में हस्तक्षेप किया गया और उस समय यह स्पष्ट कर दिया गया कि भारतीय नरेश अंग्रेजों के सरंक्षण के कारण ही सुरक्षित है। इस कारण आन्तरिक अशान्ति या विद्रोह की स्थिति में अंग्रेजों को भारतीय नरेशों के राज्यों में हस्तक्षेप करने का पूर्ण अधिकार है।

लॉर्ड कर्जन ने सर्वोच्च सत्ता के अधिकारों पर बहुत बल दिया परन्तु उसके समय में भारत में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध जो असन्तोष फैला उससे अंग्रेजों ने अपने व्यवहार में कुछ परिवर्तन करने का प्रयत्न किया। यद्यपि यह परिवर्तन कर्जन से पहले ही आरम्भ हो गया था परन्तु कर्जन के पश्चात् इस दिशा में कुछ निश्चित कदम उठाये गये। सर्वप्रथम, भारतीय नरेशों की सेना को भारतीय सेना का एक अंग स्वीकार किया गया और उनकी शिक्षा का प्रबन्ध अंग्रेज अफसरों द्वारा किस गया। द्वितीय, भारतीय नरेशों को आपस में सम्पर्क स्थापित करने का अवसर दिया गया। भारतीय नरेशों की एक सलाहकार समिति बनाने का विचार लॉर्ड लिटन ने आरम्भ किया था। उसके पश्चात् लॉर्ड कर्जन, लॉर्ड मिन्टो आदि ने भी इस विचार को कार्य–रूप में परिणाम करने का प्रयास किया, परन्तु ब्रिटिश सरकार के विरोध के कारण यह कार्य सम्भव न हो सका। लेकिन प्रथम महायुद्ध के पश्चात यह आवश्यक समझा गया कि भारतीय नरेशों को ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के कार्य में सम्मिलित किया जाये। लॉर्ड हार्डिन्ज ने भारतीय नरेशों को समय–समय पर सलाह करने के लिए बुलाना आरम्भ किया। बाद में मोन्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया कि भारतीय नरेशों की एक स्थाई परिषद होनी चाहिए और इस आधार पर 1921 ई. में एक राजाओं की परिषद् भी स्थापित गयी।

यह समय भी अधीनस्थ संघ की नीति का ही रहा जिसमें एक तरफ राजाओं की परिषद् के द्वारा भारतीय नरेशों से सम्पूर्ण भारत के शासन की एकता को स्थापित रखने हेतु सहयोग लेने का प्रयत्न किया गया और दूसरी तरफ भारत सरकार के सर्वोच्चता के सिद्धान्त को अधिक स्पष्ट किया गया। राजाओं की परिषद् की स्थापना से दो बातें स्पष्ट हुई थी – प्रथम, भारतीय नरेशों को अपने राज्यों के विषय में आपस में बातचीत करने का अधिकार है। दूसरे सम्पूर्ण भारत के लिए किसी भी नीति को निश्चित करते समय भारतीय नरेशों को अपने राज्यों के विषय में आपस में बातचीत करने का अधिकार है। दूसरे सम्पूर्ण भारत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के लिए किसी भी नीति को निश्चित करते समय भारतीय नरेशों से सलाह ली जायेगी। इससे भारतीय नरेशों के अधिकारों में कुछ वृद्धि तो अवश्य हुई परन्तु उसकाप्रभाव भारत–सरकार की सर्वोच्च सत्ता पर नहीं पड़ा। यह बात लॉर्ड रीडिंग के उस पत्र से स्पष्ट होती है जो उसने 17 मार्च, 1926 ई. को हैदराबाद के निजाम के पत्र से स्पष्ट होती है ो उसने 17 मार्च, 1926 ई. को हैदराबाद के निजाम के कोई स्वतन्त्र अधिकार न थे और सर्वोच्चता के आधार पर भारत सरकार उसके राज्य के आन्तरिक मामलों में कभी भी हस्तक्षेप कर सकती थी।

भारतीय नरेशों को इस पत्र की भावना और भाषा से बहुत चिन्ता हुई और उन्होंने अपने अधिकारों के स्पष्टीकरण की इच्छा व्यक्त की। इसके परिणामस्वरूप, 1928 ई. में बटलर–समिति (उसके सभापित बटलर के नाम से विख्यात) की स्थापना हुई। इस समिति ने भारत सरकार के सर्वोच्चता के अधिकार को ही स्पष्ट नहीं किया बल्कि एक और बात भी स्पष्ट की कि सम्पूर्ण भारत की आर्थिक उन्नति अथवा शासन में परिवर्तन हेतु किसी भी जन आन्दोलन की स्थिति में भारत सरकार भारतीय नरेशों के राज्यों में हस्तक्षेप करेगी।

इस समय तक भारतीय नरेशों के राज्यों को एकीकृत करके भारत में एक संघ राज्य के निर्माण का विचार बन चुका था। नेहरू समिति और भारतीय स्टेट्यूरी कमीशन ने इसके पक्ष में अपने विचार प्रकट किये थे तथा भारतीय नरेशों ने इस सम्बन्ध में आयोजित विभिन्न गोलमेज परिषदों में भाग ही नहीं लिया गया था वरन् संघ राज्य के पक्ष में अपने विचार भी प्रकट किये थे। 1935 ई. के भारत सरकार कानून के द्वारा भारत में संघ राज्य की स्थापना की व्यवस्था की गयी यद्यपि देशी नरेशों के राज्यों का उसमें सम्मिलित होना उनकी इच्छा पर छोड़ दिया गया। 1937 ई. में नवीन एक्ट को कार्य रूप में परिणत करने हेतु चुनाव हुए परन्तु विभिन्न कारणों और मुख्यतया द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ हो जाने से नवीन शासन पद्धति को प्रारम्भ नहीं किया जा सका।

द्वितीय महायुद्ध के अवसर पर अखिल भारतीय कांग्रेस ने भारत सरकार के साथ सहयोग करने से इंकार कर दिया। भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने हर सम्भव प्रयत्न किये और विभिन्न योजनाएं प्रस्तुत की गयी, जैसे क्रिप्स योजना, वैवेल योजना, कैबिनेट मिशन योजना आदि। इन योजनाओं में इस बात पर विशेष बल दिया गया था कि भारत के स्वतन्त्र होने पर भारतीय नरेशों से ब्रिटिश सर्वोच्चता समाप्त हो जायेगी। 20 फरवरी, 1947 ई. की ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली की घोषणा और 3 जून, 1947 ई. की भारत के गवर्नर जनरल माउन्टबेटन की योजना में भी यही स्पष्ट किया गया कि भारत के स्वतन्त्र होने पर ब्रिटिश सर्वोच्चता समाप्त हो जायेगी और भारतीय राज्य भारत या पाकिस्तान मे से किसी भी एक के साथ सम्मिलित होने के लिए स्वतन्त्र होंगे। कुछ भारतीय नरेश यह भी चाहते थे कि ब्रिटिश सर्वोच्चता के समाप्त होने पर उन्हें इन दोनों राज्यों से पृथक रहने का भी अधिकार होना चाहिए परन्त लॉर्ड माउन्टबेटन ने इस अधिकार को स्वीकार करने से स्पष्ट इंकार कर दिया। ऐसी स्थिति में 1947 ई में 'भारतीय स्वतन्त्रता एकट' बना जिसे परिणामस्वरूप भारत और पाकिस्तान नाम के दो राज्यों का निर्माण हुआ, भारतीय राज्यों से ब्रिटिश सर्वोच्चता समाप्त हो गयी और भारतीय नरेशों के राज्य इन दो राज्यों में से किसी भी एक के साथ मिलने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिये गये।

2.4 भारतीय राज्यों का पुनर्गठन और विलय :

15 अगस्त, 1947 ई. से पहले ही एक अस्थाई सरकार का निर्माण कर लिया गया था जिसमें सरदार पटेल गृहमंत्री के रूप में कार्य कर रहे थे। उनके प्रयत्नों से भारतीय राज्यों के पुनर्गठन और भारत में उनको सम्मिलित किये जाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। बहुत से भारतीय राज्य भारत के विभिन्न प्रान्तों के साथ सम्मिलित कर दिये गये। उड़ीसा के विभिन्न भारतीय राज्य उड़ीसा प्रान्त में सम्मिलित कर दिये गये, कुछ राज्य मध्य भारत में सम्मिलित कर दिये गये और गुजरात को बम्बई के साथ मिला दिया गया। कुछ अन्य छोटे–छोटे राज्यों के शासन को भारत सरकार नेस्वयं अपने हाथों में ले लिया, जैसे, हिमाचल प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश , त्रिपुरा, मणीपुर भोपाल, विलासपुर और कच्छ। कुछ ऐसे भी राज्य थे जिन्हें एक दूसरे के साथ सम्मिलित करके संयुक्त राज्य बना दिया गया, जैसे मत्स्य यूनियन, पेप्सू राजस्थान, काठियावाड़ यूनियन आदि। इस प्रकार अधिकांश भारतीय राज्य भारत के साथ सम्मिलित हो गये। कुछ राज्य पाकिस्तान के साथ भी सम्मिलित हुए। केवल दो बड़े राज्यों कश्मीर और हैदराबाद ने अपने को स्वतन्त्र राज्य बनाये रखने का प्रयत्न किया, परन्तु उन्हें असफलता मिली। 1948 ई. में कश्मीर और हैदराबाद दोनों ने ही विभिन्न परिस्थितियों वश भारत के साथ सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय नरेशों के राज्य भारत से समाप्त हो गये। समय के अनुसार उनका पुनर्गठन भी किया गया है। उनमें और भारत के अन्य राज्यों में आरम्भ में जो अन्तर थे उन्हें समाप्त कर दिया गया है और अब सम्पूर्ण भारत के लिए एक संविधान, एक शासक व्यवस्था और एक नागरिकता है।

2.5 सम्बन्धों का प्रभाव :

सन् 1757 के प्लासी युद्ध से आजादी तक अनेक सोपानात्मक स्तरों में ब्रिटिश सर्वोच्चता का विकास हुआ। इसके दो पक्षीय प्रभावों का आकलन सहज ही किया जा सकता है। कई इतिहासकार ब्रिटिश शासन को भारतीय रियासतों के लिए लाभकारी मानते है। इसके इतिहासकार ब्रिटिश शासन को भारतीय रियासतों के लिए लाभकारी मानते है। इसके सकारात्मक पक्ष को देखा जाये तो कहा जा सकत है कि रियासतों में शांति व्यवस्था की स्थापना साम्रज्यवादी सत्ता के भय से बनाये रखने की कोशिश स्थानीय शासकों ने की।

ब्रिटिश नौकरशाही के प्रयासों से सम्पूर्ण भारत में धीरे–धीरे विकास हुआ और शासन में स्थिरता बनी। संचार व्यवस्था के विकास को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। यद्यपि अंग्रेजों का उद्देश्य भारतीयों को प्रारम्भ में यह सुविधा उपलब्ध करवाना नहीं था। अपितु राज में शान्ति व्यवस्था के लिए संचार व्यवस्था का विकास आवश्यक माना गया। रेलवे व सड़क यातायात की पृष्ठभूमि भी ब्रिटिश आर्थिक हितों से निबद्ध थी लेकिन इनके विकास से भारतीय रियासतों में राष्ट्रवाद की लहर फैली। रियासती शासकों ने इस डर से प्रशासन एवं न्याय व्यवस्था में सुधार के प्रयास किये कि इस और उदासीनता के आरोप में उनका राज्य हड़प नीति का शिकार न बन जाए।

ब्रिटिश भारत में शिक्षा के विकास के साथ–साथ देशी राज्यों में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का विकास संभव हुआ। यदि यह कहा जाये कि भारत के अन्य भागों का प्रभाव रियासतों पर हुआ और सामाजिक कुप्रथाओं का उन्मुलन इस परिपेक्ष्य में हुआ तो अनुचित न होगा।

नकारात्मक पक्ष में देशी राज्यों के अधिकारों का हनन अथवा संकुचन ब्रिटिश सर्वोच्चता की नीति का अंग था। उत्तराधिकार या दत्तक पुत्र जैसे मामलों में राज्यों के लिए भारत सरकार की अनुमति आवश्यक मानी गई, जो उनकी सम्प्रभुता के उन्मूलन का प्रतीक थी। सामन्तों एवं राजा के मध्य विवादों में ब्रिटिश मध्यस्थता भी इस तथ्य की द्योतक थी कि रियासतों के स्वतंत्र अस्तित्व पर अंग्रेज भारी आघात कर रहे थे। इसी प्रकार सैनिक शक्ति को सीमित करना, अल्पवयस्क शासक के समय अंग्रेजों द्वारा शासन प्रबन्ध तथा रेजीडेंटों का हस्तक्षेप इसी श्रृंखला के अंग थे।

2.6 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – अधीनस्थ अलगाव की नीति का युग कब से कब तक था?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – भारतीय राज्यों का पुनर्गठन और विलय पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – ब्रिटिश सर्वोच्चता का भारतीय रियासतों में विकास को विवेचित किजिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 3
ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था एवं कृषक वर्ग पर प्रभाव

3.0 भूमिका
3.1 स्थायी बन्दोबस्त के पूर्व स्थिति
3.2 भूमि का स्थायी बन्दोबस्त
3.2.2 बन्दोबस्त के दोष
3.3 रैयतवाड़ी बन्दोबस्त
3.3.1 रैयतवाड़ी के प्रमुख उपबन्ध
3.3.2 बन्दोबस्त का प्रभाव
3.4 महलवाड़ी बन्दोबस्त
3.4.1 महलवाड़ी बन्दोबस्त का कृषकों पर प्रभाव
3.5 बोध प्रश्न

3.0 भूमिका :

मुगल काल में टोडरमल ने मालगुजारी के मानक निर्धारित किये थे और यह भी जानकारी मिलती है कि उसने बंगाल में लगान बन्दोबस्त जमींदार के साथ किया। जमींदारों को अबुल फजल ने 'धनाढ्य और शक्तिशाली' वर्ग की संज्ञा दी। उस समय भूराजस्व 'असल जमा तुमार' के नाम से जाना जाता था। जमींदार को सरकारी आदेशों के पालन एवं मालगुजारी की अदायगी की शर्त पर उसे वंशानुगत रूप से किसी परगने याचकल (इलाके) का स्वामित्व प्राप्त था। एन.के. सिन्हा लिखते है कि 'ब्रिटिश प्रशासकों में जॉनशोर को मुगल भूराजस्व प्रणाली का अच्छा ज्ञान था, उसके अपने एक विवरण मेंलिखा है, 'जमींदार का सरकार से और रैयतों को बिना वास्तविक भू–सम्पति के ही कई अधिकार होते है।। यह भूस्वामित्व और रैयती अधिकार कुछ हद तक आपसी विवेक पर आधारित है।' मुगलकालीन मालगुजारी व्यवस्था मुर्शिद कुली खाँ के समय तक बंगाल में प्रचलित रही। अलीवर्दी खाँ का व्यवहार जमींदारों के प्रति अधिक कठोर नहीं था तथापि मालगुजारी की वसूली में गिरावट नहीं आई। सिराजुद्दौला को पराजित किये जाने के बाद जुलाई, 1757 में चौबीस–परगना जिला अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने स्वयं मालगुजारी की वसूली के प्रयास किये। 1759 में लगान वसूली का कार्य ठेके पर दे दिया गया। हॉलवेल की धारणा थी कि, ''जब तक भूमि हम लोगों के हाथों में रहेगी हम लोग उसका असली मूल्य नहीं जान पायेंगे।'' अतः उसने प्रत्येक परगने में खुली बोली लगाने की सलाह दी। मालगुजारी देने वाले अधीनस्थ इजारेदारों ने इसका विराध किया। लेकिन अंग्रेजों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया और तीन साल के लिए लगानवसूली कार्य ठेके पर दे दिया गया। कम्पनी ने चौबीस परगना में प्रत्यक्ष प्रशासन और इजारेदारी दोनो का प्रयोग किया किन्तु दोनों प्रयोग असफल रहे। कम्पनी द्वारा भूराजस्व वसूली स्थानीय कर्मचारियों की बेईमानी के कारण सफल न रही तथा नये इजारेदारों ने रैयतों पर घोर अत्याचार किया।

लेकिन उससे आय बहुत कम थी। दूसरे पथकर एवं आबकारी का भी अधिक महत्त्व नहीं था, क्योंकि मालगुजारी से कुल राजस्वी की अस्सी प्रतिशत प्राप्ति थी। सर जानशोर की 18 जून, 1789 की मीटिंग के आधारपर इरफान हबीब ने बढ़ते राजस्व का विवरण दिया है इससे ज्ञात होता है कि ''1762–63 में निजामी शासन के दौरान 64.5 लाख से बढ़कर कम्पनी सरकार की 'दीवानी' के पहले वर्ष में 147.0 लाख हो गया। दूसरे आंकड़ों के अनुसार बंगला का राजस्व 1765–66 में 2.26 करोड़ रू. से बढ़कर 1778–79 में 307 करोड़ रूपये हो गया।'' कहा जा सकता है कि लगभग 15 वर्ष की अल्प अवधि में ही मालगुजारी लगभग पांच गुना अधिक वसूल की जा रही थी। अत्यधिक राजस्व वसूली के घातक परिणाम हुए, 1768–69 में वर्षा के अभाव तथा 1770 में अपर्याप्त वर्षा के कारण बंगाल में अकाल पड़ा, इस घोर दुर्भिक्ष के दौर में सरकारी ने 10 प्रतिशत लगान बढ़ा दिया। एक और किसानों के पास खाने का अनाज नहीं था दूसरी और सकारी कारिन्दे जबरन राजस्व वसूली में लगे हुए

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

थे। परिणामतः सरकारी आंकड़ों के अनुसार बंगाल की एक–तिहाई लोगों की मृत्यु हो गई और कई गांव एवं कस्बे वीरान हो गये। विदेशी शासन की दिलचस्पी केवल कर संग्रहण में थी। मुगल शासन की दमनपूर्ण परिस्थितियों में भी फसल न होने पर छूट मिलती थी।

व्यवस्थित तरीके से कम्पनी द्वारा भूराजस्व वसूल करने के इतिहास का पहला दौर 1764–1772 माना जा सकता है। इस अवधि में अंग्रेजों ने मोहम्मद रजा खाँ को नायब दीवान बनाकर भूराजस्व वसूली के प्रयास शुरू किये। परीक्षण के बतौर नीलाम करके स्थानीय भूराजस्व संग्रह का भार इसके पर देना, जिले में रेवेन्यू सुपरवाइरजर कीनियुक्ति (1770), मुर्शिदाबाद और पटना में 'रेवेन्यू काउंसिल' और कलकत्ता में 'कंट्रोलिंग कमेटी' की नियुक्ति (1771 ई.) आदि कदम उठाये गए परन्तु नीलामी में एक–दो साल के लिए ठेके पर लेने वाले अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए बहुत अधिक बढ़ाकर राजस्व वसूल करते थे। इसके बावजूद कम्पनी की देय राशि पूरी नहीं हो पाती थी। अतः अकाल के दौरान स्थिति भयानक हो गई।

बंगाल के लोग दोहरी शासन व्यवस्था से व्यथित थे। एक तरफ नवाब का शासनतो दूसरी और भूराजस्व वसूली का काम अंग्रेजों के हाथों में था। दोहरी व्यवस्था में बंगाल के लोग घोर संकट में फंस गये और सबसे खराब स्थिति अकाल के दौरान हुई। उस भयानक स्थिति का विवरण बंकिम बाबू के 'आनन्द मठ' में इसप्रकार मिलता है, ''अंग्रेज उन दिनों बंगाल के दीवान थे। वे सरकारी मालगुजारी के पैसे तो वसूल कर लेते थे, पर तब तक उन्होंने बंगालवासियों के जान माल की सुरक्षा की जिम्मेदारी नहीं ली थी। उन दिनों पैसे वसूलने की जिम्मेदारी तो अंग्रेजों की थी और जान–माल की सुरक्षा का भार पापी, नराधम, विश्वासघाती, मनुष्य जाति के कलंक मीरजाफर पर था। मीरजाफर गोली खाता था और पांव फैलाकर सोता था। अंग्रेज पैसे वसूलते थे और डिस्पैच लिखते थे। बंगाली रोता था और कंगाल होता जाता था। ऐसे में 1769–70 का साल आया। क्वार कार्तिक में एक बूंद पानी नहीं बरसा।'' लोगों को खाना नहीं मिल रहा था उसने एकदम में सौ रूपये पर दस रूपये मालगुजारी बढ़ा दी। पूरे बंगाल में हाहाकार मच गया। लोगों ने अपने बैल–बछिया बेच दिए। हल–फाल, घर–द्वार बेच दिये और बीज के लिएरखा धान खा गए, जमीनें बेच दीं, फिर अपनी लड़कियां बेचने लगे, घास खाना शुरू किया। इस घोर अकाल के बावजूद सरकार ने भूराजस्व में कोई कमी नहीं की। 1770 में बंगाल के लोगों से पूरा भूराजस्व वसूल किया गया। एन.के. सिन्हा ने जिक्र किया है कि पूर्णिया के सुपरवाइजर डुकारेल की रपट के अनुसार, 'उदस जिले में दो लाख व्यक्ति मृत्यु के ग्रास हुए। उसके पहुंचने के तीन दिनों के अन्दर ही एक लाख लोगों की मृत्यु हो गई थी।''

भूराजस्व व्यवस्था में व्याप्त असंगतियों के कारण वारेन हेस्टिंग्ज ने 1771 में दीवानी अधिकार अपने हाथ में ले लिए और लगान वसूली का कार्य स्वयं कम्पनी की देखरेख में शुरू किया।

3.1 स्थायी बन्दोबस्त के पूर्व स्थिति :

1772 ई. में जब पांचवर्षीय बन्दोबस्त लागू किया गया, उस समय अधिक बोली लगाने वाले को लगान वसूली का ठेका दे दियागया। जहां जमींदारों को ही ठेका मिला था, उनकी स्थिति भी विचित्र थी। वे पहले एक किरायेदार की भांति थे, जो भूमि का निश्चित किराया दिया करते थे, किन्तु अब वे भूमि के स्वामित्व की मांग कर रहे थे और जिन जमींदारों को अपदस्थ कर दिया गया था, वे अब मुआवजे की मांग कर रहे थे। उनकी स्थिति अब वंशानुगत हो चुकी थी। वे अपनी रैय्यत से भू–राजस्व वसूल करते थे, जिनमें से 9/10 भाग राज्य में जमा करा देते थे। वारने–हेस्टिंग्ज के समय कौसिल सदस्य फ्रांसिस ने जमींदारों के साथ भूमि का स्थानीय प्रबन्ध करने की वकालत की थी ताकि प्रणाली में स्थिरता आ सकें, किन्तु हेस्टिंग्ज जमींदारों के साथ उनके जीवनभर के लिए अथवा दूसरी पीढ़ी तक के लिए समझौता चाहता था। इसीलिए जब 1777 ई. में पांचवर्षीय बन्दोबस्त की अवधि समाप्त हुई तब कम्पनी के संचालकों ने कौसिल द्वारा अन्तिम निर्णय लेने तक एकवर्षीय बन्दोबस्त लागू करने को कहा था। किन्तु कौसिल द्वारा अन्तिम निर्णय लेने तक एकवर्षीय बन्दोबस्त लागू करने को कहा था। किन्तु कौसिल में इस सम्बन्ध में विचार–विमर्श चलता रहा। 1780 ई. में इंग्लैण्ड में यह विचार–विमर्श चलता रहा। 1780 ई. में इंग्लैण्ड में फ्रांसीसि के मत को भी समर्थन प्राप्त हो रहा था। इधर भारत में गवर्नर–जनरल वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा चेतसिंह के साथ किये गये दुर्व्यवहार के कारण बिहार के जमींदारों ने ब्रिदोह कर दिया था तथा इंग्लैण्ड में यह विचारधारा प्रबल हो रही थी कि जमींदारों के साथ सद्भावपूर्ण व्यवहार करके उन्हें ब्रिटिश शासन के समर्थक वर्ग के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय। 1784 ई. में पिट्क इण्डिया एक्ट पारित हो चुका था जिसमें भूमि का स्थायी बन्दोबस्त करने को कहा गया तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जमींदारों के पक्ष में सहानुभूति व्यक्त की गई थी, लेकिन अभी तक इस दिशा में कोई कार्यवाही नहीं हुई थी। किसानों की स्थिति अत्यन्त ही दयनीय थी, न तो भारतीय अधिकारियों और न कम्पनी के अधिकारियों द्वारा उनके हितों की बात सोची जा रही थी।

3.2 भूमि का स्थायी बन्दोबस्त :

इन परिस्थितियों में सितम्बर, 1786 ई. में लार्ड कार्नवालिस गवर्नर – जनरल बनकर भारत आया। कम्पनी के संचालकों ने कार्नवालिस को जमींदारों के साथ उदार शर्तों पर समझौता करने का आदेश दिया था, ताकि जमींदारों से समय पर तथा नियमित रूप से भू–राजस्व प्राप्त होता रहे। इस समय सर जॉन शोर, राजस्व मण्डल का अध्यक्ष था, जिसने राजस्व सम्बन्धी मामलों में पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लिया था। मुख्य शिरेस्तेदार जेम्स ग्राण्ट राजस्व सम्बन्धी सामलों में पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लिया था। मुख्य शिरेस्तेदार जेम्स ग्राण्ट राजस्व अभिलेखों की जानकारी प्राप्त कर रहा था और कुछ ही समय में वह राजस्व सम्बन्धी मामलों का सैद्धान्तिक ज्ञाता हो गया। कार्नवालिस को इन अनुभवी अधिकारियों का पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ। इन अधिकारियों का पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ। इन अधिकारियों के सहयोग से कार्नवालिस ने कुछ प्रारम्भिक सुधार किये। आर्थिक दृष्टि से जिलों की संख्या घटाकर 35 से 23 कर दी गई। कलेक्टरों को पुनः जिलों में भेज दिया गया तथा उन्हें दीवानी न्याय का भी अधिकार दे दिया। कुछ समय बाद फौजदारी न्याय की शक्ति भी उन्हें हस्तान्तरित कर दी गई। दीवानी मामलों में कलेक्टरों को सहायता देने के लिए एक भारतीय रजिस्ट्रार होता था जिसे 200 रूपये तक के मामले निपटाने का अधिकार दिया गया। कलेक्टरों के वेतन में वृद्धि की गई तथा उन्हें वेतन के अतिरिक्त भू–राजस्व वसूली का कमीशन भी मिलने लगा। कलेक्टरों की शक्तियों में पर्याप्त वृद्धि की गई।

1777 ई में जो एकवर्षीय व्यवस्था की गई थी, वह उस समय तक के लिए थी जब तक कि कार्नवालिस भू–राजस्व व्यवस्था का पूरा अध्ययन कर कोई स्थायी योजना न बना ले। अतः कार्नवालिस ने कुछ प्रारम्भिक परिवर्तन कर आवश्यक सूचनाएं एकत्र की और तत्पश्चात् भू–राजस्व व्यवस्था की प्रणाली पर नियमित विचार–विमर्श आरम्भ हो गया। इस विचार–विमर्श के दौरान दो प्रणाली पर नियमित विचार–विमर्श आरम्भ हो गया। इस विचार–विमर्श के दौरान दो प्रकार की विचारधाराएं सामने आई। एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व जेम्स ग्राण्ट कर रहा था, जिसने दस्तावेजों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि जमींदारों की तो कोई स्थिति है ही नहीं है, न तो उन्हें भूमि का स्वामी माना जा सकता है। अतः जेम्स ग्राण्ट का विचार था कि स्थायी व्यवस्था के स्थान पर कोई दीर्घ अवधि की व्यवस्था की जाये और राज्य को भूमि का स्वामी माना जाये, ताकि राज्य को यह अधिकार हो कि वह किसानों से किसी भी सीमा तक अपनी भू–राजस्व की मांग को बढ़ा सके। दूसरी विचारधारा का नेतृत्व सर जॉन शोर कर रहा था जिसे भू–राजस्व व्यवस्था का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त था। वह चाहता था कि जमींदारों को ही भूमि का वास्तविक स्वामी माना जाये। राज्य की और से भू–राजस्व की मांग संविदा के सिद्धान्त पर आधारित होनी चाहिए तथा निर्धारित सीमा से ऊपर उसमें वृद्धि नहीं की जानी चाहिए। वह भी कोई दीर्घ अवधि की व्यवस्था जमींदारों के साथ मिलकर करने का पक्षपाती था ताकि उन्हें भूमि के विकास हेतु प्रोत्साहन मिल सके जिससे राज्य की भी समृद्धि होगी। वह भी कोई स्थायी प्रबन्ध करने के पक्ष में नहीं था, क्योंकि उसका विचार था कि राज्य में भू–राजस्व वसूल करने वाला विभाग अभी अपरिपक्व है तथा भू–राजस्व सम्बन्धी जो सूचनाएं एकत्रित की गई है, वे स्थायी प्रबन्ध के लिए अपर्याप्त है।

लार्ड कार्नवालिस यद्यपि सर जॉन शोर के विचारों से सहमत था, लेकिन वह उसके इस विचार से सहमत नहीं था कि जमींदारों से स्थायी व्यवस्था करने के लिए पर्याप्त सूचनाएं नहीं है। कार्नवालिस स्वयं इंग्लैण्ड में भू–स्वामी था और भारत में जमींदारों का एक ऐसा वर्ग तैयार करना चाहता था जो साम्राज्य का सुदृढ़ आधार बन सके। वह कम्पनी के संचालकों से विस्तृत निर्देश लेकर भारत आया था तथा पिट्स इण्डिया एक्ट (1784 ई.) में भी स्थायी प्रबन्ध करने की बात कही गई थी, इससे वह बहुत उत्साहित था। अतः 1790 ई. में उसने जमींदारों से दसवर्षीय समझौता कर लिया तथा उसने अपनी घोषणा में कहा कि इसे स्थायी भी किया जा सकता है कम्पनी के संचालक मण्डल ने इस दसवर्षीय समझौते का अनुमोदन करते हुए कहा कि यदि यह दसवर्षीय समझौता सफल रहता है तो इसे स्थायी कर दिया जाये। तीन वर्ष बाद बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के अध्यक्ष डून्डास ने इस समझौते को स्थानीय करने का अनुरोध किया, किन्तु सर जॉन शोर स्थायी प्रबन्ध के पक्ष में नहीं था। अतः डून्डास ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री विलियम पिट्ट के साथ विचार–विमर्श करके पिट्ट के साथ विचार–विमर्श करके पिट्ट को स्थायी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रबन्ध के लिए राजी कर लियां तत्पश्चात् पिट्ट के साथ विचार–विमर्श करके पिट्ट को स्थायी प्रबन्ध के लिए राजी कर लिया। तत्पश्चात् पिट्ट ने भी इसे स्थायी करने का आदेश दिया। तदनुसार 22 मार्च, 1793 को कार्नवालिस ने इस प्रबन्ध को स्थायी करने की घोषणा कर दी।

लार्ड कार्नवालिस द्वारा किये गये स्थायी बन्दोबस्त की मुख्य व्यवस्थाएं स्थायी बन्दोबस्त की विशेषताएं तथा इसके गुण एवं दोषों का विस्तृत विवेचन पांचवें इकाई में किया जा चुका है।

3.2.1 बन्दोबस्त के गुण :

1. इस व्यवस्था के परिणाम स्वरूप राज्य की आय में पर्याप्त वृद्धि हुई क्योंकि जो भूराजस्व की दर निश्चित की गई थी, वह 1756 की प्रचलित दर से लगभग दुगनी थी।
2. इस व्यवस्था सेपूर्व बार–बार भूराजस्व निर्धारण में सरकार को समय और धन की हानि उठानी पड़ रही थी, वह 1756 की प्रचलित दर से लगभग दुगुनी थी।
3. इससे कम्पनी की वार्षिक आय निश्चित हो गयी, जिससे अब कम्पनी को यह जानकारी हो गयी कि कितनी वार्षिक आय किस समय प्राप्त होगी। इसके आधार पर अब आर्थिक योजनाओं के निर्माण का कार्य सरल हो गया।
4. स्थायी व्यवस्था लागू होने से कम्पनी के अधिकांश अधिकारी राजस्व के मामले से मुक्त हो गये, जिससे उनकी सेवायें प्रशासन के दूसरे कार्यों में उपलब्ध होने लगी तथा कम्पनी अन्य प्रशासनिक सुधारों के बारे में सोचने लगी।
5. जमींदारों के साथ समझौता करके अंग्रेजों ने एक ऐसे वर्ग का सृजन किया, जिस पर अपने अस्तित्व के लिए निर्भर रहा जा सकता था। इस प्रकार समाज में एक स्वामीभक्त वर्ग का निर्माण हो गया, जो संकट के समय अंग्रेजों का पक्ष ग्रहण कर सकता था। सेटनकार ने लिखा है, ''स्थायी प्रबन्ध ने एक ऐसे धनी तथा विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग को उत्पन्न किया जो सिपाही विद्रोह के समय सरकार का प्रधान स्तम्भ बन गया।''
6. भूराजस्व की दर निश्चित हो जाने से भूमि के विकास के लिए पूंजी लगाने तथा उत्पादन में वृद्धि की आशा की जा सकती थी, क्योंकि अब तो फसल हो या न हो, वार्षिक भूराजस्व तो चुकाना ही था। अतः बंगाल में अधिक से अधिक भूमि को खेती योग्य बनाया गया, जिससेनये गांव बसने लगे।
7. कृषि उत्पादन में वृद्धि होने से सम्पन्नता मे वृद्धि होना स्वाभाविक था। भूराजस्व हमेशा के लिए निश्चित हो जानने से इस सम्पन्नता का राज्य को कोई लाभ नहीं था किन्तु इससे राज्य को परोक्ष लाभ मिलने की आशा थी, क्योंकि कृषि उत्पादन का विकास होने से व्यापार एवं लोगो के जीवन स्तर में सम्पन्नता आना स्वाभाविक था तथा राज्य मनोरंजन कर व्यापार पर कर और अन्य आर्थिक गतिविधियों पर कर लगाकर लाभान्वित हो सकता था।
8. इस व्यवस्था के लागू होने से पूरेबंगाल में एकरूपता आ गई। जमींदारो से न्यायिक शक्तियां छीन लेने से दोहरा लाभ हुआ। प्रथम तो, अब जमींदार कृषि पर अधिक ध्यान दे सकते थे और दूसरा न्यायिक शक्तियां ऐसे लोगो को हस्तान्तरित हो जाने से, जो इस कार्य में प्रशिक्षित थे, न्यायिक कार्य में कार्य–कुशलता की आशा की जा सकती थी।
9. इस व्यवस्था के समर्थकों का कहना है कि यदि इसमें जमींदारों का पक्ष लिया तो रैय्यत के हितों की भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं की गई। क्योंकि जमींदारों को उन्हें पट्टे देने थे और यदि वे रैय्यत के अधिकारों का अतिक्रमण करते है तो रैय्त को न्यायालय में जाने का अधिकार था।

3.2.2 बन्दोबस्त के दोष :

1. हमारे देश में किसान ही भूमि का मालिक समझा जाता था औरवह अपनी सुरक्षा के लिए राजा को कर देता था। स्थायी प्रबन्ध के अन्तर्गत जमींदारों के साथ समझौता करके किसानों से भूमि का स्वामित्व छीन लिया गया और उन्हें जमींदारों की दया पर छोड़ दिया गया। मेटकॉफ ने लिखा है, ''हमने एक स्वामी वर्ग तैयार कर देश की समस्त सम्पत्ति को नष्ट कर दिया और दूसरों की सम्पत्ति को नष्ट कर दिया और दूसरों की सम्पत्ति उस स्वामी वर्ग के अधीन कर दी।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. स्थायी बन्दोबस्त में भूराजस्व की दर बहुत ऊँची निर्धारित की गई। जो जमींदार इस दर से लगान नहीं चुका सके, उनकी भूमि राज्य द्वारा बेच दी गयी। अनेकों को उनके वंशानुगत व्यवसाय के बेदखल कर दिया गया। जो व्यक्ति कभी जमींदारी का सुख भोग रहा था, उसे दर–दर की ठोकरें खानी पड़ी।

3. आरम्भ में कठिन परिश्रम करके जो राज्य की मांग के सामने टिक गये, वे बाद में धीरे–धीरे धनवान हो गये तथा अपने गांवों को छोड़कर शहरों में बड़ी शान–शैकत से रहने लगे। इससे एक परजीवी वर्ग (वह प्राणी जो दूसरे प्राणी के पोषण पाता है) की उत्पत्ति हुई, जो भूमि धारण तो करता था, किन्तु उसकी देखभाल नहीं करता। ऐसे जमींदारों ने रैय्यत से भूराजस्व वसूल करने केलिए अपने एजेन्ट नियुक्त किये जो गांवों में उप–भूस्वामी बन गये। ये एजेन्ट किसानों से अधिक से अधिक कर वसूल करने के लिए कानूनी व गैर कानूनी सभी तरह से किसानों का शोषण करने लगे, जिसस किसानों की स्थिति दयनीय होती गई।

4. जमींदार ने हर स्थान पर अपनी रैय्यत के पट्टे जारी नहीं किये और जहां पट्टे जारी किये उनका पूरी तरह से पालन नहीं किया गया। यद्यपि रैय्यत को जमींदारों के विरूद्ध न्यायालय में जाने का अधिकार था, किन्तु ऐसा करने के लिए उसे साधन उपलब्ध नही कराये गये। जमींदारों के पास सभी तरह के साधन उपलब्ध होने से वह स्वेच्छा से जैसा चाहे कर सकता था।

5. भूराजस्व स्थायी तौर पर निश्चित कर देने से राज्य को होने वाली आय भी निश्चित हो गई। भूमि की पैदावार यदि दस गुना भी बढ़ जाय तो भी इसका लाभ राज्य को नहीं मिल सकता था। इस व्यवस्था से राज्य के भावी लाभ पर प्रतिबन्ध लग गया। सेटनकार ने लिखा है कि, ''स्थायी बन्दोबस्त से कुछ जमींदारों के हित प्राप्त किये गये, किसानों के हितों को स्थगित कर दिया गया और राज्य के हितों का हमेशा के लिए बलिदान कर दिया गया।

6. इस व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यह था कि रैय्यत जो भूमि की वास्तविक मालिक थी, उसे अपने ही घर में किरायेदार बना दिया गया।

7. यह व्यवस्था हमारी राष्ट्रीयता के लिए घातक सिद्ध हुई। जमींदार वर्ग सदैव ब्रिटिश सत्ता का स्वामीभक्त रहा। अतः जब हमारे देश में राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हुए, तो इस वर्ग ने ब्रिटिश सरकार से सहयोग करके जनता की राष्ट्रीय भावनाओं का दमन किया।

8. बंगाल के स्थायी बन्दोबस्त का दुष्प्रभाव भारत के अन्य ब्रिटिश प्रान्त पर भी पड़ा। कम्पनी बंगाल में तो भूराजस्व बढ़ा नहीं सकती थी, अतः उसने इस क्षति की पूर्ति अपने अन्य प्रान्तों में लगान की दर ऊँची करके की।

यद्यपि स्थायी बन्दोबस्त मे अनेक दोष विद्यमान थे, फिर भी यह व्यवस्था अब तक किये गये प्रबन्धों से अच्छी थी। यदि कार्नवालिस 1790 का दसवर्षीय समझौता चालू रहने देता और इसके दोषों को देखकर उन्हें दूर कर देता तो वह श्रेष्ठ व्यवस्था लागू कर सकता था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कार्नवालिस स्थायी बन्दोबस्त के प्रति इतना उतावला था कि अपनी योजना के परिणामों पर विचार करने की बात सोच ही नहीं सकता था। अतः यह कहा जा सकता है कि कार्नवालिस की श्रेष्ठ योजना ने धैर्य के अभाव में अपने श्रेष्ठता के स्थान को छोड़ दिया। कार्नवालिस के बाद आने वाले गवर्नर जनरलों ने इसके दोष की ओर धन ही नही दिया, क्यो कि उन्हें तो अपने निश्चित भूराजस्व से मतलब कर उसकी जमीन बेचकर अपनी रकम वसूल कर लेते थे।

कार्नवालिस ने प्रशासन में जो सुधार किये, उनको देखते हुए उसे एक सफल गवर्नरजनरल कहा जा सकता है। वह उच्च आदर्श का व्यक्ति था तथा उसका नैतिक स्तर इतना ऊँचा था कि कम्पनी का शासन उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। वह योग्यता कासम्मान करता था। अतः उसने कम्पनी की सेवाओं में योग्यता के आधार पर नियुक्ति करने की परम्परा आरम्भ की। उसके न्याय सम्बन्धी सुधार तथा भूमि का स्थाई बन्दोबस्त उसकी कीर्ति के स्तम्भ कहे जा सकते है। वस्तुतः भारत में परिस्थितियां उसके अनुकूल थी, जिसके कारण उसे सफलता मिलती गई। उसे भारत में नियुक्त करने से पूर्व दो विशेषाधिकार प्रदान किये गये थे। उसे गवर्नर जनरल के अतिरिक्त कम्पनी की सेवाओं का प्रधान सेना पति भी नियुक्त किया गया। उसे यह भी अधिकार दिया गया कि असाधारण परिस्थितियों मे वह कौसिल के बहुमत को भी ठुकरा सकता था, इससे उसकी स्थिति काफी दृढत्र हो गई। फिर ब्रिटिश प्रधानमंत्री पिट्ट तथा बोर्ड ऑफ कंट्रोल के अध्यक्ष डून्डास से उसकी घनिष्ठ मित्रता थी। इन परिस्थितियों ने उसकी सफलता में योगदान दिया। भारतीयों की योग्यत पर अवश्विास करना कार्नवालिस की शासन नीति का सर्वाधिक निन्दनीय पहलू था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.3 रैयतवाड़ी बन्दोबस्त :

इस भूप्रबन्ध व्यवस्था का उद्देश्य यह था कि कृषि विस्तार और बाजार वृद्धि के साथ–साथ सरकार इस बढ़ी हुई आय का हिस्सा पा सके। बंगाल की भूमि व्यवस्था की कमियों के अतिरिक्त इंग्लैण्ड में प्रचलित विचारधाराओं का भारतीय प्रशासन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इंग्लैण्ड के उपयोगितावादी जॉन बेन्थम, डेविड रिकार्डो एवं जेम्समिल आदि की धारणा थी कि, ''जमींदार वर्ग केवल भूस्वामित्व के आधार पर उसके द्वारा अर्जित नहीं की गई आय का उपभोग करता है, अतः जमींदारों की आमदनी पर कर लगाया जाना सर्वथा उचित है। उनसे जितना अधिक सम्भव हो भूराजस्व के रूप में सरकार को लेना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो जमींदारी व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाना।'' भट्टाचार्य द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त विवरण के सारांश से सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कृषि–उत्पादित माल के कुल मूल्य में से किसान के श्रम का मूल्य तथा उत्पादनके खर्चों को छोड़कर शेष का एक अंश लगान के रूप में लिया जा सकता है वह अंश आधा या दो–तिहाई हो सकता है। दूसरे शब्दों में कम्पनी सरकार किसान के श्रम का मूल्य एवं उत्पादन खर्च को छोड़कर किसान की शेष समस्त आय पर कब्जा करने को तत्पर थी। इसी विचारधारा का प्रतिफल था रैयतवाड़ी व्यवस्था। इसकी खूबियों को उजागरकरते हुए रजनीपाम दत्त ने लिखा है, ''इस बन्दोबस्त की खास बात यह थी कि सरकार को किसानों के साथ सीधे–सीधे कोई बन्दोबस्त करना चाहिए, जो स्थाई नहीं, अस्थाई हो अर्थात् जिसमें हमेशा कुछ वर्षों के अन्तर पर संशोधन किया जा सके और इस प्रकार लूट के धनको किसी बिचौलिये में बांटने के बजाए पूरा का पूरा स्वयं हड़प लिया जाए। इस प्रणाली को रैयतवाड़ी बन्दोबस्त नाम दिया औरइसे सबसे पहले मद्रास (मकूजलरछु चरंत्र) में शुरू किया गया।''

यहां उल्लेखनीय है कि 'रैय्यत में उन किसानों को शामिल किया जा सकता है, जो हल–बैल से स्वंय खेती करते थे। वी.जी.काले ने रैय्यत की व्याख्या में कहा है, 'जिसके पास हल, दो बैल और एक गाड़ी होती है जिसे वह फालतू समय में किराये पर ढुलाई के काम में लेता है''दूसरे शब्दों में किसानों के साथ व्यक्तिगत रूप से किये गये लगान समझौते किये। लेकिन उसका इस व्यवस्था पर अधिक समय तक विश्वास टिका न रहा। लेकिन थॉमस नो की इसके प्रति आस्था अधिक गहरी थी उसे निजाम से प्राप्त क्षेत्र का कलक्टर बनाया गया उस दौरान इस बन्दोबस्त को परीक्षण के तौर पर लागू किया था। जिला कलेक्टर के पद से मद्रास के गवर्नर बनने तक एक निष्ठ भाव से वह इस व्यवस्था का समर्थक बना रहा। मद्रास के कुछ भागों में इस बन्दोबस्त को 1809 में उसने लागू किया और 1820 में मद्रास का गवर्नर बनने के बाद सम्पूर्ण प्रदेश में रैयतवाडी व्यवस्था लागू की और इसकी सफलता को देखते हुए 1825 में बम्बई में भी इस पद्धति की शुरूआत की गई।

भूप्रबन्ध के पत्रादि में रैयत को भूमि का स्वामी नहीं कहा गया विशेष रूप से बम्बई के राजस्व पत्रादि में रैयत को 'अधिगृहिता' नाम दिया गया जिसका भूमि पर कब्जा था और उसका अधिकार वंश परम्परागत माना गया तथा जिसका दायित्व था कि जो भी सरकारी लगान हो जमा करवाये। यही बात मद्रास रैय्यत के सम्बन्ध में न्यायालयों में प्रचलित थी। मद्रास इलाके के बारे में विवरण मिलता है कि वहां खेती करने वाले मालिकाना अधिकार पाने में रूचि नहीं रखते थें उनकी रूचि केवल इसमें थी कि जितनी भूमि पर वे खेती करे उसी भूमि का केवल उतना ही लागन देना पड़े। बैडेन पावले ने इस विचित्र रूचि का कारण यह माना है कि किसान दीर्घकाल से अधिक लगान देते–देते अत्यन्त दुखी हो गये थे।

3.3.1 रैयतवाड़ी के प्रमुख उपबन्ध :

सरकार एवं किसानों या रैयत के बीच कोई बिचौलिया न रहा। सरकार किसानों से सीधे लागन वसूल करती थी।

हर रैयत बिना किसी पारस्परिक गारन्टी के व्यक्तिगत रूप से कर भुगतान के लिए।

भूमि का पट्टेदार या अधिगृहिता जब जो वान्छित समय नोटिस देकर जो भूमि उसके पास पट्टे पर थी उसे या उसके किसी भाग को छोड़ सकता था और इस प्रकार सरकारी भूराजस्व के दायित्व से मुक्त हो सकता था।

भूमि उस समय जब्त की जा सकती थी जब किसान लगान की अदायगी न करे। लगान देतते रहने पर चिरकाल तक भूमि पर आधिपत्य रह सकता था। लगान उपज पर आधारित न होकर भूमि के मूल्यपर नियत किया गया था।

बम्बई का भूराजस्व प्रबन्ध 1796 ई. से ही माउन्ट स्टुअर्ट एल्फिन्स्टन देखरहा था। मराठा काल में पुणे, खानदेश आदि का 80 हजार पौण्ड लगान था 1818 में अंग्रेजों का आधिपत्य होते ही लगान 15 लाख पौण्ड कर दिया गया। एल्फिन्स्टन ने स्वयं स्वीकार किया था कि ''यहां किसानों के पास पहनने को वस्त्र नहीं है, यह सब होने पर भी लगान बढ़ाया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.3.2 बन्दोबस्त का प्रभाव :

बिशप हेबर ने भारत के विभिन्न प्रदेशों का भ्रमण किया, उसने भारतीय किसानों की निर्धनता के विषय में लिखा था, ''उपज का आधा भाग सरकार किसानों से लगान के रूप में मांगती है। इस लगान को अदा करने के बाद किसानों के पास कुछ नहीं बचता । जब कभी फसल बिगड़ जाती है, किसान भूखों मरने लगते है। सरकार के लाख प्रयत्न करने पर भी उनकी रक्षा नहीं हो पाती और लाखों प्राणियों का विनाश हो जाता है।''

कई विद्वानों ने इस बात का जिक्र किया है कि कहने के लिए शुद्ध उपज का 0 प्रतिशत लगान लिया जाता था, लेकिन व्यवहार में इससे कहीं अधिक था। साथ ही 30 वर्ष पश्चात् सम्भावित वृद्धि से किसान आतंकित रहते थे और अधिक उपज एवं न नई खेती के लिए प्रोत्साहित होते थे।

इस व्यवस्था का सर्वाधिक क्रूर पक्ष वसूली प्रणाली में देखा या भूमिकर वसूल करने के लिए किसानों को प्रायः कठोर यातनाएं दी जाती थीं। इसका परणिाम यह हुआ कि किसान साहुकारों के चंगुल में फंसते गये।

अत्यधिक लगान के दुष्परिणामों के विषय में कहा गया है कि सरकार ने किसानों की भूमि तथा सम्पत्तियों को नीलाम करवा कर की भिखारियों के रूप में परिवर्तित करना ब्रिटिश भूराजस्व नीति का अंग था। आठ लाख पचास हजार कृषकों को 19 लाख एकड़ भूमि ग्यारह वर्षों के बीच सरकार ने अपना लगान वसूल करने के लिए नीलाम की। ए. जार्ज ने भारत सचिव को पत्र लिखा था, ''दुःख की बात तो यह है कि चालीस हजार एकड़ भूमि सरकार के बारम्बार नीलाम करने पर भी किसी व्यक्ति ने नहीं खरीदी, क्योंकि उपज से अधिक लगान देते हुए कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जोसदैव के लिए दरिद्र हो जाना पसन्द करेगा।

3.4 महलवाड़ी बन्दोबस्त :

यह भूमि बन्दोबस्त अनेक प्रयोगों के पश्चात् उत्तर भारत में भारतीय शक्तियों द्वारा अंग्रेजों को हस्तान्तरित तथा अंग्रेजो द्वारा विजित प्रान्तों में लागू किया गया, जिसमें आगरा, अवध इत्यादि क्षेत्र शामिल थे। इस बन्दोबस्त में भूमि कर की संवर्ग किसान का खेत नहीं बल्कि ग्राम या महल माना गया। गांव की समस्त भूमि समस्त ग्राम सभा की सम्मिलित रूप से होती थी जिसे भागीदारों का समूह कहते थे। भूमि कर देने के लिए यही समूह उत्तरदायी माना जाता था। दूसरे शब्दों में सरकार के द्वारा कुछ गांवों का महाल में एकत्र करके उस महाल का लगान निश्चित कर दिया जाता और फिर उस लगान को गांव में विभाजित किया जाता था। यद्यपि कई स्थानों पर व्यक्तिगत उत्तरदायित्व भी माना गया, किन्तु अधिकतर महलवाड़ी बन्दोबस्त में सामूहिक रूप से गांव या महाल के आधार पर लागू किया गया। इस प्रकार महलवाड़ी बन्दोबस्त में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के साथ–साथ संयुक्त उत्तरदायित्व भी होता था। यदि कोई किसान अपनी भूमि छोड़ देता था तो ग्राम समाज उस भूमि को ग्रहण कर लेता था। ग्राम समाज ही सम्मिलित भूमि का स्वामी होता था।

1819 और 1822 ई.इ के बीच निश्चित रूप ग्रहण किया। सर्वप्रथम बोर्ड ऑफ कमिश्नर्स के सचिव होल्ट मेकेन्जी ने 1819 ई. में अपने एक पत्र में उत्तरी भारत के ग्रामीण माजों की ओर ध्यान आकर्षित कर कुछ सुझाव दिये। उसने सुझाव दिया कि भूमि का सर्वेक्षण किया जाये, भूमि से सम्बन्धित व्यक्तियों के अधिकारों का लेखा तैयार किया जाये प्रत्येक गांव या महाल से कितना कर लेना है, यह तय किया जाए तथा प्रत्येक ग्राम से भूमि कर प्रधान या लम्बदार द्वारा संग्रह करने की व्यवस्था की जाए। 1822 ई. के रेग्यूलेशन 7 के द्वारा इस सुझाव को कानूनी रूप दे दिया गया। जहां जमींदार लगान एकत्र करते थे वहां लगान भूमि किराये का 30 प्रतिशत रखा गया। किन्तु उन क्षेत्रों में जहां भूमि ग्राम समाज की सम्मिलित भूमि थी वहां कर, भूमि किराये का 95 प्रतिशत तय कर दिया गया। यह लगान बहुत अधिक था और इसे लागू भी कठोरता से किया गया।

समस्त गांव की भूमि का अध्ययन कर भूमि कर निर्धारित किया गया। प्रत्येक गांव या महाल के अधिकारियों को स्थानीय परिस्थिति के अनुकूल समायोजित करने का अधिकार दिया गया। भूमि किराये का 66 प्रतिशत राज्य सरकार का हिस्सा तय किया गया और यह व्यवस्था 30 वर्ष की अवधि के लिए लागू कर दी गई। 1855 ई. में सरकार ने लगान को कुल पैदावार का आधा भाग कर दिया, किन्तु आधा भाग निर्धारित करते समय भविष्य में होने वाली वृद्धि का भी ध्यान रखा गया।

3.4.1 महलवाड़ी बन्दोबस्त का कृषकों पर प्रभाव :

इस बन्दोबस्त से किसानों को कोई लाभ नहीं पहुंचा। बंगाल में ब्रिटिश सरकार ने अपनी भूमि–नीति में सम्पत्ति सम्बन्धी

Jan Vishwa Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अधिकारों को महत्त्व दिया था, किन्तु उस प्रकार की नीति नये बन्दोबस्त में नहीं अपनाई गई। फिर भी, सम्पति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त करने के लिए यहां होड़ सी मच गई और जमींदारी व्यवस्था के सभी लक्षण प्रकट होने लगे। अतः यह व्यवस्था जमींदारी व्यवस्था का ही संशोधित रूप कही जा सकती है। यहां लगान सम्बन्धी निर्णय जल्दबाजी और लापरवाही से किये गये। अधिकांश समझौतों में लगान दर गलत अभिलेखों या अपूर्ण अध्ययन के आधार पर तय की गई तथा इन निर्णयों को कठोरता से लागू किया।

अंग्रेजो द्वारा भारत की विदेशी भूमि पर किये गये प्रयोगों ने ग्राम–समुदाय की जड़ों को हिला दिया, जिससे भारत की अर्थव्यवस्था, जो मुख्यतः ग्राम्य प्रधान थी, को अस्त–व्यस्त कर दिया। अंग्रेजों ने भू–व्यवस्था के सम्बन्ध में जो प्रयोग किये वे सामन्ती व्यवस्था को बनाये रखने के प्रयास कहे जा सकते है जिसमें साधारण किसानो के हितो की पूर्णतः अवहेलना की गई। परिणामस्वरूप देश में भूमिहीन किसानों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ने लगी। चूंकि अंग्रेजों ने भारत के औद्योगिकीकरण में ब्रिटिश पूंजीपतियों के हितों का ध्यान रखा, अतः भारत के पूंजीपति वर्ग ने, उद्योगो में लाभ की कम सम्भावना देखकर, खेती में अपनी पूंजी लगाई। फलस्वरूप इनपूंजीपतियों ने गांवों मे पुराने जमींदारों का स्थान ग्रहण कर लिया। इन नये जमींदारों को किसानों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी, क्योंकि उनका उद्देश्य मात्र अपनी पूंजी का अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना था। इसलिए ये नये जमींदार भी किसानों का शोषण करने मे जुट गये। ब्रिटिश सरकार ने किसानो को संरक्षण प्रदान नहीं किया और न ही कृषि में सुधार करने का प्रयत्न किया, जिसके फलस्वरूप भारत मे यत्र–तत्र किसान आन्दोलन उठ खड़े हुए थे। ऐसी स्थिति के लिये स्वयं ब्रिटिश सरकार उत्तरदायी थी।

3.5 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – महलवाड़ी बन्दोबस्त भारत के किन क्षेत्रों में लागू किया गया?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – रैयतबाड़ी बन्दोबस्त के प्रमुख उपबन्द पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था को समझाते हुए कृषकों पर प्रभाव को विवेचित किजिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग – 4

इकाई – 1

ब्रिटिश सत्ता की आर्थिक नीतियां एवं उनका प्रभाव

1.0 ब्रिटिश शासन का आर्थिक जीवन पर प्रभाव
1.0.1 भारत में लूट का आरम्भ
1.0.2 अंग्रेज कर्मचारियों का निजी व्यापार
1.1 धन का निष्कासन
1.2 धन–निष्कासन का प्रभाव
1.2.1 बुनकर व्यवसाय का उन्मूलन
1.2.2 कृषक वर्ग की तबाही
1.2.3 कृषि उत्पादन मे गिरावट
1.2.4 औद्यागिक विकास में अवरोध
1.2.5 अकाल प्रकोप
1.2.6 व्यापार में गिरावट
1.3 रेल निर्माण की आयातित सामग्री
1.3.1 गारन्टी प्रणाली का प्रहार
1.3.2 ब्रिटिश माल की खपत
1.3.3 प्रशासनिक नियंत्रण एवं सैन्य–उपयोग
1.3.4 प्रारम्भिक प्रमुख रेलमार्ग
1.3.5 प्रभाव
1.4 अंग्रेजों की औद्योगिक नीति
1.5 अंग्रेजों की कृषि सम्बन्धी नीति
1.6 अंग्रेजों की अकाल के प्रति नीति
1.7 रेल निर्माण कार्य
1.8 मुद्रा व्यवस्था तथा बैंक
1.9 बोध प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.0 ब्रिटिश शासन का आर्थिक जीवन पर प्रभाव :

भारत में कम्पनी राज्य की स्थापना के पूर्व देश की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। 1700 ई. के भारत की आर्थिक दशा का वर्णन करते हुए फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने लिखा था, ''यह भारत एक अथाह गड्ढा है, जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चांदी चारों तरफ से अनेक रास्तों से आकार जमा होता है और जिसे बाहर निकालने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता अपनी दो यात्राओं के दौरान में मै बंगाल के सम्बन्ध में जो ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ, वह मुझे विश्वास दिलाता है कि यह मिस्र से भी अधिक धनी देश है।'' इसी प्रकार बंगाल की सम्पन्नता के बारे में लार्ड क्लाइव ने कहा था, ''मुर्शिदाबाद का शहर उतना ही लम्बा, चौड़ा, आबाद और धनवान है जितना कि लन्दन का शहर। इतना है कि लन्दन के धनाढ्य व्यक्ति के पास जितनी सम्पत्ति है, उससे कहीं ज्यादा सम्पति मुर्शिदाबाद में अनेकों के पास है।'' इसके लगभग दो सौ वर्ष बाद अर्थात 1900 ई. में भारत

की आर्थिक दशा का वर्णन करते हुए विलियम डिग्वी ने लिखा था कि, 20वीं सदी के आरम्भ में लगभग दस करोड़ व्यक्ति ब्रिटिश भारत में ऐसे है, जिन्हें किसी समय भी पेट भर अन्न नहीं मिल सकता इस अधःपतन की दूसरी मिसाल इस समय किसी सभ्य या उन्नतिशील देशों में कहीं पर दिखाई नहीं दे सकती।'' इन उपर्युक्त कथनों से भारत की परिवार्तित आर्थिक स्थिति का परिचय मिल जाता है।

18वीं शताब्दी के अन्त में तथा 19वीं शताब्दी के आरम्भ में भारत का उद्योग एवं व्यापार बहुत ही विकसित था। देश के जुलाहे अत्यन्त दक्ष थे। ढाका की मलमल विश्व में विख्यात थी तथा पंजाब व कश्मीर में ऊनी वस्त्र विश्व प्रसिद्ध थे। लखनऊ, मथुरा, नागपुर और अहमदाबाद में सूती वस्त्र का व्यवसाय अत्यधिक उन्नत था। पीतल, ताम्बे और सोना जैसी धातुओं के सामान भी भारत में खूब बनते थे। हाथी दांत और चन्दन जैसी लकडियों की सुन्दर वस्तुएं यहां के कुशल कारीगर बनाते थे। दक्षिण भारत के समुद्री तट पर जहाज बनाने का उद्योग इंग्लैण्ड से भी अधिक विकसित था। भारत का बना रेशमी कपड़ा मलमल, हीरे जवाहरात, गर्म मसाले, श्रृंगार प्रसाधान हाथी दांत की बनी कलात्मक वस्तुए सुगन्धित तैल, इत्र आदि विदेशों को निर्यात किये जाते थे और इनके बदले में विदेशों से सोने और चांदी के सिक्के भारत आते रहते थे।

किन्तु कम्पनी का राज्य स्थापित होने के बाद यह स्थिति अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह सकी। क्योंकि अंग्रेजों की आर्थिक नीति इंग्लैण्ड में प्रचलित विचार धारा से तथा अंग्रेजों के आर्थिक हितों से प्रभावित थी। अतः भारत के आर्थिक हितों की तिलांजली दे दी गई। बंगाल की दीवानी का अधिकार प्राप्त होने के बाद कम्पनी ने किसानों का शोषण करना आरम्भ कर दिया। कम्पनी के कर्मचारी, किसानों के साथ अमानुषिक व्यवहार करते थे। मद्रास में एक सरकारी प्रतिवेदन में इस सम्बन्ध में लिखा था, ''निश्चिमत लगान प्राप्त करने के लिए सभी को ऐसी यातनाएं दी जाती थी, जैसे धूप में खड़ा करना, मुर्गा बनाना, भोजन अथवा शौच के लिये न जाने देना, कोड़े मारना, शिकंजे में कसाना, गधे या भैस की पूछ से सिर के बाल बांध देना इत्यादि।'' इन सब का परिणाम यह हुआ कि भारत के किसान बर्बाद हो गये। उस समय अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किये गये अत्याचारों के बारे में स्वयं लार्ड क्लाइव ने लिखा था कि ''जो यूरोपियन, ऐजेन्ट और असंख्य हिन्दुस्तानी एजेन्ट कर्मचारियों के अधीन कार्य कर रहे थे, उन सभी ने प्रजा पर अत्याचार करने और जनता पर पीड़ा पहुंचाने के जो ढंग जारी कर रखे है, वे मुझे डर है कि इस देश में अंग्रेज के नाम पर सदा के लिए एक कलंक रहेंगे।''

1.0.1 भारत में लूट का आरम्भ :

प्लासी के युद्ध के बाद भारत में अंग्रेजों की लूट आरम्भ हो गयी। 1757 से 1760 के बीच मीर जाफर ने लगभग 3 करोड़ रूपये रिश्वत के रूप में कम्पनी व अंग्रेज अधिकारियों को दिये तथा अगले 8 वर्षों में अंग्रेजों ने15 करोड़ रूपये से अधिक का व्यापारिक लाभ उठाया। प्लासी के युद्ध के पूर्व भारत से माल खरीदने के लिये अंग्रेजों को इंग्लैण्ड से सोना और चांदी लाना पड़ता अब उन्हें भारत में ही इतना पर्याप्त धन मिल जाता था कि अब इंग्लैण्ड से मंगाने की आवश्यकता ही नहीं रही। बंगाल से प्राप्त हुए धन से ही उन्होंने चीन में व्यापार में पूंजी लगा दी। क्लाइव के द्वैध शासन के अन्तर्गत तो कम्पनी की लूट और भारतीयों पर अत्याचार अधिक बढ़ गये। स्वयं क्लाइव ने बाद में स्वीकार किया था कि कम्पनी के व्यापारी व्यापार करते थे तथा उन्होंने हजारों भारतीय व्यापारियों के मुंह से उनकी रोटी छीन ली और उन्हें भिखारी बना दिया। भारतीय उद्योगों पर भी कम्पनी ने प्रहार किया। बंगाल का मुख्य उद्योग था कपड़ा उद्योग, किन्तु कम्पनी के गुमास्ते भारतीय जुलाहों को एक निश्चित समय में निश्चित प्रकार का कपड़ा बनाने को बाध्य करते थे और अपनी इच्छानुसार उसकी कीमत देते थे। गुमास्तों की इच्छा पूरी न होने पर जुलाहों के अंगूठे काट दिये जाते थे। फलतः जुलाहों ने कपड़ा बुनना छोड़ दिया। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बंगाल में रेशम उद्योग अत्यन्त ही उन्नत था। किन्तु कम्पनी ने इस उद्योग को हतोत्साहित किया, क्योंकि इंग्लैण्ड में रेशमी वस्त्र उद्योग उन्नति कर रहा था। अतः बंगाल में कच्चा रेशम बनाने वालो पर भीषण अत्याचार किये। उन्हें अपना उद्योग बन्द कर अंग्रेज फैक्ट्री में काम करने को बाध्य किया। फलस्वरूप बंगाल में उद्योग प्रायः नष्ट होनें लगे।

1.0.2 अंग्रेज कर्मचारियों का निजी व्यापार :

कम्पनी के कर्मचारी जिन उपायों से धन लूटते थे, उनमें 'दस्तक प्रथा' मुख्य थी। दस्तक वह प्रमाण था जो अंग्रेज फैक्ट्री का अध्यक्ष कम्पनी के सामान के सम्बन्ध में देता था, जिससे उस पर चुंगी नहीं लगती थी। कम्पनी के कर्मचारियों ने दस्तक का दुरूपयोग करना आरम्भ कर दिया। कम्पनी के कर्मचारी अपने निजी व्यापार करने लगे तथा निजी व्यापार में भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दस्तक का प्रयोग कर अपने माल को चुंगी से मुक्त करा लेते थे। 1752 के बाद व्यक्तिगत तथा कम्पनी के सामान में भेद करना भी असंभव हो गया, जिससे बंगाल सरकार को हानि होने लगी। इससे भारतीय व्यापार भी चौपट होने लगा, क्योंकि भारतीय व्यापारियों को चुंगी देनी पड़ती थी।

कम्पनी के कर्मचारियों के निजी व्यापार से स्वयं कम्पनी को हानि उठानी पड़ रही थी, क्योंकि यूरोप के बाजारों में कम्पनी द्वारा भेजे गये माल की अपेक्षा कर्मचारियों द्वारा भेजा गया सामान सस्ता बिकता था। अतः 1773 के रेगुलेटिंग एक्ट में निजी व्यापार बन्द करने के आदेश दिये गये। किन्तु इसके बाद कम्पनी के कर्मचारी आयात–निर्यात व्यापार में अधिक भाग लेने लगे। इसमें से अधिकांश व्यापार भारतीय व्यापारी के नाम से जोता था और वास्तव में व्यापार अंग्रेज अधिकारी करता था। कम्पनी के कर्मचारी बंगाल मे स्थित फ्रांस और इंग्लैण्ड की कम्पनियों की सहायता से अपना व्यापार करते थे।

18वीं शताब्दी के मध्य में बंगाले में अनेक सेठों व सर्राफों के घराने अत्यन्त धनी व प्रभावशाली थे, जैसे जगत सेठ घराना, बोस्तमदास, अमीचन्द आदि इस सेठों व सर्राफों का व्यापार मुख्य रूप से दो क्षेत्रों पर आधारित था प्रथम तो सिक्कों के बदलने से प्राप्त होने वाली बट्टे की आमदनी और दूसरा जमींदारों द्वारा उनके पास धनजमा कराना, व्यापारियों को ऋण देना तथा ब्याज प्राप्त करना। ये कम्पनी के कर्मचारियों को भी व्यापार के लिए धन उपलब्ध कराते थे। कम्पनी द्वारा लाई गई धातु मुद्रा को बंगाल में प्रचलित मुद्रा में बदलने का काम भी यही करते थें उत्तरी भारत की अधिकांश कोठियों में जगत सेठ घराने की कोठियां थी तथा हुंडियों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर रूपया भेजा जाता था। किन्तु प्लासी के युद्ध के बाद ये घराने भी निर्धन हो गये। क्योंकि अब इंग्लैण्ड से धातु मुद्रा लाने की आवश्यकता समाप्त हो गयी तथा सेठों से रूपया उधार लेने की भी आवश्यकता नहीं रही।

कम्पनी के संचालक कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा भारत से धन अपहरण की सार्वजनिक रूप से निंदा तो करते थे, किन्तु निजी रूप से उन्हें मूक आज्ञा दी जाती रही। 1790 तक हमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है, जहां दण्डित कर्मचारियों को पुनः नौकरी पर रख लिया गया तथा उनके अपराध क्षमा कर दिये।

1.1 धन का निष्कासन :

18वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के उद्योगों की सुरक्षित रखने की दृष्टि से भारत में बनी वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। किन्तु 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों के व्यापार का स्वरूप बदल गया। 1813ई. के चार्टर एक्ट द्वारा इंग्लैण्ड के निजी व्यापारियों को भी भारत से व्यापार करने की छूट प्रदान कर दी गई। इसका परिणम यह हुआ कि इंग्लैण्ड में निर्मित माल का भारत में आयात बढ़ गया तथा भारत में निर्मित वस्त्रों एवं कुटीर उद्योगों की वस्तुओं के निर्यात में भारी कमी आ गई। अब इसके स्थान पर भारत से कच्चे माल का निर्यात बढ़ने लगा। इससे न केवल भारत औद्योगिक विकास में पिछड़ता गया बल्कि भारतीय उद्योगों का विनाश भी प्रारम्भ हो गया। फलस्वरूप भारत में निर्धनता बढने लगी। भारत की बढ़ती हुई इस निर्धनता का एक प्रमुख कारण भारत से धन का निष्कासन था।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर ब्रिटिश शासन का सर्वाधिक घातक प्रभाव भारतीय पूंजी और वस्तुओं का भारत से बाहर इंग्लैण्ड जाना और उसके बदले में भारत को कुछ भी प्राप्त नहीं होना था। इस प्रकार वह धन जो भारत से बाहर चला जा रहा और जिस के बदले में भारत को कुछ भी प्राप्त नहीं होता था, वह धन का निष्कासन कहलाता है। यह धन का निष्कासन धातु मुद्रा के रूप में कम तथा वस्तुओं के व्यापार के रूप में अधिक होता था। अंग्रेज भारत से जितना राजस्व प्राप्त करते थे, उस धन से वस्तुएं खरीद कर बाहर भेज देते थे, उन वस्तुओं के बदले में कोई अन्य वस्तु या धातु मुद्रा प्राप्त नही होती थी। सोने–चांदी को भारत से इंग्लैण्ड ले जाना इस धन के निष्कासन का बहुत छोटा अंश था।

1765 ई. में जब कम्पनी ने बंगाल की दीवानी प्राप्त कर ली तब तो वह लूट की सीमा को भी पार कर गई। अब व्यापर के लाभ के अतिरिक्त एक और लाभ प्राप्त करने का रास्ता खुल गया जिसका कोई और–छोर नहीं था। 1785 ई. में सर जॉन कार्नवलिस ने ब्रिटिश संसद में बोलते हुए कहा, "मै पूरे विश्वास के साथ कहता हूँ कि इस धरती पर आज तक कोई भी सरकार इतनी भ्रष्ट, विश्वासघाती और इतनी लुटेरी नहीं पाई गई जितनी 1765–1785 ई. तक ईष्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार थी।" 1765 ई. में लार्ड क्लाइव ने कम्पनी के संचालकों को जो पत्र लिखा उससे स्पष्ट हो जाता है कि कम्पनी का उद्देश्य भारत से अधिक से अधिक धन ऐंठकर इंग्लैण्ड भेजना था। क्लाइव ने लिखा कि, "जहां तक मै समझता हूँ, इस अधिग्रहण और बर्दबान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आदि पर पहले से चले आ रहे आपके कब्जे के द्वारा आगामी वर्षों में मिलने वाला राजस्व 2 करोड़ 50 लाख रूपयों से कम नहीं होगा। भविष्य में इस राशि में कम से कम 20 से 30 लाख की वृद्धि होगी। शान्ति के दिनों में सैनिक और असैनिक व्यय 60 लाख रूपये से अधिक नहीं हो सकता। नवाब के भत्ते पहले से ही कम करके 41 लाख रूपये और मुगल सम्राट ने नजराने 26 लाख रूपये कर दिये गये है। इस प्रकार कम्पनी को 1 करोड़ 22 लाख रूपये अर्थात् 16,50,900 पौड स्टर्लिंग का विशुद्ध लाभ बचा रहेगा।'' इस प्रकार लाभ के रूप में रहने वाली अधिशेष की राशि वस्तुओं के रूप में इंग्लैण्ड भेज दी जाती थी। बंगाल प्रान्त से प्राप्त होने वाले राजस्व एवं व्यय–विवरण के अनुसार कम्पनी प्रशासन के प्रथम छः वर्षों में इस प्रान्त का शुद्ध राजस्व 1,30,66,991 पौड और कुल खर्च 90,27,609 पौड था और इस तरह 40,39,152 पौड का शुद्ध अधिशेष रह जाता था। यह अधिशेष की राशि वस्तुओं के रूप में इंग्लैण्ड भेज दी गई कितनी राशि इंग्लैण्ड भेज रहे थे, इसका अनुमान तो नहीं लगाया जा सकता, फिर भी हेनरी वर्लेस्ट के अनुसार 1766–1768 के इन तीन वर्षों में कुल 6,24,375 पौड का माल आयात हुआ 53,11,250 पौड के माल का निर्यात हुआ। इस प्रकार कुल 46,86,875 पौड का अधिशेष रहा और यह अधिशेष दिनों–दिन बढ़ता ही गया। इसके बदले में भारत को न तो वस्तुएं ही मिली और न पैसे। इससे भी अधिक हानिकारक हुआ सार्वजनिक कार्यों के लिए लिया गया ऋण। 19वीं शताब्दी के पांचवें और छठे दशक में ब्रिटिश पूंजी भारत में लगाई जाने लगी। 1914 ई. से पहले ब्रिटिश पूंजी का अनुमानतः 97 प्रतिशत भाग भारत सरकार की विभिन्न योजनाओं जैसे – रेलवे, सड़क परिवहन बैंक तथा बीमा कम्पनियों जैसे वित्तीय संस्थानों चाय, काफी तथा रबर के बगीचों तथा भारतीय कृषि साधनों के उपयोग आदि के कार्यों में लगा हुआ था। इसके अलावा अंग्रेजों ने भारत में अपनी सत्ता को स्थायित्व देने के लिए तथा इंग्लैण्ड में सत्ता अधिकारियों को देने के लिए ऋण लिया था, जिसका घातक प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ा। दादा भाई नौरोज ने कहा था, ''भारत का धन ही भारत से बाहर जाता और फिर वही धन भारत को ऋण के रूप में दे दिया जाता, जिसके लिए उसे और ब्याज के रूप में जुटाना पड़ता और इस प्रकार यह ऋण भारत पर बढ़ता ही चला जाता था। 1792 ई. में यह ऋण सूद के साथ सत्तर लाख और 1799 ई. में एक करोड़ से ऊपर पहुंच गया था। 1850–51 ई. में यह ऋण 5 करोड़ 50 लाख और 1857 ई. में 6 करोड़ 90 लाख रूपये पहुंच गया। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व 1939–40 ई. में यह ऋण 1200 करोड़ रूपये था। जॉन स्ट्रेची के अनुसार कम्पनी और उसके कर्मचारियों ने जो लूट आरम्भ की उसने इंग्लैण्ड में औद्योगिक उत्पादन को आवश्यक शक्ति तथा प्रेरणा प्रदान की। ब्रुक एडोन्स के अनुसार कदाचित सृष्टि के आरम्भ से अन्य किसी निवेश से भारतीय लूट के बराबर मुनाफा नहीं कमाया, क्योंकि इसी मुनाफे की वजह से लगभग 50 वर्ष तक कोई प्रतियोगी इंग्लैण्ड के सामने टिक नहीं सका।

सार्वजनिक कार्यों के लिए गये ऋण को चुकाने के अतिरिक्त गृह सरकार के खर्च अर्थात् भारत सचिव व उसके समस्त कर्मचारियों के वेतन, भत्ते आदि तथा इण्डिया कौसिल का समस्त व्यय, कम्पनी द्वारा साम्राज्यवादी युद्धों के लिए लिया गया। भारतीय सार्वजनिक ऋण व उसका ब्याज, ईरान व चीन के दूतावासों का व्यय, इंग्लैण्ड में सैनिक व नौसैनिक संस्थाओं पर किया हुआ व्यय, जो अंग्रेजों के अनुसार भारतीय सुरक्षा के लिए था, भी भारत को वहन करना पड़ता था। भारत में सैनिक व असैनिक सरकारी पद तथा बड़ी–बड़ी कम्पनियों के उच्च पद केवल अंग्रेजों को ही मिलते थे और उनके अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् उनकी पेंशन के लिए प्रतिवर्ष करोड़ों रूपयों इंग्लैण्ड भेजा जाता था। 1902–03 ई. में केवल पेंशन तथा अन्य भत्तों के रूप में इंग्लैण्ड भेजा जाने वाला धन भारतीय राजस्व का 12 प्रतिशत था। इस प्रकार अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों के कारण भारत से बहुत–सा धन इंग्लैण्ड निष्कासित हो गया। इस प्रकार अंग्रेज जब पहले–पहल भारत में व्यापार के लिए आये तब उनका उद्देश्य था – भारत द्वारा निर्मित वस्तुओं को उन देशों तक पहुंचाना जहां उनकी बहुत मांग थी। किन्तु धीरे–धीरे ये व्यापारी इस व्यापार के स्वरूप में एक ऐसा मौलिक परिवर्तन लाए कि व्यापार की दिशा ही बदल गई। भारत, जो किसी समय सभी देशों को वस्तुएं निर्यात करने वाला एक महान् देश समझा जाता था, अब स्वयं एक कृषक उपनिवेश बनकर रह गया, जिसका काम था इंग्लैण्ड के उद्योगों के लिए कच्चा माल अंग्रेजों को देना और उस कच्चे माल से बनी वस्तुओं के लिए एक मण्डी का काम करना।

1.2 धन–निष्कासन का प्रभाव :

भारत के लिए अंग्रेजों की धन–निष्कासन नीति बहुत घातक सिद्ध हुई। जिस देश को पहले सोने की चिड़िया कहा जाता था, निकासी के फलस्वरूप कंगाल हो गया। सबसे पहले व्यापार द्वारा तद्न्तर भूराजस्व में वृद्धि लूटना शुरू किया। धन निष्कासन के प्रभाव निम्नलिखित है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.2.1 बुनकर व्यवसाय का उन्मूलन :

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अतिरिक्त 17वीं–18वीं शताब्दी में फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि कम्पनियां भी भारत से व्यापार कर रही थीं। मुख्य रूप से उक्त कम्पनियां सूती–रेशमी वस्त्र, नील एवं कुटीर उद्योग की सामग्री क्रय कर निर्यात करती थी। उस समय भारतीय बुनकरों को वस्त्र, नील एवं कुटीर उद्योग की सामग्री क्रय कर निर्यात करती थी। उस समय भारतीय बुनकरों को वस्त्र निर्माण में महारथ हासिल थी। कुछ सूती कपड़े इतने महीन थे कि यूरोप के बुनकर उनका मुकाबले की स्थिति में नहीं थे इसीलिए कई देशों ने भारत के वस्त्र आयात पर प्रतिबंध लगाया।

1.2.2 कृषक वर्ग की तबाही :

हम जानते है कि अंग्रेजों ने किसानों को भूराजस्व के बोझ से लाद दिया था, उनके उत्पादन का 50 प्रतिशत सरकार लगान रूप में वसूल कर लेती थी। जिससे किसानो के पास संकट के लिए पूंजी शेष नही रहती थी और लोग घोर दरिद्रता के शिकार हो गये। 1779 ई. में ब्रिटिश पार्लियामेंट से राजस्व सम्बन्धी रपट प्रस्तुत की गई, उससे ज्ञात होता है कि कुल राजस्व 13,066, 761 पौण्ड एवं कुल व्यय 90,27,609 पौण्ड हुआ अर्थात् सरकार को 40,37,152 पौण्ड का विशुद्ध लाभ हुआ। यदि यह कहा जाये कि बंगाल मे कुल वसूल किये गये करों का एक–तिहाई भाग शुद्ध लाभ के रूप में देश से बाहर भेजा गया तो अनुचित नही होगा। इसका परणिाम यह हुआ कि भारत के किसानों की स्थिति खराब होती गई। अधिशेष के अभाव में अकाल की मार सहन नहीं कर पाते थे और लोग बड़ी संख्या में मौत का शिकार हुए।

यहां यह बताना आवश्यक है कि सरकार आय का 75 प्रतिशत गांव के किसानों से वसूल करती थी, लेकिन गांवों पर राजस्व का खर्च नहीं के बराबर था। अधिकांश राशि पुलिस, प्रशासन तथा सेना के वेतन पर खर्च की जाती रही। परिणामतः गांवों में बहुत तेजी से निर्धनता बढ़ी। दादाभाई नौरोजी ने धन की निकासी को देश की दरिद्रता का मूल कारण माना है।

1.2.3 कृषि उत्पादन में गिरावट :

भारत की सम्पत्ति खींचने का एक अन्य प्रभाव कृषि उत्पादनों में गिरावट थी। अधिक लगान के कारण बचत के अभाव में किसान अच्छे खाद–बीज का उपयोग नहीं कर पाते थे। कृषि उत्पादनों पर इसका सीधा प्रभाव हुआ। गोपालकृष्ण गोखले ने इस बात को स्पष्ट करते हुए कहा था, ''भूमि की उर्वरा शक्ति दिन पर दिन कम होती जा रही है। उत्पादित अनाज भी घटिया होता है। प्रति एकड़ उत्पादन जो पहले से ही संसार में कम था और घट रहा था।''

1.2.4 औद्यागिक विकास में अवरोध :

धन निकासी से भारत के औद्योगिक विकास को गहरी ठेस पहुंची। डी.ई. वाचा को उद्धृत करते हुए ताराचन्द ने लिखा है, ''डी.ई. वाचा ने अनुभव किया कि भारत तब तक नए उद्योगों की स्थापना के सम्बन्ध में सोच नहीं सकता, जब तक कि वह पूंजी की निकासी के अभिशाप से मुक्त नहीं हो जाता, क्योंकि पैसा–पैसे को खींचता है और भारत के उद्योग धनीााव से पीड़ित है। उन्होंने अपने मन्तव्य की सत्यता के प्रमाण के रूप में जापान की उल्लेखनीय औद्योगिक प्रगति को उद्धृत किया, जहां दम तोड़ने वाली प्रक्रियाएं सम्पत्ति के राष्ट्रीय अधिशेष का वार्षिक अपहरण नहीं किया जा रहा था।'' इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि बैक ऑफ इंग्लैण्ड की स्थापना 1694 में हुई थी उस समय उसने पाव जमायें नहीं थे। अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अचानक पूंजी संचय हो गयी और वहां तेजी से आधुनिक उद्योग की स्थापना हुई, क्योंकि भारत मसे बड़ी मात्रा में पूंजी वहां पहुंची थी। रजनीपामदत्त ने जिक्र किया है कि, ''सभी विद्वान् इस बात पर एक मत है कि 19वीं सदी को सभी पूर्ववर्ती सदियों से अलग करने वाली महान् घटना अर्थात् 'औद्योगिक क्रान्ति' की शुरूआत 1760 ई. में हुई।'' स्पष्ट है कि भारतीय धन से इंग्लैण्ड में समृद्धि आई और कारखाने खुले। दूसरी और भारत में निर्धनता फैली।

1.2.5 अकाल प्रकोप :

धन निकासी का घातक प्रभाव अकाल के रूप में देखा गया। कई विद्वानों ने यह विचार रखे है कि 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के अकालों की संख्या पिछले सौ वर्षों में पड़ने वाले अकालों से चार गुना अधिक थी। 1775 से 1919 ई. के बीच भारत में 24 बड़े अकाल पड़े जिनमें 2 करोड़ 85 लाख लोग मारे गये। जिसकी चर्चा पूर्व में की गई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.2.6 व्यापार में गिरावट :

व्यापार भी निकासी के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। अंग्रेज व्यापारियों की तुलना में भारतीयों को अपने माल की कीमत घटानी पड़ती थी, जिससे भारतीय व्यापार का ह्रास हुआ। औपनिवेशिक सरकार ने भारतीय माल पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये। परिणामतः भारत में निर्मित माल का इंग्लैण्ड मे विक्रय सम्भव न रहा। भारत से केवल कच्चा माल भेजा जाता था तथा इंग्लैण्ड से तैयार माल भारत के बाजारों को पाटने लगा। अन्ततः उद्योगों में पूंजी निवेश को गहरा धक्का लगा। इन्हीं कारणों से ब्रिटिश काल में भारत का व्यापार पनप नहीं पाया।

कहा जा सकता है कि अंग्रेजों की शोषण नीति भारत के लिए घातक सिद्ध हुई। नरम दल के लोग अंग्रेजों से इस ओर ध्यान देने की बात करते रहे, लेकिन सरकार पर उनका असर नहीं हुआ। गरम दल तथा क्रान्तिकारी राष्ट्रीयता का उदय अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों का ही परिणाम था। दूसरे शब्दों में, अंग्रेजों की शोषण नीति ने भारत के लोगों मे राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। ब्रिटिशकालीन भौतिक साधनों की वृद्धि में रेलवे प्रणाली के विकास को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया। पाश्चात्य विद्वानों एवं राजनीतिज्ञों ने इसका जोर–शोर से प्रचार–प्रसार किया। कहा गया कि, ''रेलवे विस्तार भारत के औद्योगिक विकास एवं आधुनिकीकरण का प्रतीक है।'' भट्टाचार्य के शब्दों में कहा जा सकता है, ''रेलमार्ग के निर्माण से क्या देश को आधुनिक बनाने में मदद नहीं मिलती ? अर्थनीतिक विकास और एकता लाने के लिए, अन्दरूनी बाजारों को रेलमार्गों द्वारा एक सूत्र में बांध देने से क्या कोई सुविधा नहीं हुई ? रेल कम्पनियां इस्पात और कल–कारखाने ले आई और देशी मिस्त्रियों को उनकी तकनीकी सिखाई। क्या इससे कारीगरी में और कौशल में बढ़ोत्तरी नहीं हुई? कार्ल मार्क्स ने जो 1853 में कहा था – 'आधुनिक औद्योगीकरण रेलमार्ग से आएगा वह क्या गलत था ?''

इन तथ्यों को मद्देनजर रखते हुए कहा जासकता है कि रेलमार्गों के विकास के साथ भारत की प्रगति होनी चाहिए थीं सवाल उठता है कि भारत में उस प्रकार का आर्थिक विकास क्यों नहीं हुआ जैसा जापान, जर्मनी, कनाड़ा एवं आस्ट्रेलिया आदि देशों में रेल निर्माण के पश्चात् हुआ ? दादाभाई नौरोजी ने पाश्चात्य विचारकों की मान्यताओं के विरूद्ध भारतीय रेल निर्माण योजना को धन निष्कासन का साधन माना है। महादेव गोविन्द रानाडे, रमेशचन्द्र दत्त आदि ने भी रेलमार्ग के विस्तार को देश की समृद्धि बढ़ाने वाला नहीं माना है। इन राष्ट्रवादियों के विचारों की समीक्षा जरूरी है।

1.3 रेल निर्माण की आयातित सामग्री :

ब्रिटिश सरकार की रेल नीति की आलोचना में भारतीय राष्ट्रवादियों ने स्पष्ट किया कि रेलवे निर्माण के लिए छोटा से छोटा पुर्जा भी इंग्लैण्ड से मंगवाया जाता था, क्योंकि समस्त रेल कम्पनियों के कार्यालय इंग्लैण्ड में स्थित थे, परिणामतः भारत में सहायक उद्योगों का विकास नहीं हुआ। उल्लेखनीय है कि 1855 से 1910 तक रेलमार्ग, 1940 तक रेल इंजन तथा मशीनरी, 1865 तक कोयला भी इंग्लैण्ड से मंगाए जाते थे। दूसरे शब्दों में, पारस्परिक शृंखला का लाभ इंग्लैण्ड के लोहा, इस्पात, इंजीनियरी एवं खनिज उद्योगों को मिल रहा था। फलस्वरूप रेलमार्गों के विकास के साथ दूसरे भारी उद्योगों का स्वाभाविक विकास भारत में होना चाहिए था, वह नहीं हुआ।

1.3.1 गारन्टी प्रणाली का प्रहार :

भारत में रेलवे विस्तार गारन्टी प्रणाली के आधार पर सम्भव हुआ। रेलवे विकास के लिए भारत में पूंजी उपलब्ध नहीं थी। अंग्रेज कम्पनियों को रेलवे विस्तार के लिए आमन्त्रित किया गया। ब्रिटिश पार्लियामेंट के कई सदस्यों ने बार–बार सदन में भारत में रेलवे विस्तार का मामला उठाया था। दरअसल रेलवे विस्तार में ब्रिटिश पूंजी विनियोग की सम्भावनाएं निहित थी। अंग्रेज कम्पनियां रेलवे विनिर्माण हेतु धन विनियोजन के लिए बिना गारन्टी के तत्पर न हुई, जबकि बड़ी संख्या में अंग्रेज पूंजीपति अमेरिका, कनाड़ा, आस्ट्रेलिया आदि में बिना गारन्टी के पूंजी लगा रहे थे। लेकिन भारत में विनियोग पर पांच प्रतिशत लाभ की गारन्टी सरकार ने प्रदान की। सरकार ने कम्पनियों को इस बात की गारन्टी प्रदान की कि उनके द्वारा विनियोजित पूंजी पर लाभ 5 प्रतिशत से कम रहा तो शेष राशि (5 प्रतिशत से जितनी कम हो) सरकारी देगी। लाभ में सरकार की भागीदारी थी। दूसरे शब्दों में, कम्पनी (रेलवे निर्माण कम्पनी) का 5 प्रतिशत से अधिक लाभ रहा तो जो भी लाभ अर्जित होगा उसकी आधी राशि की भागीदार सरकार की होगी। रूपये का मूल्य 22 पेन्स निर्धारित किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जान लॉरेन्स की मान्यता थी कि गारन्टी विधि के कारण रेलवे कम्पनियों ने फिजूलखर्ची की। सरकार द्वारा 5 प्रतिशत ब्याज दिये जाने का अनुबंध किये जाने से रेलवे कम्पनियां लाभ–हानि के मामले में निश्चित हो गई। कम्पनियों द्वारा की गई फिजूलखर्ची में भी उनका लाभ निहित था। विलियम एनमेसी का विचार था कि गारन्ट पद्धति द्वारा रेलें बनवाने में दुगुने से अधिक रूपये खर्च किये है। परिणाम यह हुआ कि ईस्ट इण्डिया रेलवे के प्रति मील पर 30,000 पौण्ड का खर्चा हुआ। दूसरी और इंग्लैण्ड में रेल लाइन निर्माण पर 9000 पौण्ड प्रति मील व्यय हुआ था।

1.3.2 ब्रिटिश माल की खपत :

आर.सी.दत्त एवं दादाभाई नौरोजी जैसे प्रखर अर्थनीतिज्ञों की मान्यता थी कि इंग्लैण्ड की जनता का स्वार्थ भारत में रेलवे विस्तार में निहित है क्योंकि भारत में रेलों से अंग्रेजी माल सस्ते मूल्य पर दूर–दूर तक पहुंच सकता है। साथ ही लोहे के अंग्रेजी कारखानों का संचालन भी इसी से सम्भव था। इसलिए औपनिवेशिक शासकों ने रेलवे की तुलना में नहरों के विकास को महत्त्व नहीं दिया। औपनिवेशिक सरकार की रेलवे निर्माण की पृष्ठभूमि में यह धारणा भी कार्य कर रही थी कि भारत से कच्चेमाल का निर्यात अधिक किया जा सकेगा। सर चार्ल्सवुड ने रेलों के विस्तार का समर्थन इसलिए किया था कि भारत के कपास उत्पादन क्षेत्रों से निर्यात बढ़ सकेगा और इंग्लैण्ड की संयुक्त राज्य अमेरिका पर निर्भरता कम होगी। ताराचन्द ने रेलवे विनिर्माण में सरकार के मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''इंग्लैण्ड से उत्पादित वस्तुओं को बड़ी मात्रा में भेजा जा सकता था और भारतीय उपनिवेश को इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था के अधीन बनाने में भारी सहयोग मिल सकता था।''

1.3.3 प्रशासनिक नियंत्रण एवं सैन्य–उपयोग :

भारत जैसे विशाल देश में प्रशासनिक नियंत्रण को अधिक दृढ़ बनाने के लिए रेलों का निर्माण आवश्यक माना गया। 1844 के लगभग रेलों के निर्माण को व्यापारिक तथा राजनीतिक हितों के लिए उचित ठहराया गया। उपद्रवों को दबाने हेतु सेनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजे जाने में अर्थात् साम्राज्य को सुरक्षित रखने में रेलों के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए हार्डिंग ने संचालकों को रेलों को प्रोत्साहन देने के लिए लिखा।

1.3.4 प्रारम्भिक प्रमुख रेलमार्ग :

ब्रिटिश पूंजीपतियों के पास विनियोजन के लिए खूब धन था किन्तु भारत में लाभ की गारन्टी प्राप्त करके ही पूंजी लगाई गई। परिणामतः रेल लाइनों को बिछाये जाने में पैसा पानी की तरह बहाया गया। उन दिनों ब्याज की दर 3 प्रतिशत थी तथापि 5 प्रतिशत गारंटी देकर भारत की जनता पर अतिरिक्त भार डाला गया। सरकार ने कम्पनियों को रेलवे विस्तार हेतु मुफ्त भूमि उपलब्ध करवाई थी तथा 25 वर्ष के बाद सरकार को सम्बन्धित रेलवे को क्रय करने का अधिकार था। कम्पनियों से मुफ्त डाक सेवा तथा रियायती दर पर सेनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने अनुबंध हुआ। भारत के लिए सर्वप्रथम भाप रेल गाड़ियों की योजना 1843 में इंग्लैण्ड में तैयार की गई, लेकिन ईसट इण्डिया कम्पनी के निदेशकों ने इसमें रूचि नहीं दिखाई। गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग ने कई तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए रेल पथों के निर्माण को उपयोगी बताया। अन्ततः 1849 में भारत सचिव ने ईष्ट इण्डिया रेलवे कम्पनी तथा ग्रेट इण्डिया पेनिंसुला रेलवे कम्पनी के साथ पहले रेलवे इकारारनामा पर हस्ताक्षर किए। 1853 में पहली रेल लाइन बम्बई से थाना तक खोली गई। प्रारम्भिक अनुभव के लिए कलकत्ता से रानीगंज (120 मील) ईस्ट इण्डिया रेलवे, दूसरी बम्बई से कल्याण (32 मील) ग्रेट इण्डियन पेनन्सुला रेलवे और तीसरी मद्रास से अर्कोनम (39 मील) मद्रास रेलवे ने गारन्टी प्रणाली पर कार्य की शुरूआत की। इसी प्रकार 1859 के अन्त में बोम्बे बड़ौदा–सैन्ट्रल इण्डिया, इस्टर्न बंगाल अवध और रूहेलखण्ड स्टेट रेलवे, सिन्ध पंजाब तथा दिल्ली (नार्थ वेस्टर्न रेलवे) एवं ग्रेट सदर्न इण्डिया (साउथ इण्डियन रेलवे) प्रारम्भ की गई। 1849 से 1858 तक 15.28 लाख पौण्ड ईस्ट इण्डियन रेलवे, 4056 लाख जी.आई.पी. रेलवे, 260 लाख पौण्ड मद्रास रेलवे को भुगतान किया गया। 1880 तक 125 मिलियन पौण्ड का व्यय रेलों पर हुआ।

1.3.5 प्रभाव :

रेल किराया व्यवस्था भारतीयों के प्रतिकूल रही,जो स्थानीय व्यावसायिक विकास मे सहयोगी सिद्ध नहीं हुई। सभी बन्दरगाहों की और जाने वाले रेलवे का किराया कम रखा गया तथा आन्तरिक लाइनों का अधिक। यह भी उल्लेखनीय है कि रेलवे कार्मिकों का भारतीय यात्रियों के साथ व्यवहार भी बहुत बुरा था। साथ ही रेलवे का मिश्रित प्रबन्ध (कम्पनियों एवं सरकार) बड़ा जटिल, खर्चीला तथा पुराना था, जिससे भारतीय जनता पर आर्थिक दबाव बड़ा। वस्तुतः रेलवे का लाभ अंग्रेजों के भारत पर प्रशानिक नियंत्रण एवं भारत से इंग्लैण्ड को कच्चामाल निर्यात करने तथा ब्रिटेन के कारखानो का तैयार माल भारत के बाजारों में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पहुंचाने के लिए ही हुआ। भारत के लिए रेलवे की खास उपलब्धि यह थी कि धीरे–धीरे भारतीयों ने रेलवे के आवागमन की सुविधा का उपयोग किया, जिससे लोगों में परस्पर विचार–विनिमय एवं राष्ट्रीयता की भावना का विकास हो पाया।

1.4 अंग्रेजों की औद्योगिक नीति :

अंग्रेजों का प्रमुख लक्ष्य भारत का आर्थिक शोषण करना था। इंग्लैण्ड में हुई औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप वहां बड़ी–बड़ी मिलें खुल चुकी थी। इन मिलों ने कम कीमत पर अधिक कपड़ा उत्पादित होने लगा था। सस्ती लागत का कपड़ा भारतीय बाजारों में बिखेर दिया गया। फलतः अंग्रेजी कपड़ों की प्रतियोगिता में भारतीय कपड़े नहीं टिक सके, जिससे भारत का वस्त्र उद्योग लड़खड़ाने लगा। विदेशी बाजार तो पहले ही हाथ से निकल चुका था और अब देशी बाजार भी समाप्त होने लगा। अंग्रेज चाहते भी यही थे कि इंग्लैण्ड में निर्मित वस्तुओं के लिए भारतीय बाजारों में पूरी सुविधा उपलब्ध रहे। इसलिए अंग्रेजों ने भारत के औद्योगिक विकास के प्रति पूर्ण उपेक्षा की नीति का अवलम्बन किया। ज्यों–ज्यों भारत की औद्योगिक इमारत गिरती गई, इंग्लैण्ड में निर्मित माल की मांग बढ़ने लगी। लार्ड डलहौजी के समय बन्दरगाहों की सुविधाओं को बढ़ाकर इंग्लैण्ड के माल के निर्बाध प्रवेश का मार्ग और भी अधिक खुला कर दिया, जिससे भारत का व्यवसाय लगभग नष्ट हो गया। यद्यपि 19वीं शताब्दी के मध्य बम्बई प्रान्त मे पहली कपड़ा मिल स्थापित की गई, लेकिन इस उद्योग का विकास भी 1870 के बाद ही हुआ। 1850–1870 के मध्य भारत के विभिन्न भागों में रूई से बिनौले निकालने तथा गांठों में रूई भरने के लिए जिनिंग और प्रेसिंग मिले स्थापित की गई, लेकिन इस औद्योगिकरण की संज्ञा नहीं दी जा सकती, क्योंकि ये मिले केवल कच्चे माल को इंग्लैण्ड भेजने का कार्य करती थी। अतः इस उद्योग का विकास भी भारत में आर्थिक शोषण में सहायक हुआ।

19वीं शताब्दी के मध्य यूरोप में मुक्त व्यापर, समुद्री जहाजों के आवागमन की सुविधा तथा भाड़ा शुल्क में गिरावट के कारण विभिन्न देशों के बीच आयात–निर्यात में अत्यधिक वृद्धि हुई। फलस्वरूप माल को नाहर भेजने के लिए बंडल बांधने की सहायक सामग्री की आवश्यकता में भी वृद्धि हुई। बंडल बांधने की सहायता सामग्री के रूप में उपलब्ध पटसन अत्यन्त ही उपयोगी था। अतः स्काटलैण्ड के व्यापारियों ने इस उद्योग पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया। 1855 ई. में पहली पटसन मिल स्थापित हुई और इस मिल के बढ़ते हुए लाभ को देखते हुए पटसन मिलों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई। विश्व में पटसन उद्योग का एकाधिकार स्थापित हो गया। मिल मालिकों ने इस एकाधिकार का लाभ उठाया। उन्होंने उत्पादन को मांग से कम रखकर अपने लाभांश को बनाये रखा। 1884 में इण्डियन जूट मिल्स ऐसोसियेशन का गठन करके मिलों में होने वाली प्रतियोगिता को भी समाप्त कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मिल मालिकों को अधिक लाभ होते हुए भी पटसन की खेती करने वाले किसानों को कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि मिल मालिक कम कीमत देकर कच्चा पटसन खरीद लेते थे। प्रथम विश्व युद्ध के बाद 1929–30 की विश्व–व्यापी आर्थिक मन्दी का भी इस उद्योग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि मजदूरों के वेतन में कटौती करके किसानों को कच्चे पटसन की कीमत देकर तथा उत्पादन घटाकर मिल मालिक ने अपने लाभांश को बनाये रखा। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि अन्य देशों में बंडल बांधने की अन्य सहायक सामग्री की तलाश आरम्भ हुई और शीघ्र ही मोटा कागज, पटसन के स्थान पर आ गया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय भी उत्पादन भारी कमी हुं जबकि मूल्यों में बराबर वृद्धि होती गई, किन्तु कच्चे पटसन में मूल्य नहीं बढ़ाया गया।

भारत में कपड़ा कुटीर उद्योग काफी विकसित था तथा 18वीं शताब्दी में भारत का निर्मित कपड़ा इंग्लैण्ड को निर्यात किया जाता था। किन्तु 19वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड से कपड़ा आयात किया जाने लगा तथा भारत से रूई का निर्यात किया जाने लगा। फिर भी भारत में कुछ कपड़ा मिलें स्थापित हुई इस उद्योग के प्रमुख केन्द्र बम्बई, अहमदाबाद और कानपुर थे। किन्तु पूंजी पर निश्चित लाभ का आश्वासन प्राप्त किये कि व्यापारी पूंजी विनियोग के लिए उत्सुक नहीं थें। अतः मेनेजिंग ऐजेन्सी प्रणाली क विकास हुआ, जिसके अन्तर्गत मेनेजिंग एजेन्ट दीर्घावधि के लिए मिल के प्रबन्धक का उत्तरदायित्व स्वीकार कर लेते थे। मेनेजिंग ऐजेन्ट का उचित पारिश्रमिक उत्पादन अथवा बिक्री कर कमीशन दे दिया जाता था।

1894 में भारत में कपड़े तथा सूत पर 5 प्रतिशत आयात कर और भारत में निर्मित कपड़े पर 5 प्रतिशत उत्पादन शुल्क लगा दिया गया। किन्तु 1896 में यह उत्पादन शुल्क 3 1/1 प्रतिशत कर दिया गया। प्रथम विश्व युद्ध में अंग्रेजों को धन की आवश्यकता हुई, अतः आयात कर की दर बढ़ाकर 7 1/2 प्रतिशत कर दी गई और 1921 में इसे 11 प्रतिशत कर दिया गया, लेकिन उत्पादन शुल्क 3 1/2 प्रतिशत ही रहा। 1921 में भारत सचिव के सुझाव पर इंडियन फिसकल कमीशन नियुक्त किया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गया, जिसने उद्योग को संरक्षण देने की सिफारिश की। अतः 1923 में एक टेरिफ बोर्ड का गठन किया गया। लेकिन इस टेरिफ बोर्ड ने कपड़ा उद्योग को कोई सहायता अथवा संरक्षण प्रदान नहीं किया।

1925–26 के बाद जापान का कपड़ा भारत मे अत्यधिक मात्रा में आने लगा, जो इंग्लैण्ड में निर्मित कपड़े से घटिया और महंगा था। लेकिन विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के कारण इंग्लैण्ड के लिये सुरक्षित भारतीय बाजारो में जापानी वस्तुओ की बिक्री भी बढ़ने लगी। अतः इस स्थिति में सामना करने के लिए 1930 में इंग्लैण्ड से आयात होने वाले कपड़े पर 15 प्रतिशत तथा अन्य देशों बने कपड़े पर 20 प्रतिशत आयात कर लगा दिया। 1931 में इस आयात कर को इंग्लैण्ड के लिए 25 प्रतिशत तथा अन्य देशों के लिये 311/4 प्रतिशत कर दिया। जापान में मुद्रा का अवमूल्यन होने के बाद 1932 मे अन्य देशों के कपड़े पर आयात कर 50 प्रतिशत कर दिया और 1933 मे इसे बढ़ाकर 75 प्रतिशत कर दिया, किन्तु 1934 मे इसे पुनः 50 प्रतिशत कर दिया। 1935 में इंग्लैण्ड के लिये यह कर घटा कर 20 प्रतिशत कर दिया अया और 1939 में इसे और घटाकर 15 प्रतिशत कर दिया जबकि अन्य देशों के लिये वह 50 प्रतिशत ही निर्धारित रहा।

1.5 अंग्रेजों की कृषि सम्बन्धी नीति :

अंग्रेजी शासन से पूर्व भारत में उद्योग व्यवस्था और कृषि दोनों में सन्तुलन था। अतः 18वीं शताब्दी में भारत कृषि प्रधान होते हुए भी सम्पन्न था। किन्तु अंग्रेज प्रशासकों ने ऐसी नीति अपनायी की सिचाई की अधिक सुविधाओं के के बावजूद कृषि जीवन अस्त व्यवस्त हो गया। इस परिवर्तित स्थिति के लिये अंग्रेजों की कृषि सम्बन्धी नीति ही उत्तरदायी थी।

1793 में लार्ड कार्नवालिस ने भूमि का स्थायी बन्दोबस्त किया था। 19वीं शताब्दी के आरम्भ तक इस स्थायी बन्दोबस्त के दोष प्रकट होने लग गये थे। इसलिये दो नई प्रणालियों महलवाड़ी तथा रैयतवाड़ी प्रथा का विकास किया गया। 1801 में कम्पनी ने अवध से जो क्षेत्र प्राप्त किये तथा 1803–4 उत्तरी भारत में मराठों से जो क्षेत्र जीते, वहां महलवाड़ी प्रथा स्थापित की गई। इस प्रथा के अन्तर्गत राजस्व व्यवस्था प्रत्येक महल (यह फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ जागीर अथवा गांव होता है) के साथ स्थापित की गई। 1801 से 1803 के बीच अवध के प्रदेशों में लगान की दर 25 प्रतिशत तक बढ़ा दी गई। 1807 से 1818 के बीच लगान 50 प्रतिशत तक बढ़ गया। 1818 में पहली बार महलवाड़ी प्रथा को औपचारिक एवं व्यवस्थित रूप से लागू किया गया। इसके अनुसार गांव के प्रधान के साथ समझौता किया गया। गांव का प्रधान किसानों से लगान वसूल करके, प्राप्त हुए लगान का 83 प्रतिशत कम्पनी के कोष में जमा करा देता था। 1833 में इस प्रथा को और अधिक व्यवस्थित किया गया। इसके अनुसार कुछ गांवों को मिलकर महल का निर्माण किया गया तथा उस महल का लगान निश्चित कर दिया गया और फिर उस लगान को गांवों में विभाजित कर दिया गया। इस समय भूराजस्व की मांग इतनी अधिक थी कि आगे चलकर स्वयं सरकार को इसे कम करने के लिये विवश होना पड़ा। इस समय भूराजस्व की मात्रा पैदावार का 2/3 निर्धारित की थी, लेकिन 1855 में लगान की मात्रा पैदावार का 1/2 कर दी गई।

मद्रास में पहली जमींदारी प्रथा स्थापित करने का प्रयत्न किया गया, लेकिन वहां कुछ क्षेत्रों में जमींदार वर्ग था ही नही। 1800 ई. में बंगाल की नीलामी व्यवस्था लागू की गई। किन्तु वह भी पूरी तरह सफल नहीं हुई। अतः वहां भी महलवाड़ी प्रथा स्थापित की गई। क्योंकि गांव का प्रधान, दूसरे किसानों का दायित्व अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं था। अतः विवश होकर 1812 में वहां रैयतवाड़ी प्रथा स्थापित की गई। इसके अन्तर्गत प्रत्येक किसान के साथ व्यक्तिगत रूप से समझौता करके राजस्व तय किया जाता था। किसान को यह विकल्प दिया जाता था कि वह चाहे तो निर्धारित लगान देकर खेती करे अथवा खेती का कार्य छोड़ दे। यह प्रथा किसानों के लिये हानिकारक सिद्ध हुई, क्योंकि प्रथम तो भूराजस्व की मात्रा अत्यधिक थी और दूसरा, किसी वर्ष फसल खराब हो जाने पर लगान में छूट की संभावना न थी। अधिकारी बड़ी निर्दयता से लगान वसूल करते थे। अतः 1852–53 में ब्रिटिश संसद की जांच समिति ने इसमें परिवर्तन के आदेश दिये, लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं निकला बम्बई में भी भूमि की पैमाइश करवाई गई और कुछ फेर बदल कर रैय्यतवाड़ी प्रथा ही स्थापित की गई वहां पर भी किसानों पर लगान का बोझ अत्यधिक रहा।

1.6 अंग्रेजों की अकाल के प्रति नीति :

भारत–कृषि प्रधान देश होने के कारण सदैव मानसून के हाथ का खिलौना रहा है। मानसून के असफल होने पर न केवल फसल ही खराब होती है, बल्कि किसान को अपने पशुधन और हल से भी वंचित होना पड़ता है। तालाबों का पानी सुख

Jan Kalyan Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाता है और इसके कीचड़ में नाना प्रकार के कीटाणु उत्पन्न हो जाते है। जिसका परिणाम होता है लाखों लोगों की मृत्यु और घास के अभाव में पशु धन की समाप्ति। जो इससे बच जाते है, उनके भाग्य में होती है बीमारी और भुखमरी। मुगल शासकों के समय यद्यपि भूमि का प्रबन्ध तो कर दिया, किन्तु अकाल से रक्षा करने का कोई स्थायी प्रबन्ध नहीं किया गया। मुगलों के बाद कम्पनी राजसत्ता ने भी 18वीं शताब्दी में इस और अधिक ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उस समय कम्पनी अपने राज्य विस्तार में व्यस्त थी। अतः राष्ट्रीय स्तर पर किसी नीति का निर्माण नहीं किया गया।

1837 में भयंकर अकाल पड़ा, लेकिन अकाल राहत के लिए कोई व्यापक कार्य नहीं किया गया। कई स्थानों पर भुखमरी के कारण दंगे हुए, किन्तु सरकार ने उसका दमन कर दिया। 1857 के विप्लव के बाद इस भीषण समस्या की ओर ध्यान दिया गया। 1857 से 1947 के मध्य ज्यों–ज्यों अकाल पड़ने लगे, नये नये आयोगों की नियुक्ति होने लगी, जिन्होंने समय–समय पर अकाल के कारणों को ज्ञात करके सहायता के लिए सिफारिशें की, किन्तु इस समस्या का कोई स्थायी हल नहीं ढूंढा जा सका, क्योंकि अंग्रेजों को भारतीय जनता के प्रति कोई सद्भावना नहीं थी।

1860 में भयंकर अकाल पड़ा। किन्तु उत्तरी पश्चिमी प्रान्त के दक्षिण पूर्वी जिलों में थोड़ी बहुत वर्षा हो जाने से अकाल की भयंकरता में कमी आ गई। भारत सरकार ने प्रथम बार कर्नल बेयर्ड स्मिथ की अध्यक्ष में एक अकाल आयोग की नियुक्ति की। किन्तु अकाल आयोग की सिफारिशें कार्यान्वित नहीं हो सकी। 1866–77 में उड़ीसा और दक्षिण–पूर्वी समुद्र तट पर भंयकर अकाल पड़ा। इस अकाल से दस से बीस लाख तक लोग मौत के मुंह में चले गये। व्यापारियों ने अनाज का भण्डार भरके स्थिति को और भी संकटमय बना दिया। सरकार ने समय पर अपना उत्तरदायित्व नहीं संम्भाला। उड़ीसा में पड़े इस आकल के कारणों तथा उसका सामना करने के उपायों पर विचार करने के लिए कैम्पबेल की अध्यक्षता में एक अकाल आयोग नियुक्त किया गया। 1868–69 में उत्तर पश्चिमी प्रान्त, पंजाब और राजपूताना के कुछ भागों में अकाल पड़ा। सरकार ने इस दिशा में अधिक सजग रहने के आदेश जारी किए, फिर भी एक करोड़ दो लाख लोगों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा।

1873 में पुनः मानसून असफल हो जाने से बिहार में भयंकर अकाल पड़ा। लार्ड नार्थब्रुक ने बर्मा से भारी मात्रा में चावल खरीदा तथा इस क्षेत्र में वितरित किया, जिससे अकाल की भंयकरता घट गई। यह प्रथम अवसर था, जबकि मनुष्यों को भूख से बचाया गया तथा अकाल का सफलतापूर्वक सामना किया गया। लेकिन यह समस्या का स्थायी हल नहीं था। फलस्वरूप जब 1876–77 में पुनः मानसून असफल हो गया तब फिर भीषण अकाल पड़ा। 1876 में इसका प्रकोप मद्रास, बम्बई, हैदराबाद और मैसूर तक ही सीमित रहा, किन्तु अगले वर्ष पुनः मानसून की असफला के कारण इसने मध्य भारत एवं पंजाब के कुछ क्षेत्रों को भी अपनी चपेट में ले किया। इतने विशाल क्षेत्र पर पूर्ण अकाल का प्रकोप कभी नहीं हुआ था लार्ड लिटन ने इस दिशा में कोई ठोस कार्य नही किया। इससे लिटन की तीव्र आलोचना हुई। अतः लिटन ने सर रिचर्ड स्ट्रेची आयोग ने 1880 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत है। इसने मुख्य रूप से निम्न सुझाव दिये –

1. अकाल के समय स्वस्थ व्यक्तियों को राहत कार्यों में नियुक्त किया जाए तथा उन्हें पेट भरने योग्य पारिश्रमिक दिया जाये। आयोग का अनुमान था कि 15 प्रतिशत किसान परिवार ऐसे कार्यों का लाभ उठाने को तैयार हो जायेंगे।
2. विशेष परिस्थितियों में स्थानीय व्यापारियों को अनाज के वितरण का कार्य सौपा जाय और उन पर करीब से नियन्त्रण रखा जाये।
3. अकालग्रस्त क्षेत्रों से भू–लगान स्थिगित कर दिया जाये अथवा समाप्त कर दिया जाये तथा किसानों के लिए कर्ज की व्यवस्था की जाये, जिससे कि किसान बैल तथा बीजों की व्यवस्था कर सके।
4. सामान्य राजस्व में से 15 लाख पौण्ड का एक कोष तैयार किया जाये जो अकाल के समय लगान कम करने अथवा माफ करने के काम आ सके तथा अकालग्रस्त क्षेत्रों में नहरे खोदने एवं रेलें निकालने के काम आ सके।
5. केन्द्र के नियन्त्रण में स्थानीय अकाल कोड का निर्माण किया जाये।

इन सुझावों के आधार पर एक स्थायी कोष की स्थापना की गई। 1883 अकाल कोड का निर्माण किया गया।1896 के अकाल के चिन्ह अभी मिट ही नहीं पाये थे कि 1899 में भयंकर सूखा पड़ गया। पंजाब, राजपूताना, बडौदा, बम्बई, मध्य प्रान्त, बरार, हैदराबाद और गुजरात इससे प्रभावित थे। केवल ब्रिटिश क्षेत्र में 10 लाख व्यक्ति अकाल की भेंट चढ़ गये तथा 50 लाख

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पौण्ड की फसल नष्ट हो गई। 1907–08 में पुनः अकाल पड़ा इस समय तक भारत में राष्ट्रवादी आन्दोन चल पड़ा था। अतः सरकार ने अकाल राहत के लिये तुरन्त कार्यवाही की और अकाल को उत्तर प्रदेश तक ही सीमित कर दिया।सरकार ने किसानों को ऋण दिया तथा भू लगान भी स्थगित कर दिया। इसके बाद 1918 में पुनः मानसून की असफलता के कारण अकाल पड़ा।

1.7 रेल निर्माण कार्य :

विश्व के विभिन्न देशों की आर्थिक प्रगति में रेलों का भारी योगदान था। यातायात की सुविधा के बिना भारी वस्तुओ का एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना तथा बडे पैमाने पर उत्पादित वस्तुओं का व्यापार सम्भव नहीं था। यद्यपि विश्व में प्रथम रेल मार्ग 1830 मे खुल गया था, लेकिन भारत में 1848 के पूर्व अंग्रेज प्रशासकों ने रेल निर्माण की योजना में रूचि नहीं ली। लार्ड डलहौजी को भारत में रेल निर्माण का श्रेय दिया जाता है। डलहौजी के बाद के गवर्नर जनरलों ने भी रेल लाइनों का विकास किया, किन्तु भारत में रेल निर्माण का विकास होने के बावजूद इतना आर्थिक विकास नहीं हो सका, जितना जापान, जर्मनी, कनाड़ा, आस्ट्रेलिया आदि देशों में रेलों के निर्माण के पश्चात् हुआ था। इसके लिए अंग्रेजी रेल नीति मुख्य रूप से उत्तरदायी थी।

सर्वप्रथम लार्ड हार्डिंग ने साम्राज्य की सुरक्षा के लिये, सेनाओं को एक–स्थान पर भेजने के लिये कम्पनी के संचालकों को भारत में रेल निर्माण को प्रोत्साहन देने हेतु लिखा था। रेलों के निर्माण से भारत से कच्चे माल का निर्यात बढ़ सकता था तथा इंग्लैण्ड में उत्पादित माल को बड़ी मात्रा में भारत भेजा जा सकता था। इस प्रकार रेलों का निर्माण, भारत की अर्थव्यवस्था को इंग्लैण्ड की अर्थव्यस्था के अधीन बनाये रखने का प्रयास मात्र था। लार्ड डलहौजी द्वारा किया गया रेल निर्माण कार्य एक विशेष पद्धति पर आधारित था, जिसे गारन्टी पद्धति कहा जाता है। इस पद्धति के अन्तर्गत ब्रिटिश निजी कम्पनियों को सरकारी देखरेख में रेल निर्माण का कार्य सौपां गया। इन कम्पनियों को उनकी पूंजी पर ब्याज और 41/2 से 5 प्रतिशत लाभ की गारन्टी दी गई। यदि कभी निर्धारित लाभ से कम लाभ होता था तो सरकार की ओर से वह राशि पूरी की जाती थी। सरकार का 25–30 वर्ष पश्चात रेलों को खरीदने का अधिकार दिया गया।

इस गारन्टी पद्धति के पक्ष व विपक्ष में अनेक तर्क दिये गये हे। इसके पक्ष में मुख्य बात यह कही जाती है कि इस पद्धति द्वारा बिना कम्पनी के कोष पर बोझ पड़े रेल निर्माण का कार्य चालू हो गया। यह भी कहा जाता है कि उस समय भारतीय पूंजी विनियोग के लिये उपलब्ध नहीं थी और ब्रिटिश पूंजी का विनियोग भारत में तब तक सम्भव नहीं था, जब तक कि पूंजी विनियोग करने वालों को उनकी पूंजी की गारन्टी नहीं दे दी जाती । लेकिन इस तर्क में कोई सत्यता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि अमेरीका, कनाड़ा, आस्ट्रेलिया तथा यूरोप के अन्य देशों में अंग्रेज उद्योगपति बिना गारन्टी के पूंजी विनियोग कर रहे थे, फिर ब्रिटिश साम्राज्य में अंग्रेजों को ही गारन्टी देने की क्या आवश्यकता थी। वास्तविकता यह थी कि उस समय इंग्लैण्ड में अतिरिक्त पूंजी बहुत थी और अंग्रेज पूंजीपति विभिन्न देशों में विनियोग का अवसर ढूंढ रहे थें इस पद्धति द्वारा उन्हें लाभ कमाने का स्वर्ण अवसर मिल गया। फिर गारन्टी मिल जाने पर किफायत से काम करने की भी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि समस्त पूंजी पर लाभ की गारन्टी थी। यह तथ्य इस बात से भी प्रकट होता है कि भारत में रेल निर्माण पर औसत खर्च 20 से 30 हजार पौण्ड प्रति मील आ रहा था, जबकि इंग्लैण्ड में यह केवल 9,000 पौण्ड था। इसके अतिरिक्त छोटे से छोटा पुर्जा भी इंग्लैण्ड से आयात किया जाता था। अतः रेल निर्माण योजना भारत से धन निष्कासन का एक सहायक कारण बनी। रेलों में लगाई गई पूंजी तथा ब्याज भारत को लौटना पड़ रहा था, फिर भी रेल सम्पति राष्ट्रीय सम्पति में शामिल नहीं हो पायी। अंग्रेज लेखकों ने भारत में रेलों का लाभ बताते हुए कहा है कि इससे भारत का निर्यात व्यापार बढ़ा, भारतीयों को नौकरी के अवसर उपलब्ध हुए और अकाल के समय वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में सुविधा हुई। लेकिन निर्यात व्यापार बढ़ने से लाभ केवल अंग्रेजों को हुआ। भारतीयों को नौकरी के अवसर अवश्य उपलब्ध हुए, लेकिन उनकी संख्या बहुत ही कम थी। फिर हमें यह आंकड़े अभी उपलब्ध नहीं हो पाये है कि भारतीयों को किस वेतन पर नौकरी पर लिया जाता था। अंग्रेजों की प्रजातीय विभेद की नीति को देखते हुए इस प्रश्न का उत्तर भी सरलता से दिया जा सकता है। ब्रिटिश कम्पनियों ने रेल निर्माण में मितव्ययता से काम नहीं लिया, अतः कम्पनियों को घाटा रहा, जिसे भारतीय राजस्व से पूरा किया गया।

1860 में गारण्टी पद्धति को त्याग कर अंग्रेज सरकार ने स्वयं पूंजी उधार लेकर रेल निर्माण की नीति अपनाई। इस नीति के अन्तर्गत राजपूताना, उत्तरी पंजाब और उत्तरी बंगाल में रेल लाइनें खोली गई। किन्तु 1876–77 के अकाल के कारण तथा द्वितीय अफगान युद्ध के कारण भारत की अर्थव्यवस्था अस्त–व्यस्त हो गयी। अतः इस नीति का परित्याग कर पुनः पहले

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की अपेक्षा अधिक उधार शर्तों पर गारण्टी पद्धति अपनाई गई। अंग्रेजी सरकार ने देशी रियासतों को अपने राज्य में रेल निर्माण के लिये प्रोत्साहित किया। अतः विभिन्न रयासतों की रेल लाइनें स्थापित हुइ। 1905 में रेलों के सुप्रबन्ध के लिये रेलवे बोर्ड की स्थापना की गई। 1921 में एक्वर्थ कमीशन रेलों के विकास की एक योजना बनाई किन्तु सरकार ने इस कमीशन के सुझावों को अस्वीकार कर दिया। रेल कम्पनियां प्रतिवर्ष एक करोड़ रूपया लाभ के रूप में इंग्लैण्ड ले जाती थी, किन्तु व्यापारियों, उत्पादको और यात्रियों की सुविधा की और बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया। अतः इसके विरूद्ध जन आन्दोलन हुआ। विवश होकर सरकार ने अनेक रेलों को अपनी व्यवस्था के अन्तर्गत ले लिया। 1925 में ईस्ट इण्डिया रेलवे और जी.आई.पी. रेलवे, 1930 में सदर्न पंजाब रेलवे तथा 1942 में बी.बी. एण्ड सी.आई. रेलवे सरकार ने अपने हाथ में ले ली थी। इसके बाद रेलों के प्रबन्ध व संचालन में परिवर्तन हुए और यात्रियों की सुविधाओं की और कुछ ध्यान दिया।

1.8 मुद्रा व्यवस्था तथा बैंक :

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत में विनिमय प्रायः वस्तुओं के आदान–प्रदान से होता था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय भी कुछ समय तक भूमि का लगान प्राय अनाज के माध्यम से ही चुकाया जाता रहा। किन्तु शीघ्र ही अंग्रेजों द्वारा मुद्रा के माध्यम से भुगतान की प्रथा लागू कर दी गई। इस प्रथा से आरम्भ में किसानों को असुविधा का सामना करना पड़ा, क्योकि उन्हें अपनी उपज सस्ते भाव में बेचनी पड़ती थी और लगानचुकाना पड़ता था। किन्तु इस मुद्रा व्यवस्था के कारण देश में विनिमय बड़ा आसान हो गया। देश में आर्थिक जीवन में बैंकों का सदैव महत्त्व रहा है। आरम्भ में यह साहूकार वर्ग बैंकों का कार्य करता था। यह साहूकार वर्ग विभिन्न प्रकार के व्यापार करते थे, उत्पादन का कार्य करते थे तथा ऋण देने का काम भी करते थे। प्रमुख व्यापारिक नगरों और मंडियों में इनकी आदत होती थी, जिनके द्वारा वे अपना वाणिज्य व्यवसाय करते थे। ये देश के विभिन्न भागों में हुण्डियों द्वारा रूपया का भुगतान करते थें 18वीं शताब्दी में तो स्वयं ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी अपना ऋण का भुगतान करने हेतु देशी साहूकारों का आश्रय लेती रही। भारत में आधुनिक बैंक व्यवस्था प्रादुर्भाव 18वीं शताब्दी में बम्बई और कलकत्ता में विद्यमान अंग्रेज एजेन्सियों के बैंको से हुआ। कम्पनी के व्यापार में सहायता करते थे। इसके बाद प्रेसीडेन्सी बैंक स्थापित हुए। सर्वप्रथम कलकत्ता मं 1806 में बैंक ऑफ बंगाल, 1840 में बैंक ऑफ बाम्बे तथा 1843 में बैंक ऑफ मद्रास स्थापित हुए। 1862 के पूर्व तक ये बैंक ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ऋण देते थे, और अंग्रेज व्यापारियों को आर्थिक सहायता देने के साथ नोट भी चलाते थे। किन्तु 1862 में ये नोट चलाने के अधिकार से वंचित कर उन्हें प्रान्तों के विभिन्न नगरों में सरकारी खजाने का कार्य सौपा गया। आगे चलकर 1921 में तीनों प्रेसीडेन्सी बैंको को मिलाकर इम्पीरियल बैंक की स्थापना की गई। 1836 से एक केन्द्रीय बैंक स्थापित करने का विचार चल रहा था। 1913 में चेम्बरलेन कमीशन और बाद में हिल्टन यंग कमीशन ने इस पर गम्भीरता से विचार कर एक विशिष्ट केन्द्रीय बैंक स्थापित करने का सुझाव दिया। फलस्वरूप 1924 में भारत की व्यवस्थापिका सभा ने रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट स्वीकृत किया, जिसके अनुसार भारत में रिजर्व बैंक की स्थापना हुई। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बैंकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासन काल में भारत के आर्थिक जीवन में यद्यपि युगान्तकारी परिवर्तन हुए, किन्तु अंग्रेजों का प्रमुख लक्ष्य भारत का औपनिवेशिक शोषण था। अतः भारत के आर्थिक ढांचे में इस प्रकार परिवर्तन किये गये कि वह इंगलैड की अर्थव्यवस्था का पोषण करता रहे। किन्तु अंग्रेजों के इन प्रयत्नों से अप्रत्यक्ष रूप से भारत के आधुनिकरण का श्री गणेश हो गया, यद्यपि अंग्रेजों का यह लक्ष्य नहीं था।

1.9 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – धन निष्कासन का अर्थ बताइये?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – अंग्रेजों की अकला के प्रति निति पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – ब्रिटिश सत्ता की आर्थिक नीतियों का उल्लेख करते हुए उसके प्रभाव को बताइयें?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 2

भारतीय राष्ट्रीयता के उदय के कारण

2.0 राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्भव एवं विकास
2.1 राष्ट्रीयता के उदय के कारण
2.1.1. भारत का राजनीतिक एकीकरण
2.1.2. धर्म सुधार आन्दोलन
2.1.3 अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव
2.1.4 साहित्य का योगदान
2.1.5 राजनीतिक व प्रशासनिक एकता
2.1.6 यातायात का विकास
2.2 विद्रोह के बाद राष्ट्रीय चेतना का विकास
2.3 बोध प्रश्न

2.0 राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्भव एवं विकास :

प्रत्येक देश में राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना उन अनेक शक्तियों के पारस्परिक एवं सामूहिक प्रभाव का परिणाम होती है, जो दीर्घकाल से उस देश में कार्यरत रहती हैं भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की अग्रणी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस थी, जिसका जन्म कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि उस असीमित आर्थिक तथा राजनीतिक असंतोष की व्यापक अभिव्यक्ति थी, जो ब्रिटिश शासन की प्रतिक्रियावादी नीतियों के कारण भारतीयों में उत्पन्न हो रहा था। अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारतीय समाज में एक नये शिक्षित मध्यम वर्ग का विकास हो चुका था। इस मध्यम वर्ग में कुछ लोग ऐसे थे, जो सरकार नौकरी प्राप्त करने` इच्छुक थे और कुछ अपना स्वतन्त्र व्यवसाय – जेसे वकालत, पत्रकारिता आदि। इस मध्यम वर्ग में दो प्रकार की विचारधारा के लोग थे – एक वर्ग तो ब्रिटिश सरकार का गुणगान करता रहता था। तथा इंग्लैण्ड में प्रचलित प्रजातन्त्र का उदाहरण देकर भारत में भी उसी प्रकार की सुविधाएं चाहता था। वह अंग्रेजों को अपनी नीतियों में परिवर्तन करने का अनुरोध करता रहता था। दूसरा वर्ग अंग्रेजी सरकार की कृपा का आकांक्षी नहीं तथा अपने व्यक्तिगत अधिकारों को प्राप्त करने के लिये सरकारी कृपा को आवश्यक नहीं मानता था। वह प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों में आस्था रखता था।

2.1 राष्ट्रीयता के उदय के कारण :

अंग्रेजों ने रंग एवं जाति का भेद किये बिना भारतीयों को सरकारी सेवा में लेने का बार–बार आश्वासन दिया था, किन्तु व्यवहारिक रूप से ऐसे प्रबन्ध किये कि भारतीयों के लिये सरकार सेवाओं के द्वार बिल्कुल बन्द थे। अतः 1870 के बाद शिक्षित वर्ग में राजनैतिक चेतना उत्पन्न हुई और उन्होंने प्रशासकीय सुविधाओं तथा प्रशासन से संबंद्ध होने हेतु मांग की। यह मांग किसी एक प्रान्त, विशिष्ट क्षेत्र, जाति अथवा गुट विशेष तक सीमित नहीं थी बल्कि यह मांग अखिल भारतीय थी। इस अखिल भारतीय राजनीतिक जागरण के कारण निम्नलिखित थे –

2.1.1. भारत का राजनीतिक एकीकरण :

1707 के बाद भारत की राजनैतिक एकता कालोप हो चुका था। किन्तु अंग्रेजों ने सम्पूर्ण देश को एक दृढ़ केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत लाकर भारत में राजनीतिक एकता स्थापित की। इससे भारतीयों में राष्ट्रीय भावना का अंकुरण हुआ और शनैःशनैः समान विचारों वाले व्यक्तियों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना हुई। ब्रिटिश शासन काल में जिस राजनीतिक एकता का प्रदुर्भाव हुआ वह उस राजनीतिक एकता से सर्वत्र भिन्न थी, जो प्राचीन तथा मध्यकालीन शासकों द्वारा स्थापित हुई थी। इस एकता को महत्वपूर्ण बनाने का श्रेय पाश्चात्य शिक्षा, यातायात का विकास और संचार साधनों के विकास को है कुछ विद्वानों ने

Jainvishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तो यहां तक कह दिया है कि, ''कम्पनी के शासन काल के कारण ही उस नींव की स्थापना हुई, जिसके कारण भारत में वैधानिक विकास और राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, अन्यथा वह भारत में एक कल्पना ही बनी रहती।'' ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत विभिन्न भाषा–भाषी, धार्मिक तथा सामाजिक दल, एल दल में, सम्मिलित हुए और उनमें राजनीतिक एकता की भावना जागृत हुई, जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

2.1.2. धर्म सुधार आन्दोलन :

19वीं शताब्दी में भारतीय राष्ट्रवाद की प्रबल धारा को उस युग के सुधार आन्दोलनों ने अपूर्व बल प्रदान किया। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही ईसाई धर्म का प्रचार भी बड़ी तेजी से होने लगा। पढ़े लिखे भारतीयों में ईसाई धर्म के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया और वे ईसाई धर्म स्वीकार करने लगे। इस प्रक्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में भारत में विभिन्न धर्म सुधार आन्दोलन हुआ। राजा राममोहन राय ने ब्राह्मा समाज की सथापना करके ईसाई धर्म की और आकर्षित होने की भावना को कम किया। राजा राममोहन राय ने जो कार्य किया वह केवल बंगाल में अंग्रजी पढ़–लिखे लोगों तक ही सीमित रहा, किन्तु स्वमी दयानन्द सरस्वती और उनके आर्य समाज ने यह आन्दोलन जन साधरण तक पहंचा दिया। स्वामीजी एक महान देशभक्त थे, जिन्होंने कहा था ''विदेशी राज्य चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वदेशी राज्य की तुलना में कभी अच्छा नहीं हो सकता।'' स्वामीजी प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने कहा था, भारत भारतीयों के लिए है।' दक्षिण भारत में थियोसॉफिकल सोसाइटी ने लोगों को जागृत किया। भारत में इस आन्दोलन को व्यापक बनाने का श्रेय श्रीमती एनीबीसेंट को है जिसने राष्ट्रीय चेतना की प्रबल धारा को आगे बढ़ाया। स्वामी विवेकानन्द ने समस्त विश्व में हिन्दू धर्म और आध्यात्मवादकी श्रेष्ठता को स्थापित किया। उन्होंने कहा कि वेदान्त और आध्यात्मिकता केवल से समस्त विश्व पर सांस्कृतिक विजय प्राप्त की जा सकती है, किन्तु जब तक भारत दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, वह इस महत्वपूर्ण भूमिका को नहीं निभा सकता। महाराष्ट्र में सर गोपाल हरि देशमुख तथा ज्योतिबा फुले जैसे सुधारकों ने हिन्दू समाज के दलित वर्गों के उत्थान के लिये ब्रिटिश साम्राज्य को आवश्यक बाताया, किन्तु विष्णुकृष्ण चिफलंकर तथा वासुदेव फड़के जैसे सुधारकों ने सामाजिक बुराइयों की अपेक्षा विदेशी नियन्त्रण को अधिक आपत्तिजनक बताया।

2.1.3 अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव :

पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार यद्यपि प्रशासनिक आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए किया गया था लेकिन इससे नवशिक्षित वर्ग के लिए पाश्चात्य उदारवादी विचारधारा के द्वार खुल गये। ट्रैवेलियन, मैकाले एवं बैंटिक ने अंग्रेजी शिक्षा का निर्णय लिया था उस समय शायद सोचा भी नहीं गया होगा कि इस शिक्षा प्रणाली के दूरगामी परिणाम होंगे। अब युवाओं के बेन्थम, शीले, मिल्टन स्पेन्सर, स्थुअर्ट मिल, रूसो, वाल्टेयर, को पढ़ने के अवसर मिले। इन विद्वानों के अतिवादी एवं उदारवादी विचारों ने भारतीय बुद्धिजीवियों में स्वतंत्र राष्ट्रीयता तथा स्वशासन की भवनाएं जागृत कीं और धीरे–धीरे प्रबुद्ध वर्ग में अंग्रेजी साम्राज्य का विरोधाभास खुलने लगा।

उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी भाषा ने सम्पूर्ण देश में विभिन्न प्रान्तों एवं स्थानों के लोगों के लिए सम्पर्क भाषा का कार्य किया। सभी भाषा–भाषियों को एक मंच पर लाने का श्रेय अंग्रेजों को ही देना होगा। परिणामतः राष्ट्रीय आन्दोलन को अखिल भारतीय स्वरूप मिल पाया। नवशिक्षित, वकील, डाक्टर आदि ने इंग्लैण्ड एवं यूरोप की यात्राएं की, इटली व जर्मनी का एकीकरण एवं राष्ट्रीयता उन्हें क्यों न प्रेरित करती। स्वतंत्रता, समानता एवं प्रतिनिधित्व के सिद्धान्तों को लेकर शुरू हुई फ्रांस की क्रांति (1789 ई) और अमरीका के स्तंत्रता संग्राम (1776 ई.) से लोग परिचित हुए। लोगों ने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही प्लेटो, देकार्त, हीगल, मार्क्स, कांट एवं मिल जैसे विचारकों को पढ़ा तथा लोकतान्त्रिक पद्धति से परिचित हुए।

विश्व के अन्य देशों में हो रहे आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों के विषय में बोध ने भारतीय नेतओं के दृष्टिकोण को विस्तृत किया। दादाभाई नौरोजी ने ठीक ही कहा था कि पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति भारत के राष्ट्रवाद में अपना विशिष्ट स्थान रखती है और उसने इमें एक नया प्रकाश दिया है कि 'राजा प्रजा के लिए होता। प्रजा राज के लिए नहीं।' वस्तुतः देश प्रेम की भावना व स्वतंत्रता अंग्रेजी शिक्षा की देन नहीं थी, बल्कि अंग्रेजी शिक्षा से ये भावनाएं उजागर हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.1.4 साहित्य का योगदान :

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी में विभिन्न भाषाओं में साहित्य का सृजन हुआ जिससे लोगों में राष्ट्रीय बोध जागृत हुआ। हिन्दी में भारतेन्दु हरिशचन्द्र, प्रेमचन्द, बंगला में रविन्द्रनाथ टैगोर, बंकिमचन्द्र चटर्जी, शरतचन्द्र, मराठी में विष्णुशास्त्री चिपलंकर, असमिया में लक्ष्मीदास बेजबरूआ आदि इस काल के प्रख्यात साहित्यकार थे। साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा लोगों में स्वतन्त्रता, समानता, एकता, भाईचारा और राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा मिला। कहा जा सकता है कि इस काल मे साहित्यकारों ने राष्ट्रीय भावना को जागृत करने में सह संवाहक की भूमिका की।

2.1.5 राजनीतिक व प्रशासनिक एकता :

भौगोलिक, धार्मिक व सांस्कृतिक दृष्टि से भारत में सदा से ही एकता रही है किन्तु राजनैतिक व प्रशासनिक एकता न होने के कारण वह कोई गहन रूप न ले सकी। प्राचीनकाल में चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक व समुद्र गुप्त तथा मध्य काल में अकबर, औरंगजेब व शिवाजी सभी ने प्रयत्न किए किन्तु वे सम्पूर्ण भारत में एक छत्र राज्य स्थापित न कर सके। यह कार्य महारानी विक्टोरिया के राज्यकाल में ही पूरा हुआ जब हिमालय से कन्याकुमारी और सौराष्ट्र से आसाम तक सम्पूर्ण देश एक राष्ट्र के अन्तर्गत संगठित हुआ। बिटिश राज्य के अन्तर्गत इस राजनीतिक एकता के कारण ही प्रत्येक देशवासी यह अनुभव र सका कि वह एक राष्ट्र का नागरिक है। इसी काल में राजनीतिक एकता के साथ प्रशासनिक एकता को भी स्थापित करने का प्रयत्न हुआ। 1857 के विद्रोह के अनन्तर एक ही प्रकार की न्याय व्यवस्था, फौजी प्रशासन व अर्थव्यवसथा स्थापित की गई। इंडियन पेनल कोड, क्रिमिनल प्रोसीजर्स कोड आदि संकलित किए जो समान रूप से सब नागरिकों पर लागू होते थे। इसी प्रकार आयात निर्यात कर, विनिमय की दर, समानमुद्रा आदि भी चालू की गई। इस प्रशासनिक एकता ने राजनीतिक एकता को और भी अधिक दृढ़ किया। समान प्रशासनिक व्यवस्था ने राज्य शासन के प्रति समान प्रतिक्रिया उत्पन्न की। सब नागरिकों के सुख–दुख समान हो गए अतः वे सब एक दूसरे के निकट आ गए और परस्पर एक हो गए। इस प्रकार राजनीतिक व प्रशासनिक एकता ने अमूर्त व निर्बल धार्मिक व सांस्कृतिक एकता को साकार व मूर्तरूप प्रदान कर उसे नित्य जीवन में एक सबल शक्ति बना दिया।

2.1.6 यातायात का विकास :

राजनीतिक व प्रशासनिक एकता को रेल तार डाक, सड़क, पुल इत्यादि के निर्माण कार्य ने और भी दृढ़तर किया। साम्राज्य की सुरक्षा व व्यापार की वृद्धि के लिए यातायात के साधनों का विकास बहुत तेजी से किया गया परन्तु परोक्ष रूप से उन्होंने देश की एकता को मजबूत बनाया। सारे देश के लोग चाहे वे उत्तर में रहते हो या दक्षिण में, पश्चिम में या पूरब में, एक–दूसरे के बहुत निकट आ गए और नित्य प्रति के जीवन में एकता का अनुभव करने लगे। नेताओं के लिए अब सम्भव हो गया कि वे सारे देश का दौरा कर सकें और राजनीतिक व प्रशासनिक प्रश्नों पर समान जनमत तैयार कर सकें। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा सिविल सर्विस के प्रश्नपर या इलबर्ट बिल पर उत्तर या दक्षिण भारत की यात्रा यातायात के विकास के कारण ही सम्भव हो सकी। सारा देश अब तक एक सत्र में बन्ध गया और देशव्यापी आन्दोलन संगठित करना सम्भव हो गया।

2.2 विद्रोह के बाद राष्ट्रीय चेतना का विकास :

1857 के विद्रोह के समय वैधानिक राजनीति का यह क्रम कुछ समय के लिए अवरूद्ध हो गया। विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासकों ने कम्पनी की सत्ता समाप्त करके राज्यशासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली और देश के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन में बहुत क्रांतिकारी परिवर्तन कर डाले। इन परिवर्तनों में कुछ सृजनात्मक परिवर्तन थे और कुछ विध्वंसात्मक परिवर्तन थे परन्तु दोनों ही प्रकार के परिवर्तनों ने आधुनिक काल की राष्ट्रीय चेतना को जन्म दिया। अतः यदि हम यह कहें कि आधुनिककाल की राजनीतिक चेतना बहुत कुछ ब्रिटिश राज्य का ही परिणाम है तो अनुचित न होगा।

अंग्रेज शासकों ने आरम्भ से अन्त तक भारत का आर्थिक शोषण किया। इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति और 1813 ई. से सभी अंग्रेज कम्पनियों को भारत में व्यापार करने की सुविधा ने इस आर्थिक शोषण की गति को तीव्र कर दिया, भारतीय उद्योग धन्धे नष्ट हो गये, कृषि पर भार अधिक हो गया और भारत दिन–प्रतिदिन निर्धन होता गया। आर्थिक कठिनाइयों के कारण राजनतिक सत्ता के प्रति असन्तोष स्वाभाविक है और यह असन्तोष विदेशी सत्ता के विरूद्ध विरोध या विद्रोह का कारण बन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जाय, यह स्वाभाविक है। यही स्थिति भारत में हुई। भारतीयों ने अपनी आर्थिक दुर्दशा का मूल कारण अंग्रेजी शासन को ठहराया। अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत रेल, डाक, तार, बेतार का तार, सड़के, मोटर आदि यातायात की सुविधाओं में वृद्धि होने से नागरिकों को परस्पर सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ और राष्ट्रीय आन्दोलन को संगठित करने में सुविधा हुई। विदेशों से सम्पर्क स्थापित होने के कारण विदेशी विचारों और आन्दोलनों का प्रभाव भारत पर पड़ा। प्रथम महायुद्ध के अवसर पर और उसके पश्चात् यह सम्पर्क और अधिक बढ़ा और उससे राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

भारत में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में अनेक समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे थे। 1875 ई. में इसकी संख्या 498 थी। प्राय: ये सभी समाचार पत्र अंग्रेजी शासन के विरूद्ध थे और अंग्रेजों के व्यक्तिगत दुर्व्यवहार, आर्थिक शोषण, जातीय दम्भ, रंग विभेद की नीति और शासन के दोषों आदि को छापते रहते थे, जिससे जनसाधारण में अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा उत्पन्न हो रही थी। इस आधार पर भी भारतीय एक होते जा रहे थे।

लॉर्ड लिटन की अफगान नीति, दुर्भिक्ष और महामारी के बीच दिल्ली दरबार का आयोजन और रानीविक्टोरिया को भारत की महारानी घोषित करना तथा भारत के जन आन्दोलन को समाप्त करने के लिए वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट का निर्माण भारतीयों के लिए तथा शस्त्र कानून का निर्माण भारतयों के लिए असन्तोष का कारण बने।

लॉर्ड रिपन के समय में इलबर्ट प्रस्ताव को लेकर भारत में एक विशिष्ट समस्या खड़ी हो गयी। लॉर्ड रिपन ने इस प्रस्ताव द्वारा भारतीय मजिस्ट्रेटों को यूरोपियन आराधियों के मुकदमों का निर्णय करने का अधिकार देना चाहा था। इस बात पर सम्पूर्ण भारत और इंग्लैण्ड में अंग्रेजों ने संगठित होकर ऐसा तीव्र आन्दोलन किया कि इस प्रस्ताव का संशोधित रूप ही कानून बन सका। इसमें काले और गोरे के प्रश्न को लेकर जो वाद विवाद खड़ा हुआ उससे स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज रंग के आधार पर भारतीयों से कितनी घृणा करते थे। इससे भारतीयों में अंग्रेजों के विरूद्ध घृणा उत्पन्न हुई। इसके अतिरिक्त भारतीयों को संगठित होकर आन्दोलन करने की शक्ति का प्रभाव भी स्पष्ट हो गया।

लॉर्ड कर्जन का भारतीयों पर अविश्वास करना, उनको सम्मानित पदों से हटाना और उनके विरूद्ध निरन्तर कटु भाषा का प्रयोग करना भारतीयों के असन्तोष का कारण बना। इसके अतिरिक्त उसका कलकत्ता–विश्वविद्यालय कानून, स्थानीय संस्थाओं का कानून और मुख्यतया बंगाल का विभाजन भारत में गम्भीर असन्तोष का कारण बना। बंगाल विभाजन के विरोध में ही भारत में सर्वप्रथम स्वदेशी आन्दोलन और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आरम्भ हुआ।

1857 ई. के विद्राह के समय से अंग्रेजों का व्यवहार भारतीयों के प्रति अधिक कटु हो गया था। प्रतिदिन मारपीट, स्त्री–अपहरण आदि की घटनाएं होती रहती थी जिनसे भारतीय नागरिकों में असन्तोष पनप रहा था।

1904 ई में एशिया के छोटे से देश जापान ने यूरोप के एक बड़े देश रूस को युद्ध में पराजित कर दिया। यह पहला अवसर था जब एशिया के किसी देश ने यूरोप के एक देश को पराजित किया था। इससे पहले यूरोपीय राष्ट्र अजेय समझे जाते थे और इस कारण एशिया के देशों और नागरिकों में नैतिक साहस की कमी थी। इस युद्ध ने सम्पूर्ण एशिया में नैतिक साहस की वृद्धि की और भारत भी इस प्रभाव से मुक्त न रहा।

राष्ट्रीय भावना का प्रादुर्भाव उपर्युक्त विभिन्न कारणों से हो चुका था। परन्तु उस राष्ट्रीय भावना को एक सूत्र में बांधकर अंग्रेजी शासन के विरूद्ध जन आन्दोलन करने और भारत के स्वराज्य के लिए प्रयत्न करने का श्रेय अखिल भारतीय कांग्रेस को है। कांग्रेस के आन्दोलन ने राष्ट्रीय भावना को तीव्र से तीव्रतर किया और बाद में स्वतन्त्रता प्राप्ति में प्रमुख भाग लिया।

Jainvishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.3 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – रविन्द्रनाथ टैगोर किस भाषा के कवि थे ?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – विद्रोह के बाद राष्ट्रीय चेतना के विकास पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – भारतीय राष्ट्रीयता के उदय के कारणों पर प्रकाश डालिए?

उत्तर – .....

इकाई – 3
राष्ट्रीयता के विकास में उदारवाद की भूमिका

3.0 कांग्रेस का जन्म और उसके प्रारम्भिक उद्देश्य
3.1 उदारवादी आन्दोलन
3.2 संवैधानिक सुधार कार्य योजना
3.3 प्रशासनिक सुधारों के प्रयास
3.4 आर्थिक कार्यकलाप
3.5 शक्तिशाली जनमत निर्माण
3.6 ब्रिटिश राष्ट्र से सहयोग
3.7 सरकार की प्रतिक्रिया
3.8 वैधानिक युग के प्रमुख विचार
3.9 बोध प्रश्न

3.0 कांग्रेस का जन्म और उसके प्रारम्भिक उद्देश्य :

भारत में राष्ट्रीय भावना की प्रगति के साथ–साथ विभिन्न राजनीतिक समुदायों का निर्माण आरम्भ हो गया था। बंगाल में 1883 ई. में बंगाल इण्डियन एसोसियेशन और 1884 ई. में बम्बई में बम्बई प्रेसीडेन्सी ऐसासियेशन की स्थापना हो गई थी। परन्तु फिर भी उस समय तक एक राष्ट्रीय संस्था का अभाव था। 1884 ई. में ए.ओ. ह्यूम नामक एक अवकाश प्राप्त अंग्रेज सिविलियन अधिकारी के प्रयत्नों से एक संस्था इण्डियन नेशलन यूनियन की स्थापना हुई। इसी यूनियन ने 1885 ई. में पूना में राष्ट्र के विभिन्न प्रतिनिधियों का सम्मेलन करने का निर्णय किया और इस कार्य का उत्तरदायित्व भी ए.ओ. ह्यूम को सौपा गया। पूना में हैजा फैल जाने के कारण उस वर्ष यह सम्मेलन बम्बई में किया गया। यह सम्मेलन दिसम्बर 1885 ई. में हुआ और वहीं 'अखिल–भारतीय कांग्रेस' नामक संस्था की स्थापना की गयी। इसके प्रथम सभापति बोमेशचन्द्र बैनर्जी चुने गये। इस प्रकार 1885 ई. में लॉर्ड डफरिन के समय में इस राष्ट्रीय संस्था का जन्म हुआ। कांग्रेस के प्रारम्भिक उद्देश्य निम्नवत् थे –

1. भारत के सभी नागरिकों का सहयोग प्राप्त करना।
2. जातीयता, प्रान्तीयता और धार्मिक मतभेदों को समाप्त करके राष्ट्रीय एकता का निर्माण करना।
3. सामाजिक समस्याओं पर विचार करना और उस पर निर्णय लेना।
4. आगामी वर्ष का कार्यक्रम निश्चित करना।
5. सरकार से भारतीयों को शासन में सम्मिलित करने की मांग करना।

इस प्रकार हम देखते है कि कांग्रेस का आरम्भ बहुत ही साधारण उद्देश्यों की मांग से आरम्भ होकर उसकी मांग स्वराज्य की मांग में परिणत हो गयी और सरकार में विश्वास करने व उससे सहयोग करने की नीति संघर्ष करने में बदल गयी। वास्वत में देखा जाये तो भारत के राष्ट्रीय आन्देलन का इतिहास कांग्रेस का इतिहास है क्योंकि आरम्भ से अन्त तक भारत का राष्ट्रीय आन्देलन इसी संस्थाक के नेतृत्व में लड़ा गया।

3.1 उदारवादी आन्दोलन :

कांग्रेस के आविर्भाव के पश्चात् प्रारम्भिक दौर का आकलन करें तो हम इसे कांग्रेस के उदारवादी आन्दोलन की संज्ञा से अभिहित कर सकते है। सामान्यत: इस काल खण्ड में 1885 से 1905 तक का समय लिया जा सकता है। इस अवधि में उदारवादी नेतृत्व का प्रभुत्व रहा। कांग्रेस से जुड़े उदारवादी बुद्धिजीवियों में मुम्बई के दादाभाई नौरोजी, बदरूद्दीन तैयब जी, फिरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव गोविन्द रानाडे, के.टी. तेलंग, आप्टे अगरकर, बंगाल के डब्लू

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सी. बनर्जी, आनन्द मोहन बोस, रास बिहारी बोस, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आर.सी. दत्त मद्रास के वीर राघवचारियर, केशवपिल्ले, आनन्द चा, सुब्रमण्य अरूयर तथा उत्तर से पण्डित मदनमोहन मालवीय, पण्डित डी.पी. धर इत्यादि सम्मिलित थे।

इन उदारवादी बुद्धिजीवियों ने ब्रिटिश शासन को भारत में एक वरदान के रूप में ग्रहण किया। एक आदर्श शासन व्यवस्था के लिए ब्रिटिश लोकतंत्र की तस्वीर उनके सामने थी। उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत में अंग्रेजी शासन धीरे–धीरे एक प्रगतिशील, लोकतान्त्रिक, स्वतंत्र राष्ट्र की और बढ़ेगा। जस्टिस रानाडे के शब्दों में, ''भारत में अंग्रेजी शासन की सार्थकता यह है कि बड़े पैमाने पर नागरिक और सार्वजनिक क्रियाकलाप के क्षेत्र में राजनीतिक शिक्षा देना इसका दैवी लक्ष्य और विधान है और यह इसके लिए सुयोग्य भी है। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की धारणा थी, ''इंग्लैण्ड से हमें प्रेरणा और पथ प्रदर्शन की आशा है। इंग्लैण्ड से वह महान् आदेश आयेगा जिससे हमारी जनता को मताधिकार मिलेगा। इंग्लैण्ड हमारा राजनीतिक नेता है। राजनीतिक कर्तव्य के उच्च क्षेत्र में हमें अंग्रेजों की न्याय–भावना और उसकी उदारता का भरोसा है, हमें पार्लियामेंट की जननी ब्रिटिश हाऊस ऑफ कामन्स जो विश्व की सबसे बड़ी प्रतिनिधि संस्था है, के स्वतंत्रता प्रेमी होने में पूर्ण विश्वास है। जहां कहीं भी अंग्रेजों ने अपना झण्डा फहराया है, या अपनी सरकार बनाई है वहां उन्होंने उसी को अपना आदर्श बनाया है।'' ऐसे ही कुछ विचार फिरोजशाह मेहता ने व्यक्त किये थे, ''मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अन्तिम में हमारी पुकार पर अवश्य ध्यान देंगे।'' दयाल सिंह मजीठिया ने ब्रिटिश शासन को भारत के लिए कीर्ति कलश की संज्ञा दी थी।

प्रारम्भ में उदारवादी कांग्रेस जन ब्रिटिश शासन में पार्थक्य की बात नहीं सोचते थे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा था, ''हम पार्थक्य नहीं, वरन् एकता, संयुक्तीकरण और उस महान् साम्राज्य के विभिन्न अंग के रूप में एकता चाहते है, जिसने सारी दुनिया के समक्ष स्वतंत्र संस्थाओं का आदर्श प्रस्तुत किया है।''

प्रारम्भिक उदार राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम की सबसे बड़ी विशेष थी जनसाधारण की शिकायतों को समझना और उनका समाधान खोजना या उन्हें सरकार के समक्ष रखना। चूंकि राष्ट्रवादी गतिविधियां उस समय शिक्षित लोगों तक ही सीमित थीं, उदारवादी स्वयं को समस्त जनता का प्रतिनिधि मानते थे।

इस बारे में फिरोजशाह मेहता ने जिक्र किया था, ''कांग्रेस वस्तुतः जनसाधारण की आवाज नहीं बुलन्द कर रही थी, लेकिन विक्षिप्त देशवासियों का यह कर्तव्य अवय था कि वह साधारण जनता की तकलीफों को समझे और उनको खत्म करने की राय दे।'' विकास की धीमी गति के विषय में नरपदल का दृष्टिकोण रमेशचन्द दत्त द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया गया, ''भारत के लोगों को आकसमिक परिवर्तन और क्रांति से प्रेम नहीं हैं वे ऐसे नए विधान नहीं मांगते जो विधायिका सभाओं रूपी जुपीटर के सिर से सास्त्र मिनर्वा की तरह निकले है। वे वर्तमान सरकार को मजबूत करना चाहते है और उसे जनजीवन के अधिाक समीप लाना चाहते है। वे सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की काउंसिल में भारतीय कृषि और उद्योग के प्रतिनिधि के रूप में कुछ भारतीयों को देखना चाहते है।। वे प्रत्येक महत्वपूर्ण प्रशासनिक प्रश्न पर विचार विनिमय के लिए भारतीय जनता के हितों का प्रतिनिधित्व चाहते है। राष्ट्रवादियों की कार्य–पद्धति एवं कार्य योजना इस प्रकार है –

3.2 संवैधानिक सुधार कार्य योजना :

शुरू के उदारवादियों की लोकतंत्र के सिद्धान्तों में आस्था थी, वे अपने देश की शासन व्यवस्था में भारतीयों की अधिाकाधिक भागीदारी सुनिश्चित करना उनका प्रमुख उद्देश्य मानते थे। राजनतिक जागृति उत्पन्न करने व अखिल भारतीय समूह नेतृत्व खड़ा करने के प्रयास को इसी श्रृंखला की कड़ी समझा जाना चाहिए। उन्हीं की कोशिश से राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रजातात्रिक एवं धर्मनिरपेक्ष स्वरूप मिला। यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने सरकार से प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना एवं विकास की मांग की, किन्तु अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु तत्काल मांग पूरी हो, उनका उद्देश्य न था। लेजिस्लेथ्टव कौसिल के विस्तार एवं सुधार की मांग 1885 से 1892 तक उठाई गई। विधायिका सभाओं से निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ाने तथा इन सभाओं की शक्तियों में वृद्धि किये जाने के प्रस्ताव भी उदारवादियों ने सरकार के समक्ष रखे। उत्तर पश्चिम क्षेत्र अवध और पंजाब में भी ऐसी विधायिका संभाएं बनाये जाने वर बल दिया। उनके प्रयासों का ही प्रतिफल था कि सरकार ने 1892 ई. में इण्डियन कौसिल एक्ट पारित किया। लेजिस्लेटिव कौसिल व प्रान्तीय कौसलों में निर्वाचित संदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। कुछ सदस्य अपरोक्ष रूप से भारतीयों द्वारा चुने गये थे तथापि सरकारी सदस्यों का बहुमत बना रहा।

कौसिल को वार्षिक बजट पर वाद–विवाद का अधिकार दे दिया गया किन्तु मत देने के अधिकार न थें इस एक्ट से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

राष्ट्रवादियों का सन्तुष्ट होने का सवाल ही न था। 19वीं सदी के अन्त मे स्वराज की मांग ने जोर पकड़ा और ब्रिटिश साम्राज्य में भारत के लिए वैसा ही स्वशासन चाहा गया, जो आस्ट्रेलिया को प्राप्त था। 1905 में गोपालकृष्ण गोखले की अध्यक्षता तथा 1906 में दादाभाई नौराजी की अध्यक्षता में सम्पन्न कांग्रेस अधिवेशन में स्पष्ट रूप से स्वराज की मांग की गई। कांग्रेस नेतृत्व को ब्रिटिश सरकार एवं अपनी मांगों के औचित्य पर पूर्ण विश्वास था। उनकी मान्यता थी कि ब्रिटिश सरकार उनकी मांग स्वीकृत करेगी।

3.3 प्रशासनिक सुधारों के प्रयास :

उदारवादी राष्ट्रवादियों ने 1885 से 1905 ई. के मध्य प्रशासनिक एवं अन्य सुधारों के लिए भी संघर्ष किए। आर्थिक, राजनीतिक एवं नैतिक आधार पर उन्होंने उच्च प्रशासनिक सेवाओं के भारतीयकरण की मांग की। ध्यातत्य है कि उच्च पदों पर कार्यरत यूरोपीयवासियों को अधिक वेतन दिया जाता था। दूसरी और समान योग्यताएं होने पर भी भारतीयों को कम वेतन दिया जाता था। यही नहीं यूरोपियनों द्वारा अपने वेतन कम किये जाने का भी राष्ट्रवादियों ने विरोध किया। स्वयं को उच्च प्रजाति का मानकर भारतीयों के साथ किये जाने वाले भेदभाव के विरूद्ध आवाज उठने लगी थी। अतः सेवाओं में बराबर की शर्तों पर भारतीयों की नियुक्ति, भारत से बाहर धन भेजे जाने की प्रक्रिया पर रोक, आर्म्स एक्ट की समाप्ति, सेना सम्बन्धी खर्च में कमी आदि मांगे सरकार के समक्ष रखी गई। कार्यकारिणी एंव न्यायिक व्यवस्था को अलग किये जाने की मांग भी उदारवादियों ने की। जूरी की शक्तियाँ कम करने का विरोध हुआ। उन्होंने भारतीयों को निशस्त्र करने का विरोध हुआ। उन्होंने भारतीयों को निशस्त्र रखे जाने की अनुमति दिये जाने हेतु सरकार से अनुरोध किया। प्राथमिक शिक्षा के प्रसार तथा तकनीकी एवं उच्च शिक्षा हेतु अधिक बजट प्रावधान तथा जनकल्याणकारी कार्यों की और अधिक ध्यान दिये जाने की मांग की गई।

उदारवादी नेतृत्व ने कृषकों को जमींदारों तथा साहूकारों के शिंकजे से छुड़ाने के लिए कृषि बैंकों के विकास का मुद्दा उठाया तथा अकाल जैसी प्राकृतिक आपदा को रोकने के लिए सिंचाई व्यवस्था के विस्तार की चर्चा की। वस्तुतः राष्ट्रवादी कृषकों की समस्याओं से पूरी तरह परिचित थे और आम लोगों की खुशहाली के लिए कृषि अर्थव्यवस्था पर ध्यान दिया जाना आवश्यक मानते थे। जनता को मेडिकल तथा चिकित्सा स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान किये जाने, शासन व्यवस्था के आवश्यकतानुसार उदार बनाने, दमनात्मक कानूनों का खात्मा करने सम्बन्धी मांगे सरकार के समक्ष रखीं।

3.4 आर्थिक कार्यकलाप :

भारत की गरीबी, आर्थिक पिछड़ापन तथा औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्र में विकास के अभाव आदि के लिए ब्रिटिश शासकों की नीतियों को उत्तरदायी ठहराया गया। दादा भाई नौरोजी ने धन निष्कासन की समस्या पर ध्यानकेन्द्रित किया तथा ब्रिटिश शासन को विदेशी आक्रमण की संज्ञा दी और देश को नष्ट करने वाला घोषित किया। उदारवादियों ने भारतीय कुटीर उद्योगों के विनाश के लिए परोक्ष रूप से अंग्रेजों को दोषी माना। तत्कालीन राष्ट्रवादियों ने भारत की गरीबी दूर करने के लिए आधुनिक उद्योगों की स्थापना को आवश्यक बताया। कांग्रेस ने 1892 ई. में पण्डित मदन मोहन मालवीय का प्रस्ताव पारित किया कि पतन की और बढ़ रहे उद्योगों को सुरक्षा प्रदान की जाए।

नरमदल का विश्वास था कि प्रतिवेदन, मीटिंग, भाषण आदि द्वारा शासनको जनता की न्यायसंगत मांगों का ज्ञान करवाया जा सकेगा और सरकार चरणबद्ध तरीके से उन मांगों की पूर्ति करगी। उन लोगों की धारणा थी कि संवैधानिक सत्ता जिनके हाथों में है उनके कार्य एवं सहयोग द्वारा वाछित बदलाव लाने के लिए वैधानिक संघर्ष का उन्हें अधिकार है। विद्रोह, विदेशी आक्रमण की सहायता या उसे प्रश्रय, अपराध का मार्ग ये तीनों बातें उदारवादी नेतृत्व के लिए वर्जित थी।

तत्कालीन राष्ट्रवादी प्रतिनिधि सभाओं और चुनाव सिद्धान्त के समर्थक थे। भाषण तथा स्वतंत्रता के मूल्य को पूर्णरूपेण स्वीकार किया तथा इन पर पाबन्दियों की सरकारी कोशिशें का प्रतिरोध। उनकी नीति का अंग था। उदाहरण के लिए 1897 ई. में ब्रिटिश सरकार द्वारा बालगंगाधर तिलक को उनके भाषण व लेखों के आधार पर उन्हें दिये गये कारावास के दण्ड के विरूद्ध सम्पूर्ण भारत में प्रतिरोध आन्दोलन हुए।

3.5 शक्तिशाली जनमत निर्माण :

आम लोगों में राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रीय भावना के विकास हेतु शक्तिशाली जनमत का निर्माण उदारवादियों का महत्वपूर्ण लक्ष्य थ। 1870 से 1885 ई. के मध्य को राष्ट्रीय पत्रकारिता और साहित्य सृजन का दौर भी कहा जाता है, जिसमें

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रबुद्ध जनमत उभरकर आया। इसे जनमत निर्माण के प्रथम चरण की संज्ञा दी जा सकती हैं राजनीतिक प्रश्नों पर लोगों को शिक्षित करने तथा उनमें एकता की भावना उजागर करने हेतु अनेक समाचार पत्रों रंगमंच आदि का प्रयोग किया गया।

गैरीबाल्डी और मैजिनी के जीवन–चरित्र का अनुवाद हुआ। दीनबंधु मित्रा (बंगाली लेखक) द्वारा आलेखित नाटक 'नीलदर्पण' जो 1860 में प्रकाशित हुआ, जिसमें नील की खेती में लगे भारतीय किसानों के प्रति यूरोपियन मालिकों के क्रूर व्यवहार का चित्रण है। आगे जाकर मधुसूदन दत्त ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया। उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के नाटकों द्वारा आम लोगों की राजनीतिक भावनाओं को जागृत करने की कोशिश की गई। उदारवादियों को विश्वास था कि ब्रिटिश शासन भारत की वस्तु स्थिति की जानकारी मिलने पर उचित कार्यवाही करना चाहेगा। इस उद्देश्य के लिए ब्रिटेन में प्रचार कार्य किया गया और समय–समय पर भारतीय राजनीतिज्ञों के प्रतिनिधि मण्डल इंग्लैण्ड भेजे गये।

3.6 ब्रिटिश राष्ट्र से सहयोग :

उस समय के राष्ट्रवादियों की यह दृढ़ धारणा थी कि ब्रिटेन के साथ सहयोग उस दौर में भारत के हित में था। अतः उनका लक्ष्य अंग्रेजी शासन का अन्त न होकर राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप उसके स्वरूप में बदलाव था। लेकिन उनका विश्वास धीरे–धीरे खत्म होने लगा जब उनकी मांगों पर ध्यान नहीं दिया गया एवं ऊपर से सरकारी दमन का भी शिकार होना पड़ा। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के इस कथन से उदारवादी राष्ट्रवादियों के विचारों में आये परिवर्तन का संकेत मिलता है, ''नागरिक सेवाओं का इतिहास वचनभंग का अविरल विवरण है।'' पण्डिल डी.पी. धर ने 1991 ई. में ब्रिटिश शासन से कांग्रेस के मोह भंग को इस प्रकार व्यक्त किया है, 'हमारी मुसीबतों का अगर निदान नहीं मिला तो भविष्य में इसके बड़े हानिकारक दुष्परिणाम होंगे और हमारी मुसीबतों का असली कारण यह है कि भारतीय जनता की नवजात आशाओं आदर्शों के प्रतिअफसरशाही का रूख असहृदय और अनुदार होता जा रहा है। लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियों से उदारवादियों की ब्रिटिश सरकार में आस्था समाप्त हो गई। यही कारण है कि 1906 ई. के कलकत्ता अधिवेशन में दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस में विदेशी बहिष्कार, स्वदेशी, स्वशासी व्यवस्था एवं शिक्षा प्रसार आदि की नीति निर्धारित की गई।

3.7 सरकार की प्रतिक्रिया :

प्रारम्भ में अंग्रेजों ने सुरक्षाकपाट के सिद्धस्त को स्वीकार करते हुए कांग्रेस को ब्रिटिश शासन के हित में माना गया। शुरू–शुरू में सरकारी अधिकारी भी कांग्रेस की बैठकों में भाग लेते थे। उल्लेखनीय है कि कुछ उदार अंग्रेज इसके सदस्य भी थे। ह्यूम के अतिरिक्त वेडरबर्न, जार्नयुल, मेक्विन तथा स्मिथ आदि को इस श्रेणी में रखना होगा। लार्ड डफरिन ने 1886 ई. में नेशलन कांग्रेस के प्रतिनिधियों को भोज पर आमन्त्रित किया था, किन्तु जैसे ही कांग्रेस ने प्रशासन में सुधार, प्रेस की आजादी और धन निष्कासन पर रोक की मांगें रखीं, सरकार के तेवर बदलने लगें 1887 में डफरिन ने अपने भाषण में कांग्रेस की आलोचना की तथा उसे जनता के सूक्ष्म अल्संयक नेतृत्व की संज्ञा दी। लार्ड कर्जन ने 1900 ई. में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को लिखे, ''कांग्रेस धीरे–धीरे लड़खडा रही है। और भारत में रहते हुए यह मेरी बहुत बड़ी आकांक्षा है कि इसके शान्ति पूर्ण अवसान में सहायक बन सकूं।' यद्यपि उदारवादी मोटे रूप में राजभक्त थे, इसके बावजूद सरकार ने राष्ट्रीय भावना को दबाने के लिए दमन नीति का सहारा लिया। ऐनीबेसंट ने जिक्र किया था कि –कैसे अपने जिला अधिकारी की आज्ञा के विरूद्ध 1887 ई. में कांग्रेस अधिवेशन में शामिल होने के लिए एक व्यक्ति को बीस हजार रूपये की जमानत देने के लिए कहा।''

सरकार ने कांग्रेस की कई मांगों पर विचार नहीं किया। 1918 तक जो मांगें स्वीकार नही की गई उनमें प्रमुख थी,इण्डियनकांउसिल का उन्मूलन, भारतीय सिविल सेव के लिए एक साथ परीक्षा व्यवस्था, कार्यपालिका एवं न्यायिक व्यवस्था का पार्थक्य, आर्म्स एक्ट्स एवं रूस का संशोधन, तकनीकी एवं औद्योगिक विकास, भूराजस्व नीति में सुधार, करेन्सी का सुधार, 1818, 1819 व 1827 ई. के बंगाल, मद्रास व बोम्बे रेगुलेशन्स एक्ट की समाप्ति, इण्डियन यूनिवर्सिटीज एक्ट, आफिशीयल सिक्रेटस एक्ट की समाप्ति, स्थानीय स्वायत्त शासन के प्रयास, निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, सेडीशन मीटिंग्स एक्ट और इडियन प्रेस एक्ट का रिनरसन आदि। कांग्रेस जैसे संगठनों की असफलता के लिए भारतीय राजनीति में फूट डालो राज करो के सिद्धान्त को अपनाते हुए साम्राज्यवादियों ने सर सैयद अहमद खान, राजा शिव प्रसाद आदि कई लोगों को कांग्रेस के विरूद्ध आन्दोलन करने के लिए उकसाया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.8 वैधानिक युग के प्रमुख विचार :

वैधानिक युग के नेताओं में दादाभाई नौराजी, ह्यूम वेडरर्बन, हेनरी काटन, जार्जयूल, फीरोजशाह मेहता, दीनशावाचा तेलंग, रानाडे, गोखले, बदरूद्दीन तैय्यब जी, बोमेशचन्द्र बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ बजर्नी, लालमोहनघोष आनन्द मोहन बोस, रासबिहारी घोष, अम्बिका चरण मजूमदार, भूपेन्द्रनाथ वसु, सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा, रमेशचन्द्र दत्त, आनन्द चारलू, सी. विजयराघवाचार्य रंगैय्या नायडू, जी. सुब्रह्ममयम अरूयर, सरशंकरन रावर, विशननारायणधर, गंगाप्रसादवर्मा, पंडित अयोध्यानाथ, पं. मदनमोहनमालवीय आदि को जो मध्यम श्रेणी या बुद्धिजीवी वर्ग के समझे जाते थे।

3.9 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कब हुई ?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – कांग्रेस के प्रमुख उद्देश्यों पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में उदारवाद की भूमिका पर विस्तृत विवेचन किजिए ?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 4
राष्ट्रीयता के विकास में उग्रवाद की भूमिका

4.0 उग्र राष्ट्रीयता का स्वरूप

4.1 उग्र–राष्ट्रवाद और आन्दोलन : कारण

4.1.1. अंग्रेजों का शासन में मनमानी करना

4.1.2. आर्थिक असन्तोष

4.1.3. धार्मिक और सामाजिक प्रगति

4.1.4. 1897 ई. और 1899 ई. का अकाल और प्लेग

4.1.5. लॉर्ड कर्जन का शासन

4.1.6. विदेशी प्रभाव

4.2 उग्रवादियों के साधन तथा सिद्धान्त

4.3 उग्रवाद के प्रमुख नेता

4.4 बोध प्रश्न

4.0 उग्र राष्ट्रीयता का स्वरूप :

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के उग्रवादी नेताओं की त्रयी में बाल, लाल, पाल (बाल गंगाधार तिलक, लाला लाजपतराय तथा बिपिनचन्द्र पाल) का नाम प्रसिद्ध है। ब्रिटिश शासकों की प्रतिगामी तथा अत्याचार पूर्ण शासन नीतियों के विरोध में इस वर्ग के राष्ट्रीय नेताओं का उदारवादियों की राजनीतिक भिक्षावृत्ति तथा आवेदनों और प्राथनाओं द्वारा वैधानिक तरीकों में से राष्ट्रीय मांगों को पूर्ण कराने की नीति पर से विश्वास हट गया। देश को आर्थिक राजनीतिक तथा प्रशासनिक उत्पीड़नों से मुक्त कराने के निमित्त उग्रवादियों ने राष्ट्रीय मांगों के सम्बन्ध में स्वराज्य, स्वदेशी, बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा इन चार सिद्धान्तों को अपना लक्ष्य बनाया। लोकमान्य तिलक ने राष्ट्रीय आन्दोलन को अपना यह विरस्मरणीय नारा प्रदान किया कि 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और में से लेकर रहूंगा। उनकी यह धारणा थी कि भारत के उत्थान का एकमात्र साधन स्वराज्य की प्राप्ति है। स्वराज्य प्राप्त हो जाने पर ही भारतवासी अपने अन्य समस्याओं को हल करने में समर्थ हो सकेंगे। अतः राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रमुखलक्ष्य विदेशी शासन को किसी भी तरीके से निकाल बाहर करना होना चाहिए। इस साधय की प्राप्ति के साधन स्वदेशी, बहिष्कार अथवा निष्क्रिय प्रतिरोध तथा राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन थे। विदेशी सरकार की आर्थिक शोषण की नीति के कारण भारतीय उद्योगों को धक्का पहुंच रहा था। भारतीय बाजारों में विदेशों में बनी वस्तुएं आ रही थी। अतः इन आन्दोलनकारियों ने स्वदेशी आन्दोलन का प्रचार किया और जनता से मांग की कि वह अपने देश में बनी वस्तुओं का उपयोग करे तथा विदेशी माल का बहिष्कार करे। साथ ही विदेशी सरकार द्वारा स्थापित शिक्षा संस्थाओं के बहिष्कार की भी मांग की गयी। इन नेताओं ने स्थान–स्थान पर राष्ट्रीय शिक्षालय खुलवाये और उनमें शिक्षा को राष्ट्रीय स्वरूप देने का प्रयास किया।

यह आन्दोलन प्रारम्भिक उदारवादी आन्दोलन से पूर्णतया भिन्न प्रकृति का था। इसका क्षेत्र केवल शिक्षित वर्ग तक सीमित नहीं रहा, अपितु इसका उद्देश्य जन जागृति था। जनता में स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार करके उसे देश में स्वराज्य प्राप्ति के लिए तैयार करने का आह्वान किया जाने लगा। इन आन्दोलनकारियों ने उदारपंथियों की विधान परिषदों के माध्यम से शासनसुधार करवाने की धारणाओं को भ्रान्तिपूर्ण ठहराया, क्योंकि विदेशी शासकों के अत्याचार तथा दमनचक्र निरन्तर बढ़ते जा रहे थे। अतः 1905 के पश्चात् राष्ट्रीय आन्दोलन में एक पूर्णतया नवीन प्रवृत्ति आयगी, जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय बनी रही। इस उग्रवाद ने कांग्रेस की गतिविधियों को भी नया रूप प्रदान किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.1 उग्र–राष्ट्रवाद और आन्दोलन : कारण

4.1.1. अंग्रेजों का शासन में मनमानी करना :

अंग्रेजों ने कांग्रेस के प्रार्थना पत्रों पर कोई ध्यान नहीं दिया था और 1892 ई. के सुधार भारतीयों को सन्तुष्ट करने में सर्वथा असफल रहे थे। व्यक्तिगत व्यवहार की दृष्टि से भी अंग्रेजो में कोई परिवर्तन नहीं आया था और अपमान, मार पीट, स्त्री अपहरण आदि की घटनाएं निरन्तर हो रही थी जिन्हें रोकने के लिए शासन की और से कोई समुचित व्यवस्था नही की जा रही थी।

4.1.2. आर्थिक असन्तोष :

भारत के नागरिकों की आर्थिक कठिनाइयां निरन्तर बढ़ती जा रही थी। शिक्षित वर्ग, मजदूर वर्ग, कृषक और पूंजीपति सभी अंग्रेजों की आर्थिक नीति से असन्तुष्ट थे। सरकार ने सूती कपड़े के उद्योग को अत्यधिक हानि पहुंचाई थी। ऐसी अरक्षित स्थिति में भारतीय पूंजीपति भी राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ हो गये थे।

4.1.3. धार्मिक और सामाजिक प्रगति :

धार्मिक और सामाजिक प्रगति का प्रवाह अभी तक समाप्त नहीं हुआ था बल्कि अब उसका प्रयोग राष्ट्रवाद को तीव्र करने के लिए किया जा रहा था। महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक, बंगाल में विपिन चन्द्र पाल तथा पंजाब में लाला लाजपतराय धार्मिक राष्ट्रीयता के पोषण में लगे हुए थे और गणेश–पूजा, शक्ति पूजा आदि के सहारे भारतीयों को जाग्रत कर रहे थे।

4.1.4. 1897 ई. और 1899 ई. का अकाल और प्लेग :

इन वर्षों में गुजरात और दक्षिण भारत में भीषण अकाल पड़ा। तथा महाराष्ट्र और बम्बई में भीषण रूप से प्लेग फैला। सरकार ने इसकी रोकथाम के लिए जो व्यवस्था की उससे भारतीयों में और अधिक असन्तोष हुआ। प्लेग के अवसर पर सरकार ने सैनिकों को जनसाधारण के घरों में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी थी। इसका तीव्र विरोध हुआ। तिलक ने भी इसके विरोध में आवाज उठायी। दो प्लेग–अधिकारी कत्ल भी कर दिये गये। सन्देह में तिलक को जेल की सजा दी गयी।

4.1.5. लॉर्ड कर्जन का शासन :

लॉर्ड कर्जन की नीति मुख्यतया बंगाल विभाजन और उसकी कटु भाषा ने भारतीयों में तीव्र असन्तोष उत्पन्न कर दिया। बंगाल विभाजन के विरोध में भारत में एक तीव्र आन्दोलन उठा जिसके फलस्वरूप बाद में सरकार को उस विभाजन को समाप्त करना पड़ा।

4.1.6. विदेशी प्रभाव :

इसी अवसर पर जापान ने रूस को परास्त किया जिसने किया में नैतिक साहस का विकास किया। भारत पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त रूस, टर्की, मिस्र और ईरान के जन–आन्दोलन के प्रभाव से भारत भी मुक्त न रह सका।

4.2 उग्रवादियों के साधन तथा सिद्धान्त :

उग्रवादी आन्दोलन के नेताओं ने ब्रिटिश शासन की दमनकारी तथा सुधारों के सम्बन्ध में ढुलमुल की नीति से असन्तुष्ट होकर उदारवादी नेताओं की सांविधानिकतावादी तथा राजनीतिक भिक्षावृति की नीति का विरोध किया था। उग्रवादी नेताओं ने स्वराज्य प्राप्ति को अपना लक्ष्य घोषित किया और उसकी प्राप्ति हेतु स्वदेशी, बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा की प्रगति के साधन अपनाये। स्पष्ट है कि उग्रवादी आन्दोलन के सिद्धान्त तथा साधन भी उग्र प्रवृत्ति के थे।

1. उग्रवादी क्रमिक सुधारों के पक्ष में नहीं थे। वे यह नहीं चाहते थे कि पहले सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक सुधार किये जाये तब राजनीतिक लक्ष्य प्राप्त होगा। उनकी धारणा तो यह थी कि पहले स्वराज्य प्राप्त होना चाहिए अर्थात सुधार तभी इच्छित ढंग से सम्पन्न हो सकते है जबकि राजनीतिक सत्ता अपने देशवासियो के हाथ में रहे।

2. उग्रवादी ब्रिटिश सरकार से याचना करके अपनी मांगे मनवाना पसन्द नहीं करते थे। वे जनता में आत्मविश्वास की भावना भरना चाहते थे। वे जनता की क्रान्तिकारी शक्ति पर विश्वास रखते थे, न कि सांविधानिक साधनों पर। साथ ही वे थोड़े से शिक्षित वर्गों के सहयोग पर निर्भर न रहकर आम जनता की राजनीतिक चेतना पर विश्वास करते थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. उग्रवादियों के साधन स्वदेशी का आम प्रचार, विदेशी माल का बहिष्कार, शासन के अन्यायपूर्ण कृत्यों के साथ असहयोग, सविनय अवज्ञा तथा निष्क्रिय प्रतिरोध थे। इनके द्वारा वे जनता में रचनात्मक कार्यों की प्रेरणा भरकर भारतवासियों के शारीरिक एवं नैतिक उत्थान को अपना लक्ष्य मानते थे।

4. यद्यपि उग्रवादी प्रथम चरण में अहिंसात्मक आन्दोलन को ही मान्यता देते थे लेकिन उसकी अक्षमता मे कुछ उग्रवादी हिंसात्मक साधनों को ही उपादेय समझने लगे। यद्यपि स्वयं महात्मा गांधी ने बाद में उग्रवादियों के अहिंसात्मक साधनों को अपना लक्ष्य बनाया तथापि उग्रवादी महात्मा गांधी के इस सिद्धान्त से कि 'साधनों की पवित्रता पर साध्य की पवित्रता निर्भर रहती है, मतभेद रखते थे। वे मैकियाविली के इस सिद्धान्त को मानते थे कि साधनों का औचित्य साधन पर निर्भर रहता है उनका साधय स्वराज्य प्राप्ति था, उसे किसी भी प्रकार प्राप्त करना ही वे अपना प्रमुख लक्ष्य मानते थे।

5. उग्रवादी ब्रिटिश शासकों की न्यायप्रियता तथा ईमानदारी पर विश्वास नहीं रखते थे। उनके मत से अंग्रेजों ने अन्यायपूर्व भारत मे अपना साम्राज्य स्थापित किया है और वे अन्याय की नीति का अनुसरण करके ही अपनी सत्ता बनाये रखना चाहते है। अतः उनसे भारतवासी अपनी स्वायत्तता की मांग वैधानिक तरीको या शान्तिपूर्ण प्रार्थनाओं के द्वारा नही मनवा सकते। उनका विश्वास था कि अंग्रेजो ने भारत मे जो भी थोड़े से सुधार किये है, वे भारतीयो के हितो को ध्यान में रखकर नहीं किये है, बल्कि अपने निजी स्वार्थों को सिद्ध करने की नीयत से किये है। इनके पीछे भारत का आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक पतन निहित है। पाश्चात्य रंग में रंगकर भारत का उत्थान नहीं हो सकता। अतः स्वदेशी का प्रचार आवश्यक है। पाश्चात्य शिक्षा के स्थान पर राष्ट्रीय शिक्षा की योजना कार्यान्वित करनी चाहिए।

6. उग्रवादियों ने अपने आन्दोलन का प्रचार करने के निमित्त प्रेस का पर्याप्त प्रयोग किया। समाचार पत्रों मे तिलक, लाजपतराय, बिपिन चन्द्रपाल, स्वामी विवेकानन्द के भाइ भूपेन्द्रनाथ दत्त, आदि ने जनता में राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा देने वाले लेख। इसी के साथ–साथ इन नेताओं ने नेताओं ने हिन्दू धर्म दर्शन तथा संस्कृति की महानता का प्रचार भी किया। ये सभी नेता धार्मिक दृष्टि से कट्टर हिन्दू थे। अतः हिन्दू धर्म की शिक्षाओं के द्वारा भी इन नेताओं ने भारत में राष्ट्रवाद को उग्र बनाने का प्रयास किया, ताकि धर्म के नाम पर हिन्दू जनता अपने राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए तैयार हो सके।

4.3 उग्रवाद के प्रमुख नेता :

इसके नेता बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय और विपिनचन्द्र पाल थे। इनका कार्यक्रम सरकार से संघर्ष करने का था। तिलक अपने समाचार पत्र –न्यू–इण्डिया' के द्वारा निरन्तर इसी प्रकार के विचारों का प्रचार कर रहे थे। इसके अतिरिक्त नरम दल की तरह उनका लक्ष्य अंग्रेजो की अधीनता में स्वशासन प्राप्त न था बल्कि वे 'पूर्ण स्वराज्य' को अपना लक्ष्य मानते थे। परन्तु फिर भी गरम दल का तरीका हिंसात्मक न था। वे सरकार से अहिंसात्मक विरोध करना चाहते थे। सरकार से खुला विरोध अपने असन्तोष को प्रकट करना, प्रर्थना न करना वरन् स्वराज्य को अधिकार की तरह मांगना उनका कार्यक्रम था यद्यपि उसमें हिंसा का कोई स्थान नहीं था।

4.4 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – बाल–पाल–लाल का पूरा नाम बताइए?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – उग्रवाद के सिद्धान्तों पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – राष्ट्रीयता के विकास में उग्रवाद की भूमिका पर प्रकाश डालिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 5

भारत सरकार के अधिनियमों की प्रमुख विशेषता विशेषतः 1909, 1919 और 1935 ई.

5.0 भूमिका
5.1 मार्ले–मिण्टो सुधार
5.1.1 अधिनियम की समीक्षा
5.2 मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार
5.2.1 गृह सरकार
5.2.2 इण्डिया कौसिल
5.2.3 केन्द्रीय सरकार
5.2.4 प्रान्तीय शासन व्यवस्था
5.3 भारत सरकार अधिनियम, 1935
5.3.1. गृह सरकार के नियन्त्रण में कमी
5.3.2. अखिल भारतीय संघ की स्थापना
5.3.3. केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना
5.3.4. संघीय विधान मण्डल की निर्बलता
5.3.5. अधिकारों के विभाजन की नई पद्धति
5.3.6. संघीय न्यायालय की स्थापना
5.4 बोध प्रश्न

5.0 भूमिका :

किसी भी देश के संविधान को भलीभांति समझने के लिये उसके विकास का इतिहास जानना आवश्यक है। भारत के संवैधानिक विकास का इतिहास ब्रिटिश शासन के इतिहास से जुड़ा हुआ है। 1858 के बाद भारत में जो संवैधानिक विकास की प्रक्रिया आरम्भ हुई वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसके दूरगामी परिणाम हुए। 1858 के अधिनियम द्वारा भारत का प्रशासन ब्रिटिश ताज के अधीन कर दिया गया तथा भारतीयों के हृदय को पुनः जीतने के लिये महारानी विक्टोरिया की घोषणा प्रसारित की गई, जिसमें भारतीयों को यह आश्वासन दिया गया कि अब भारत का प्रशासन प्रजा कि हितों को ध्यान में रखकर चलाया जायेगा। इस घोषणा का सर्वत्र स्वागत हुआ। किन्तु वास्तव में प्रशासन की दुकान वहीं रही, केवल दुकान का बोर्ड बदल दिया गया। फलस्वरूप भारतीयों में असंतोष उत्पन्न होने लगा और भारत में राष्ट्रवाद का उत्थान होने लगा। इसलिए 1858 से 1947 तक के संवैधानिक विकास का इतिहास ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय राष्ट्रवाद के बीच संघर्ष का परिणाम था। इसलिए भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन और संवैधानिक विकास एक दूसरे से इतने जुड़े हुए है कि एक का अध्ययन दूसरे के बिना संभव नहीं है।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्देश्य एक संवैधानिक स्थिति प्राप्त करना था। राष्ट्रीय आन्दोलन के दबाव से विवश होकर ब्रिटिश सरकार ने समय–समय पर भारत में संवैधानिक सुधार किये, जिसके फलस्वरूप भारत में संसदीय तथा प्रतिनिधि संस्थाओं का विकास हुआ। 1853 के चार्टर अधिनियम में यह व्यवस्था की गई थी कि सर्वोच्च विधान परिषद् सभी प्रान्तों के लिये कानून बनाये। किन्तु परिषद् को प्रान्तों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान न होने से कानून ढंग से नहीं बन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पाते थे। अतः प्रान्तों की परिषदों को वैधानिक शक्तियां देना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च विधान परिषद् ने एक छोटी संसद के रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिया था और अत्यधिक शक्तिशाली हो गयी थी। अतः इस विधान परिषद् की शक्तियों का कम करना था। इसलिए 1861 का भारतीय कौंसिल अधिनियम पारित किया गया। 1885 से 1891 के बीच कांग्रेस वैधानिक सुधार की मांग करती रही। अतः 1892 का भारतीय कौंसिल अधिनियम इस मांग का परिणाम था। उग्रवादी आन्दोलन के फलस्वरूप 1909 का मार्लेमिन्टो सुधार अधिनियम पारित किया गया। प्रथम विश्वयुद्ध के काल में राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र हो गया और विवश होकर भारत सचिव मोन्टेग्यू की घोषणा के आधार पर 1919 का अधिनियम पारित किया गया। तत्पश्चात असहयोग आन्दोलन, स्वराज्य पार्टी की गतिविधियां, साइमन कमीशन की नियुक्ति, सविनय अवज्ञा आन्दोलन और गोलमेज सम्मेलनों के फलस्वरूप 1935 का अधिनियम पारित हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के काल में भारतीयों की जागरूकता तथा 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के फलस्वरूप भारतीय स्वाधीनता अधिनियम पारित हुआ। इस प्रकार हमारे संवैधानिक विकास पर राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

5.1 मार्ले–मिण्टो सुधार :

1892 से 1909 के मध्य का समय तूफान तथा दबाव का समय था। 1892 के अधिनियम से भारतीयों की आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हुई। लार्ड कर्जन की नीतियों से देश में व्यापक असन्तोष उत्पन्न हो गया तथा कांग्रेस क्रान्तिकारी विचारों से परिप्लावित होने लगी। 1905 के बंगाल विभाजन ने देश में बढ़ते हुए असन्तोष में आहुति का कार्य किया। इसी समय अबीसीनिया ने इटली और जापान ने रूस को पराजित किया। इससे भारतीयों में एक नई चेतना का संचार हुआ और बंग–भंग आन्दोलन ने क्रान्तिकारी रूप धारण कर लिया, जिसको सरकार ने अपनी पूर्ण शक्ति से कुचल दिया। फलस्वरूप देश में आतंकवादी आन्दोलन का विकास हुआ। दुर्भाग्यवश राष्ट्रीय कांग्रेस में फुट पड़ने का लाभ उठाकर सरकार ने उग्रवादियों की पीट थपथपाने के प्रयत्न आरम्भ कर दिये।

इस समय ब्रिटिश नीति में भी परिवर्तन आया। 1857 के बाद अंग्रेज प्रशासकों की नीति हिन्दुओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण थी। किन्तु अब गवर्नर जनरल मिण्टो राष्ट्रवाद के वेग को रोकने के लिये हिन्दू मुसलमानों में फूट पैदा करना चाहता था। मिण्टो के निजी सचिव मार्ले ने लार्ड मिण्टो को कुछ संवैधानिक सुधार करने की सलाह दी। अतः मिण्टो ने भारत सुधार करने की एक योजना मार्ले के पास भेजी। यह योजना एक विधेयक के रूप में ब्रिटिश संसद में पेश की गई। ब्रिटिश संसद ने इस विधेयक को 1909 में पास कर दिया। 1909 में पास किये भारतीय परिषद् अधिनियम को मार्ले–मिण्टो सुधार कहते है। इस अधिनियम की मुख्य धाराएं अग्रलिखित थीं –

1. विधान परिषद् के सदस्यों की कुल संख्या 69 निश्चित की गई, जिनमें 9 पदेन (कार्यकारणी के सदस्य) तथा 60 अतिरिक्त सदस्य रखे गये। अतिरिक्त सदस्यों में से 28 सरकारी सदस्यों को गवर्नर जनरल मनोनीत करेगा। 32 गैर सरकारी सदस्यों में से 27 नर्वाचित तथा 5 मनोनीत सदस्य होंगे। 27 निर्वाचित सदस्यों में से 5 मुसलमानों द्वारा, 6 हिन्दू जमींदारों द्वारा, एक–एक मुस्लिम जमींदारों, बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्स तथा बम्बई चेम्बर ऑफ कॉमर्स द्वारा चुने जाने थे। शेष 13 सदस्य प्रान्तीय विधान परिषदों द्वारा चुने जाने थे। अतिरिक्त सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष रखा गया।

2. बम्बई, मद्रास, बंगाल और उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय परिषदों में भी अतिरिक्त सदस्यों की संख्या 50 कर दी गई, जिसमें गैर–सरकारी सदस्यों का बहुमत होता था। किन्तु इसका अर्थ यही कि वहां निर्वाचित सदस्यों का बहुमत कर दिया गया। कुछ गैर सरकारी लोगों को प्रान्तों के सवर्नर मनोनीत करते थे, जो सदैव गवर्नर के प्रति वफादार रहते थे। इस प्रकार प्रत्यक्ष में तो गैर सरकारी सदस्यों के बहुमत की व्यवस्था की गई, लेकिन परोक्ष में सरकार का ही बहुमत रखा गया। छोटे प्रान्तों के लिये अतिरिक्त सदस्यों की संख्या 30 कर दी गई।

3. विधान परिषदों के कार्यों और अधिकारों में वृद्धि की गई। उस सदस्य को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया, जिसने मूल प्रश्न पूछा हो। स्पष्ट है कि दूसरे सदस्य को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार नहीं दिया गया। बजट पर बहस करने और प्रस्ताव पेश करने का अधिकार दिया गया, किन्तु बजट के कुछ विशेष मदों पर चर्चा करने का अधिकार नहीं दिया गया और न बजट पर मतदान ही करवाया जा सकता था। विधान परिषद का अध्यक्ष सार्वजनिक हित का बहाना लेकर किसी भी प्रस्ताव को रखने की अस्वीकृति दे सकता था। प्रस्ताव प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में कहा गया कि, "वे स्पष्ट तथा निश्चित होने चाहिये, उनमें दलील, अनुमान तथा आक्षेप की चर्चा नहीं होनी चाहिए।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. भारत सचिव को अधिकार दिया गया कि वह मद्रास और बम्बई की कार्यकारिणी परिषद में दो से चार तक सदस्य बढ़ा सके और उनमें से कम से कम आधे सदस्य ऐसे हों, जो 12 वर्ष तक सम्राट की सेवा में भारत में रह चुके हों। इस अधिनियिम के स्वीकृत होते ही भारतीयों को भारत सचिव को कौसिल में तथा गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में मनोनीत किया गया।

5.1.1 अधिनियम की समीक्षा :

यह अधिनियम निश्चित रूप से 1892 के अधिनियम से बहुत आगे था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में एक भारतीय को और दो भारतीयों को भारत सचिव की कौसिल में स्थान दिया गया। विधान परिषदों का विस्तार करके इसके कार्यों और अधिकारों मे वृद्धि की गई। इस अधिनियम द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन सिद्धान्त स्वीकार किया गया। विधान परिषद् के सदस्यों को सर्वाजनिक हित के मामलो की और सरकार का ध्यान आकर्षित करने का अधिकार दिया गया। भारतीयों को सरकारी आलोचना करने तथा सुझाव देने का अधिकार प्राप्त हुआ। किन्तु सरकार पर भारतीयों का कोई नियन्त्रण नहीं था। रैम्जे मैकलोनल्ड ने लिखा है कि, ''मार्लेमिण्टो सुधार जनतन्त्रवाद और नौकरशाही के बीच एक अधूरा और अल्पकालीन समझौता था।''

वस्तुतः मार्ले–मिण्टो सुधार अधिनियम का मुख्य उद्देश्य उदारवादियों की पीठ थपथपाना था। यदि किसी वजह से उदारवादी भी अंग्रेजों का साथ न दे सके तो मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व देकर उनकी पीठ भी थपथपायी गई। भारतीयों ने उत्तरदीय सरकार की मांग की थी, लेकिन इस अधिनियम द्वारा उनकी इस मांग को पूरा नहीं किया गया। इस अधिनियिम का उद्देश्य भारत में संसदीय सरकार स्थापित करना नहीं था, जैसा कि स्वयं मार्ले ने ब्रिटिश संसद में कहा था, ''यदि इन सुधारों के विषय में यह कहा जाय कि इनसे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से भारत में संसदीय सरकार की स्थापना होती है तो मेरा ऐसे कार्यो से कोई सम्बन्ध नहीं।'' इन सुधारों से कार्यकारिणी और विधान परिषद के सम्बन्ध पर भी कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।, क्योंकि कार्यकारिणी पूर्व की भांति स्वेच्छाचारी बनी रही। विधान परिषद में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाने का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि कुछ सरकारी अधिकारी और कुछ मनोनीत किये हुए गैर सरकारी अधिकारियों द्वारा सरकार का बहुमत बना रहता था। विधान परिषदें सरकार के हाथ की कठपुतली बनी रही। विधान परिषद के सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि की गई, किन्तु उन पर तरह–तरह के प्रतिबन्ध लगा कर उन अधिकारों को सीमित कर दिया गया। सदस्यों को प्रश्न पूछने का अधिकार था, किन्त कार्यकारिणी द्वारा उसका उत्तर देना अनिवार्य नहीं था। सदस्यों को सार्वजनिक हित के प्रस्ताव पेश करने का अधिकार था, किन्तु विधन परिषद का अध्यक्ष ऐसे प्रस्ताव को प्रस्तुत करने की मनाही कर सकता था। इस अधिनियम को लागू करने के लिये जो विनियम बनाये गये, उनमें उग्रवादी राष्ट्रीय नेताओं को चुनाव लड़ने के लिये अयोग्य घोषित कर दिया गया। इस अधिनियिम पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए 'अमृत बाजार पत्रिका' ने 17 नवम्बर 1909 को लिखा, ''शून्य के साथ यदि कोई शून्य जोड़ भी दिये जायें तब भी वह शून्य, शून्य ही रहता है।'' कूपलैण्ड ने लिखा है कि, ''विधान परिषदें संसद न होकर केवल दरबार थी।''

इस अधिनियम ने भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता के विषैले तत्वों का ऐसा बीजारोपण किया, जो 1947 में देश विभजन के रूप में पल्लवित हुआ। निर्वाचन क्षेत्रों को क्षेत्रीयता के स्थान पर धार्मिक, व्यवसायिक तथा सम्पत्ति के आधार पर विभाजित किया गया। इस प्रकार निर्वाचन प्रणाली द्वारा विभिन्न हितों एवं सम्प्रदायों में परस्पर फूट उत्पन्न करने का प्रयास किया गया। मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व देकर उनमें हिन्दुओं से अलग होने की प्रवृति उत्पन्न कर दी। यह विषैला पौधा यहीं समाप्त नहीं हुआ बल्कि अंग्रेज प्रशासकों ने समय–समय पर इसको सींचकर पल्लवित होने में सहयोग दिया और अन्त में इसी साम्प्रदायिक खड़ग द्वारा भारत के दो टुकड़े कर दिये।

यह अधिनियम भारतीयों को सन्तुष्ट करने में असमर्थ रहा। स्वयं गोखले ने, जो उदारवादी नेता थे, कहा कि इन सुधारों में अच्छी बातें अवश्य थी, किन्तु सरकारी नियमों व उपनियमों द्वारा उन्हें नष्ट कर दिया गया है उन्होंने साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली की घोर निन्दा की। डॉ. जकारिया ने लिखा है कि इन सुधारों ने लोगों को मूलभूत तत्व देने की बजाय उसकी छाया प्रदान की थीं इसी प्रकार डॉ. मजूमदार ने इसे चन्द्रमा की चमक की संज्ञा दी है। यद्यपि इस अधिनियम द्वारा उदार दल को शान्त करने का प्रयास किया गया था, किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति में भी यह पूर्णतः असफल रहा।

5.2 मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार :

1909 के सुधारों से भारतीयों की क्षुधा शान्त नहीं हो सकी। भारत में राजनैतिक असन्तोष दिन प्रतिदिन बढ़ता गया,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जिसके फलस्वरूप देश में क्रान्तिकारी और आतंकवादी आन्दलोन तीव्र हो गये और शासन सुधार की मांग तेज हो गयी। सरकार की दमन नीति ने आग में घी का काम किया। 1910 में भारतीय प्रेस एक्ट पारित करके समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता को कुचल दिया गया। 1911 में राजद्रोह सभा अधिनियम पास करके सरकार के विरूद्ध सभाएं करने पर रोक लगा दी। राष्ट्रवादी आन्दोलनों का दमन करने के लिये 1913 में फौजदारी संशोधन अधिनियम पारित किया गया। किन्तु इस दमन नीति के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन और अधिक तीव्र हो गया। इस असंतोष वातावरण में प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। मित्र राष्ट्रों ने घोषणा की कि वे जनतन्त्र की रक्षार्थ युद्ध लड़ रहे है। अतः भारतीयों ने तन, मन और धन से अंग्रेज सरकार को सहायता दी, क्योंकि उन्हें युद्ध के बाद स्वराज्य प्राप्ति की आशा थी। किन्तु युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने चुप्पी साध ली। अतः भारतीयों को विवश होकर होमरूल आन्दोलन आरम्भ करना पड़ा। यद्यपि इस आन्दोलन को दबाने का प्रयास किया गया, लेकिन लोगों में उत्पन्न जागृति को नहीं दबाया जा सका। अतः विवश होकर भारत मंत्री माण्टेग्यू ने 20 अगस्त 1917 को ब्रिटिश संसद में घोषणा की कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करना सरकार का चरम लक्ष्य है। इसकी क्रमिक पूर्ति के लिये स्वायत्त शासन की संस्थाओं का उत्तरोत्तर विकास किया जाये और भारतीयों को प्रशासन की प्रत्येक शाखा में साझीदार बनया जाये।

इस घोषणा के बाद मॉण्टेग्यू नवम्बर 1917 को दिल्ली आया तथा गवर्नर जनरल चेम्सफोर्ड के साथ देश का दोरा किया। मॉण्टेग्यू ने भारतीय सेनाओं से भी विचार विमर्श किया। तत्पश्चात् एक रिपोर्ट तैयार की गई जिसे मॉण्टेयू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट कहते है। 8 जुलाई 1918 को यह रिपोर्ट प्रकाशित कर दी गई। इस रिपोर्ट में मुख्य पांच बाते दी गई –

1. जहां तक सम्भव हो, स्थानीय संस्थाओं पर जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का नियन्त्रण हो, सरकार का कम से कम नियंत्रण हो।
2. प्रान्तों में थोड़ी सी उत्तरदायी सरकार स्थापित कर दी जाये और प्रान्तों को पहले की अपेक्षा अधिक शक्तियां दी जाये।
3. भारत सरकार की ब्रिटिश संसद के प्रति जिम्मेदारी ज्यों की त्यों बनी रहेगी, किन्तु केन्द्रीय विधानपरिषद् का विस्तार कर दिया जाये, ताकि यह भारत सरकार को पहले से अधिक प्रभावित कर सके।
4. भारत सरकार पर, भारत सचिव का नियन्त्रण कुछ ढीला कर दिया जाये।
5. सिक्ख, ईसाई और एंग्लो–इण्डियन्स को भी अलग प्रतिनिधित्व दिया जाये।

इस रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश संसद में एक विधेयक प्रस्तुत किया गया जिसे 1919 में पारित कर दिया गया। इसे भारत सरकार अधिनियम, 1919 अथवा मॉण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार अधिनियम कहते है। इस अधिनियिम को 1921 में कार्यान्वित किया गया। इसके द्वारा मुख्य रूप से निम्नलिखित परिवर्तन किये गये –

5.2.1 गृह सरकार :

भारत सचिव : शासन का दो भागों में विभाजन भारत में ब्रिटिश शासन प्रणाली की मुख्य विशेषता थी। इसका एक भाग इंग्लैण्ड में कार्य करता था और दूसरा भारत में शासन का जो भाग इंग्लैण्ड में कार्य करता था वह गृह सरकार कहलाता था। इसके मुख्य पांच अंग थे – सम्राट, मन्त्री मण्डल, संसद, भारत सचिव और इण्डिया कौसिल। इनमें भारत सचिव व इण्डिया कौसिल सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भारत सचिव भारत के शासन सम्बनधी मामलों के लिये संसद के प्रति उत्तरदायी था तथा उसको वेतन भारतीय राजस्व में से मिलता था, जिसके विरूद्ध भारतीयों ने आवाज उठाई थी। अतः 1919 के अधिनियम द्वारा भारत सचिव का वेतन इंग्लैण्ड के कोष से दिये जाने की व्यवस्था की गई।

इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गई तथा केन्द्र की व्यवस्थापिका सभा में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा गया। अतः भारत सचिव की शक्तियों में कमी करना आवश्यक था। प्रान्तों में जो विषय भारतीय मन्त्रियों को दिये गये, उन्हें हस्तांतरित विषय कहा गया तथा जो विषय गवर्नर ने अपने पास रखे, उन्हें रक्षित विषय कहा गया। भारत सचिव का हस्तांतरित विषयों पर नियंत्रण कम कर दिया गया। हस्तांतरित विषयों में भारत सचिव का हस्तक्षेप निम्नलिखित बातों तक सीमित कर दिया गया –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा।

2. ऐसे प्रश्नों का निर्णय करना, जो प्रान्तों द्वारा न सुलझ सके, हों।

3. गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद को 1919 के अधिनियम के अधीन जो कार्य सौपे गये हैं, उनकी देखभाल करना तथा उनके उचित कार्यों का समर्थन करना। केन्द्रीय विषयों के शासनों की देखभाल करना।

4. भारतीय हाई कमिश्नर, भारतीय नौकरियों और अपने ऋण लेने के अधिकारों की रक्षा करना।

केन्द्र तथा प्रान्तों के रक्षित विषयों पर भी भारत सचिव का नियन्त्रण कुछ ढीला कर दिया गया। इस अधिनियम के पूर्व जो भी विधेयक केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधान सभाओं में प्रस्तुत किये जाते थे, उनमें भारत सचिव की पूर्व स्वीकृति आवश्यक थी। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि कुछ विशेष मामलों से सम्बन्धित विधेयक जैसे विदेशी मामले, सीमा शुल्क, सैनिक मामले, नोट तथा सार्वजनिक ऋण इत्यादि को छोड़कर शेष विषयों में भारत सचिव की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होगी। प्रान्तों के मामलों के सम्बन्ध में यह निश्चित कर दिया कि किसी भी बिल को भारत सचिव के पास तब तक नहीं भेजा जायेगा, जब तक कि गवर्नर जनरल उसकी स्वीकृति के बारे में कोई रूकावट उत्पन्न करे।

5.2.2 इण्डिया कौसिल :

इस अधिनियम के अन्तर्गत भारत सचिव, अपर सचिव तथा उसके विभाग के सभी खर्च भारतीय कोष से देने की बजाय इंग्लैण्ड के खजाने से देने की व्यवस्था की गई। यह भी व्यवस्था की गई कि इण्डिया कौसिल में कम से कम 8 तथा अधिक से अधिक 12 सदस्य होंगे, जिनमें आधे सदस्य ऐसे होंगे जिन्हें भारत में सेवा करने का कम से कम दस वर्ष का अनुभव हो। इण्डिया कौसिल के सदस्यों का कार्यकाल 7 वर्ष से घटाकर 5 वर्ष कर दिया गया तथा उनका वेतन 1,000 पौड से बढ़ाकर 12,200 पौड वार्षिक कर दिया।

हाई कमिश्नर : इस अधिनियिम के अन्तर्गत पहली बार हाई कमिश्नर के पद का सृजन किया गया। इस अधिनियम में यह तय किया गया कि हाई कमिश्नर भारत सरकार की सभी आवश्यक वस्तुएं लन्दन में खरीदेगा। इसके अतिरिक्त वह इंग्लैण्ड में पढ़ने वाले भरतीय विद्यार्थियों की सुविधाओं और आवश्यकताओं की तरफ ध्यान देगा। हाई कमिश्नर की नियुक्ति सपरिषद् गवर्नर जनरल करता था और उसका वेतन भारतीय कोष से दिया जाता था। साधारणतः वह छः वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता था। ब्रिटिश सरकार का विचार था कि इंग्लैण्ड में भारत का प्रतिनिधित्व हाई कमिश्नर द्वारा करवाने से भारतीय अनुभव करेंगे कि उनका सम्मान बढ़ गया है। किन्तु भारतीयों ने इसकी नियुक्त को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया।

उपर्युक्त परिवर्तनों का गृह सरकार पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि इस अधिनियम के बाद भी गृह सरकार की वैधानिक सर्वोच्चता ज्यों की त्यों बनी रही। गवर्नर जनरल और उसकी सरकार के सभी सदस्यों को गृह सरकार का आदेश मानना पड़ता था।

5.2.3 केन्द्रीय सरकार :

गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारिणी : इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद् की रचना और शक्तियों में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया गया। गवर्नर जनरल की शक्तियां पहले की भांति असीमित, निरंकुश और उत्तरदायी रहीं। गवर्नर जनरल अपनी कार्यकारिणी परिषद् का प्रधान होता था तथा कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति उसकी सिफारिश पर भारत सचिव करता था। गवर्नर जनरल ही अपनी कार्यकारिणी के सदस्यों में कार्य का विभाजन करता और कार्यकारिणी परिषद् की बैठक बुला सकता है। गवर्नर जनरल अपनी कार्यकारिणी के परामर्श की अवहेलना भी कर सकता था। वह भारत में ब्रिटिश सम्राट का प्रतिनिधि होता था। उसकी नियुक्त ब्रिटिश प्रधान मन्त्री की सिफारिश पर ब्रिटिश सम्राट द्वारा पांच वर्ष के लिए की जाती थी। 1919 के अधिनियम के अनुसार गवर्नर जनरल का, विदेश विभाग और राजनैतिक विभाग पर सीधा नियन्त्रण स्थापित किया गया। इस अधिनियिम द्वारा कानून सदस्य की योग्यता में कुछ परिवर्तन किया गया। अब उसी व्यक्ति को कानून सदस्य नियुक्त किया जा सकता था, जो भारत के उच्च न्यायालयों में कम से कम दस वर्ष एडवोकेट रहा हो। इस अधिनियम में यह भी कहा था कि कार्यकारिणी में तीन में तीन ऐसे सदस्य होने चाहिये, जिन्होंने ब्रिटिश ताज के अधीन कम से कम दस वर्ष सेवा की हो। इसके परिणामस्वरूप कार्यकारिणी में तीन भारतीय सदस्यों की नियुक्त की

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गई, लेकिन इन भारतीयों के हाथ में कोई वास्तविक शक्ति नहीं थी। कार्यकारिणी, विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी न होकर गवर्नर जनरल के प्रति उत्तरदायी थी। गवर्नर जनरल भी केन्द्रीय विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी न होकर भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी था और भारत सचिव ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी था।

केन्द्रीय विधान मण्डल : इस अधिनियम द्वारा पहली बार द्विसदनात्मक विधान मण्डल की स्थापना की गई। पहले सदन को विधान सभा और दूसरे सदन को राज्य सभा कहा जाता था। विधान सभा में 145 सदस्य थे, जिनमें 104 निर्वाचित तथा मनोनीत होते थे। 104 निर्वाचित सदस्यों में से 52 सदस्य सामान्य निर्वाचित क्षेत्रों से, 30 मुस्लिम, 2 सिक्ख, 9 यूरोपियन, 7 जमींदार तथा 4 भारतीय वाणिज्य के हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। 41 मनोनीत सदस्यों में 26 सरकारी अधिकारी और 15 गैर सरकारी अधिकारी होते थे। 33 निर्वाचित सदस्य विभिन्न सम्प्रदायों और हितों में बंटे हुए थे और 27 मनोनीत सदस्यो में 17 सरकारी अधिकारी और 10 गैर सरकारी सदस्य होते थे।

विधान सभा तीन वर्ष के लिए तथा राज्य सभा पांच वर्ष के लिए निर्वाचित होती थी। किन्तु गवर्नर जनरल इन सदस्यों का कार्यकाल बढ़ा सकता था और कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व उन्हें भंग भी कर सकता था।

विधान मण्डल का कार्य क्षेत्र : विधान सभा केन्द्रीय सूची में उल्लिखित विषयों पर ब्रिटिश भारत के लिये कानून बना सकती थी। गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति से यह प्रान्तों के लिये भी कानून बना सकती थी। किन्तु यह 1919 के अधिनियम में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती थी तथा ऐसा कोई कानून नहीं बना सकती थी, जो ब्रिटिश संसद के किसी कानून के विरूद्ध हो। केन्द्रीय बजट सबसे पहले विधान सभा में प्रस्तुत किया जा सकता था और इसके बाद राज्य सभा में भेजा जाता था। किन्तु बजट के लगभग 85 प्रतिशत भाग पर विधान सभा बहस तो कर सकती थी लेकिन मतदान नहीं कर सकती थी। शेष 15 प्रतिशत भाग के बारे में विधान सभा किसी खर्च के लिए इन्कार कर सकती थी अथवा कोई कटौती कर सकती थी, किन्तु यह किसी रकम को बढ़ा नहीं सकती थी।

कोई भी बिल जब तक दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं है जाता था, कानून नहीं बन सकता था। बजट, राज्य सभा में उसी दिन पेश किया जाता था, जिस दिन विधान सभा में। अन्य वित्त विधेयक पहले विधानसभा में पेश किये जाते थे। वित्त विधेयक को राज्य सभा या तो बिल्कुल अस्वीकार कर सकती थी अथवा कुछ संशोधन के लिए सुझाव दे सकती थी। लेकिन राज्य सभा की अस्वीकृति या संशोधनों के सुझावों से विधान सभा सहमत न हो तो गवर्नर जनरल अपनी विशेष शक्तियों द्वारा उसे स्वीकार कर सकता था।

केन्द्रीय विधान मण्डल का ढांचा अत्यन्त ही दोषपूर्ण था। गवर्नर जनरल तथा उसकी कार्यकारिणी विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। विधान मण्डल, गवर्नर जनरल तथा उसकी कार्यकारिणी के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास करके उन्हें त्याग पत्र देने को बाध्य नहीं कर सकती थी। यह केवल सार्वजनिक हितों के मामलों में प्रस्ताव पास कर सकती थी, लेकिन इन प्रस्तावों को मानना या न मानना गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर था। अतः विधान मण्डल के पास प्रभुत्व शक्ति का अभाव था। यह केवल कार्यकारिणी को प्रभावित कर सकता था। गवर्नर जनरल विधान मंडल द्वारा पारित किसी भी विधेयक को अस्वीकृत कर सकता था, वह किसी प्रस्ताव पर बहस रोक सकता था और अपनी इच्छानुसार किसी विधेयक में संशोधन कर सकता था। आपातकाल में वह अध्यादेश प्रसारित कर सकता था। इससे स्पष्ट है कि गवर्नर जनरल भारतीय प्रशासन के मामलों में सर्वेसर्वा था और केन्द्रीय विधान मण्डल उसके सामने बिल्कुल अशक्त थे।

शक्ति तथा राजस्व विभाजन : इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी सरकार स्थापित की गई थी। अतः शासन सम्बन्धी समस्त विषयों को दो सूचियों में विभाजित किया गया। केन्द्रीय सूची और प्रान्तीय सूची। जो विषय दोनों सूचियों में सम्मिलित होने से रह गये थे, वह केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत आ जाते थे। जिन विषयों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण भारत अथवा एक से अधिक प्रान्तों में समान कानून की आवश्यकता अनुभव की गई, उन्हें केन्दीय सूची में रखा गया और प्रान्तीय हित के विषय प्रान्तीय सूची में रखे गये। केन्द्रीय सूची में 47 विषय थे जैसे – प्रतिरक्षा, विदेशो से सम्बन्ध, देशी रियासतों से सम्बन्ध, रेल, डाक व तार, सिक्के तथा नोट, सैन्य सम्बन्धी विषय, सार्वजनिक ऋण, दीवनी तथा फौजदारी कानून, सीमा शुल्क, रूई पर उत्पादन कर, नमक आयकर आदि। प्रान्तीय सूची में 50 विषय रखे गये 7 जैसे स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा चिकित्सा, शिक्षा, सार्वजनिक निर्माण कार्य, पुलिस तथा जेल, वन, सिचाई, अकाल में सहायता, कृषि भूमि कर, सहकारी संस्थायें आदि। दोनों सूचियों के किसी विषय के सम्बन्ध में मतभेद होने पर उसका निर्णय गवर्नर जनरल करता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रशासनिक अधिकारों की भांति राजस्व के साधनों को भी दो भागों में विभाजित किया गया। केन्द्रीय राजस्व में चुंगी, आयकर, रेल, तार, डाक, नमक, अफीम आदि रखे गये तथा प्रान्तीय भूमि कर, चुंगी, सिचाई, स्टाम्प व रजिस्ट्रेशन आदि थे।

5.2.4 प्रान्तीय शासन व्यवस्था :

इस अधिनियम द्वारा सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रान्तीय शासन में किया गया। प्रान्तों में एक विचित्र प्रकार की शासन व्यवस्था स्थापित की गई, जिसे द्वैध शासन प्रणाली कहते हैं द्वैध शासन का अर्थ है – दो शासकों का शासन या दोहरा शासन। इस अधिनियम द्वारा प्रांतों में आंशिक उत्तरदायी सरकार स्थापित की गई। जैसा कि ऊपर बताया गया है, सम्पूर्ण प्रशासनिक विषयों को केन्द्रीय सूची और प्रान्तीय सूची में विभाजित किया गया। इस अधिनियम द्वारा पहली बार प्रान्तीय विषयों को भी दो भागों में बांटा गया – रक्षित विषय तथा हस्तांतरित विषय। जिन विषयों को भारतीयों के हाथों में देने से ब्रिटिश सरकार को कोई विशेष हानि नहीं होती थी, उन विषयो को हस्तांरित किया गया तथा उनके शासन का उत्तरदायित्व भारतीय मंत्रियों को सौपा गया। उदाहरणार्थ, स्थानीय स्वशासन, चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सफाई, यूरोपियनों एवं एंग्लो–इण्डियन्स की शिक्षा को छोड़कर शेष जनता की शिक्षा, सार्वजनिक कार्य ,कृषि, सहकारी समितियां, मछली क्षेत्र, उद्योग धंधे, खाद्य वस्तुओं में मिलावट, जन्म ता मृत्यु सम्बन्धी आंकड़े, तोल और माप आदि ऐसे 22 विषय हस्तांतरित रखे गये। शेष 28 विषय अधिक महत्वपूर्ण थे, वे सभी रक्षित रखे गये। उदाहरणार्थ भूमिकर, अकाल सहायता, न्याय प्रशासन, खनिज साधनों का विकास, पुलिस, समाचार पत्र, पुस्तकों व छापाखानों पर नियन्त्रण, प्रान्तीय वित्त आदि रक्षित विषय रखे गये। हस्तांतरित विषयों का दायित्व भारतीय मंत्रियों को सौप दिया गया, जो प्रान्तीय विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी होते थे। रक्षित विषयों के शासन का दायित्व गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी परिषद् को सौपा गया जो प्रान्तीय विधान परिषद् के प्रति उत्तरदायी न होकर भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी होते थे रक्षित विषयों पर प्रान्तीय विधान परिषद् का कोई नियन्त्रण नहीं था। जहां यह विवाद उत्पन्न हो जाता है कि कोई विषय रक्षित है अथवा हस्तांतरित, वहां गवर्नर का निर्णय अन्तिम समझा जाता था।

प्रान्तीय कार्यपालिका : प्रान्तीय कार्यपालिका को भी दो अलग–अलग भागों में बांटा गया। एक भाग तो कार्यकारिणी परिषद् थी और दूसरा भाग भारतीय मंत्री थे। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में कार्यकारिणी परिषद् में चार सदस्य थे अन्य प्रांतों में केवल दो थे। यह व्यवस्था की गई कि कार्यकारिणी परिषद में आधे सदस्य गैर सरकारी भारतीय होंगे। कार्यकारिणी के सभी सदस्य पांच वर्ष के लिये ब्रिटिश ताज द्वारा भारत सचिव की सिफारिश पर नियुक्त किये जाते थे व्यवहार में जिन व्यक्तियों के नाम की सिफारिश गवर्नर जनरल कर देते थे, भारत सचिव उन्हीं की स्वीकृति दे देता था। गवर्नर कार्यकारिणी परिषद् का प्रधान होता था तथा कार्यकारिणी के किसी भी निर्णय की वह उपेक्षा कर सकता था।

हस्तांरित विषयों का शासन चलाने के लिये मन्त्री नियुक्त किये गये। उनकी अधिकतम संख्या निश्चित नहीं की गई। बम्बई, कलकत्ता व मद्रास में तीन मन्त्री नियुक्त किये गये और शेष प्रान्तों में दो मन्त्री नियुक्त किये गये थे। मन्त्रियों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा की जाती थी तथा उसकी इच्छा रहने तक ही वे अपने पद पर बने रह सकते थे मन्त्रियों की नियुक्ति विधान परिषद के सदस्यों में से ही की जाती थी। यदि किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्री नियुक्त कर दिया जाता जो विधान परिषद का सदस्य नहीं होता था, तो उसे 6 महीने के अन्दर विधान परिषद का सदस्य बनना पड़ता था। जिस मन्त्री में विधान परिषद का विश्वास नहीं होता था, उसे अपना त्याग पत्र देना पड़ता था। इधर गवर्नर को बिना कारण बताये मन्त्रियों को हटाने का अधिकार था। इस प्रकार मन्त्रियों को विधान परिषद तथा गवर्नर की दया पर छोड़ दिया गया था। यदि मन्त्रियों की सलाह से प्रान्त की शान्ति या सुरक्षा में बाधा उत्पन्न होती हो अथवा वह सलाह अल्पसंख्यक जातियो के हितों के विरूद्ध हो, अथवा भारत सचिव व गवर्नर जनरल के आदेशों के विरूद्ध हो तो गवर्नर मन्त्रियों की सलाह की उपेक्षा करके अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता था। यदि किसी कारण वश हस्तांतरित विषयों का शासन इस अधिनियम के अनुसार नहीं चलाया जा सकता था, तो गवर्नर भारत सचिव की पूर्व स्वीकृति से इस अधिनियम को, जितने समय के लिये आवश्यक समझे स्थगित कर सकता था। ऐसी स्थिति में हस्तांतरित विषयों को प्रशासन रक्षित विषयों की तरह चलाया जा सकता था।

प्रान्तीय विधान मण्डल : प्रान्तीय विधान मण्डल से हमारा अभिप्राय केवल विधान परिषद से है। विधान परिषद के सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गई। प्रत्येक प्रान्त में इसके सदस्यों की संख्या भिन्न–भिन्न थी। यह व्यवस्था की गई कि विधान परिषद् से कम से कम 20 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होंगे और 20 प्रतिशत से अधिक सरकारी अधिकारी नहीं होंगे। इसके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

अतिरिक्त कुछ मनोनीत गैर सरकारी अधिकारी भी होंगे। गवर्नर की कार्यकारिणी के सदस्य विधान परिषद् के पदेन सदस्य होते थें विधान परिषद का कार्यकाल तीन वर्ष निर्धारित किया गया किन्तु गवर्नर इस अवधि से पूर्व भी उसे भंग कर सकता था और विशेष परिस्थिति में उसकी अवधि एक वर्ष के लिये बढ़ा भी सकता था।

प्रान्तीय विधान परिषद् को यह अधिकार दिया गया कि वह अपने प्रांत की शान्ति तथा अच्छी सरकार के लिये कानून बनाये। इस अधिनियम से पूर्व प्रत्येक बिल के लिए गवर्नर जनरल की पूर्व आज्ञा लेना आवश्यक था, लेकिन इस अधिनियम में यह तय किया गया कि कुछ विशेष मामलों को छोड़कर शेष के लिये गवर्नर जनरल की आज्ञा की आवश्यकता नहीं रहेगी। परन्तु गवर्नर तथा गवर्नर जनरल को विशेष शक्तियां देकर विधान परिषद के अधिकारों को सीमित कर दिया गया।

द्वैध शासन के दोष और उसकी असफलता के कारण :

द्वैध शासन प्रणाली के वर्णन से स्पष्ट है कि प्रान्तो में पूर्ण उत्तरदायी सरकार स्थापित नहीं की गई थी। अतः कांग्रेस दल ने इसका पूर्ण बहिष्कार किया। 1924 मे कांग्रेस की ओर से स्वराज्य पार्टी ने चुनावों में भाग लिया। स्वराज्य पार्टी का मुख्य उद्देश्य विधान मण्डलों में जाकर द्वैध शासन को असफल बनाना था। विधान मंडलों मे आकर उन्होने द्वैध शासन में परिवर्तन की मांग की। अतः सरकार ने मुडीमैन समिति की नियुक्ति की, जिसमें यूरोपियन और भारतीय दोनों तरह के सदस्य थे यूरोपियन सदस्य द्वैध शासन को मौखिक रूप से सही मानते थे, जबकि भारतीय सदस्य द्वैध शासन को मौलिक रूप से गलत मानते थे साइमन कमीशन ने भी द्वैध शासन प्रणाली के दोषो पर प्रकाश डाला था। नेहरू रिपोर्ट मे भी इसकी कटु आलोचना की गई थी। 1921 से 1937 तक द्वैध शासन पद्धति ब्रिटिश भारतीय प्रान्तों मे चालू रही। इस काल में जो अनुभव प्राप्त हुआ, उससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस व्यवस्था में अनेक दोष थे और इसकी असफलता निश्चित थीं द्वैध शासन के निम्नलिखित दोष हुये –

1. सैद्वान्तिक दृष्टि से दोषपूर्ण : द्वैध शासन सैद्धान्तिक दृष्टि से दोषपूर्ण था। द्वैध शासन में यह बात स्वतः मान ली गई कि भारतीय अभी पूर्ण उत्तरदायी शासन के लिये अयोग्य है। इसलिये भारत में शुरू में आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की जाये, ताकि भारतीय मंत्रियों को साधारण अधिकार भी मिल जाये और अंग्रेजों के हाथ से वास्तविक शक्ति भी न निकले। इसलिये भारतीयों का असन्तुष्ट होना स्वाभाविक ही था। दूसरा, प्रांतीय सरकार को दो भागों में बांटना जिसमें एक भाग विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी था और दूसरा अनुत्तरदायी था, सर्वथा त्रुटिपूर्ण था। इससे शासन की एकता और कार्यक्षमता नष्ट हो गयी। लार्ड लिटन ने ठीक ही कहा कि सरकार के रक्षित भाग को यद्यपि कोई पसन्द नहीं करता था, लेकिन उसे आदर सभी देते थे, जबकि हस्तांतरित भाग को न केवल नापसन्द किया जाता था अपितु तुच्छ भी समझा जाता था।

2. विषयों का अवैज्ञानिक विभाजन : प्रांतीय विषयों का रक्षित और हस्तांतरित विषयों में बंटवारा सरकार की न केवल एकता को नष्ट करने वाला था बल्कि यह कृत्रिम तथा अव्यवहारिक था, जिसके फलस्रूप नित्य नई समस्याएं उठ खड़ी होती थी। विषयों का बंटवारा ऐसे अवैज्ञानिक ढंग से किया गया कि मंत्रियों के पास किसी भी समूचे विभाग का पूर्ण नियन्त्रण नहीं था। उदाहरणार्थ, कृषि और सिचाई का अभिन्न सम्बन्ध है, किन्तु कृषि हस्तांतरित विषय रखा गया और सिचाई को रक्षित। शिक्षा हस्तांतरित विषय था, किन्तु यूरोपियनों तथा एंग्लो इंडियन्स की शिक्षा रक्षित विषय था। मद्रास सरकार के व्यवसाय मन्त्री पर था, पर सिचाई से मेरा कोई समबन्ध नहीं था। कृषि मन्त्री होते हुए भी मेरा मद्रास कृषक ऋण अधिनियम से कोई सरोकार नहीं था। सिचाई, कृषि ऋण भूमि विकास ऋण और अकाल रक्षा के बिना कृषि मंत्री की कार्यक्षमता और प्रभाव की केवल कल्पना ही की जा सकती है। मै मन्त्री या उद्योग का, पर कारखाने, भाप यन्त्र, जल विद्युत तथा श्रम विभाग मेरे पास नहीं थे, क्योंकि ये सब रक्षित विषय थे।'' इस कथन से स्पष्ट होता है कि मन्त्रियों को रक्षित विभागों पर पूर्णतया निर्भर बना दिया गया था, जिसके दुष्परिणाम निकले।

3. गवर्नर की विशेष शक्तियां : दोहरे शासन की सफलता इस बात पर निर्भर थी कि गवर्नर हस्तांतरित तथा रक्षित भागों के मतभेदों को किस प्रकार दूर करते है। यदि गवर्नर मंत्रियों के कार्या में अनुचित हस्तक्षेप करे और उनको वांछनीय सहयोग न दे अथवा अपनी विषेष शक्तियों का बार–बार प्रयोग करे, तब दोहरा शासन कभी सफल नहीं हो सकता था। मोण्टफोर्ड रिपोर्ट के रचयिता गवर्नर को मात्र संवैधानिक अध्यक्ष नहीं बनाना चाहते थे। उनका उद्देश्य था कि जब तक मंत्रियों की सलाह से कोई भयानक परिणाम न निकले, उनकी सलाह मान ली जाय। प्रारम्भ के दो वर्षों तक गवर्नरों ने मंत्रियों के मामलों में अनुचित हस्तक्षेप नहीं किया, किन्तु बाद में उन्होंने अनुचित हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। गवर्नरों ने तीन प्रकार से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)Ladnun

सारी शक्तियां अपनेहाथ में ले ली थी। प्रथम, उन्हें सरकार को अच्छी तरह संचालित करने के लिये नियम बनाने व आदेश जारी करने का अधिकार था। उन्होंने नियम बना दिया कि सप्ताह में एक बार सचिव अपने विभागीय कार्य के लिये गवर्नर से मिला करे और जहां उनके मंत्रियों से मतभेद हों, वे सभी मामले गवर्नरों के निर्णय के लिये प्रस्तुत करे। इसमें मन्त्री बिल्कुल शक्तिहीन हो गये और सचिव उनके विरूद्ध गवर्नर के कान भरने लगे। दूसरा, गवर्नरों ने मंत्रियों से इकट्ठा मिलने की बजाय अलग–अलग मिलना शुरू कर दिया, इससे मंत्रियों की बातों की उपेक्षा करना बहुत आसान हो गया। तीसरा, गवर्नरों ने एक नया सिद्धान्त अपना लिया कि मन्त्री केवल उनके परामर्शदाता है और यह उनकी इच्छा पर निर्भर है कि वे मंत्रियों की किसी बात को माने या न माने। इसका परिणाम यह हुआ कि गवर्नर मन्त्रियों की उचित सलाह की भी उपेक्षा करने लगा।

4. संयुक्त विचार–विमर्श का अभाव : इस अधिनियम के रचयिताओं ने प्रान्तीय सरकार के दोनों भागों (रक्षित तथा हस्तांतरित) में संयुक्त विचार–विमर्श की सिफारिश की थी, ताकि मंत्रियों द्वारा गवर्नर की कार्यकारिणी को जन–इच्छाओं का पता लगा सके तथा कार्यकारिणी के सदस्यों के अनुभवों से मंत्री कुछ सीख सके। गवर्नरों को इस प्रकार के निर्देश भी दिये गये थें किन्तु मद्रास के गवर्नर को छोड़ कर किसी भी गवर्नर ने इन निर्देशों का पालन नहीं किया। बजट पर विचार करने के अतिरिक्त कार्यकारिणी के सदस्य तथा मंत्रीगण शासन सम्बन्धी मामलों पर विचार–विमर्श के लिये सभी सम्मिलित नहीं होते थे। फलस्वरूप उनमें निरन्तर अविश्वास तथा तनातनी रही थी और वे सार्वजनिक रूप से एक दूसरे की निन्दा करते थे। मंत्रियों से यह आशा की जाती थी कि वे अपने साथियों की प्रत्येक बात का विधान परिषद् में समर्थन करे, जबकि रक्षित विभागों के बारे में उनसे कोई सलाह नहीं ली जाती थी। अतः प्रशासन पर इसके दुष्प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सके।

6. संयुक्त उत्तरदायित्व का अभाव : मंत्री किसी भी संगठित राजनैतिक दल के प्रतिनिधि नहीं थे, अतः वे किसी निश्चित कार्यक्रम से बधे हुए नहीं थे। गवर्नर ने उनमें संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करने का प्रयास की नहीं किया और न कभी उनमें सामूहिक विचार–विमर्श ही होता था। इसलिये विभिन्न समस्याओं पर उनके भिन्न–भिन्न विचार होते थें कई बार एक मंत्री दूसरे मन्त्री की योजना की विधान परिषद् में आलोचना कर देता था। मन्त्रियों का कार्यकारिणी के साथ भी कोई सहयोग नहीं था। मंत्री विधानपरिषद् के प्रति उत्तरदायी थे, अतः वे विधान परिषद् के सदस्यों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे। इसके विपरीत कार्यकारिणी के सदस्य विधान परिषद् के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। इसलिये उन्हें इस बात की कोई चिन्ता नहीं थी कि विधान परिषद् उनसे प्रसन्न है अथवा नाराज। अतः वे मन्त्रियों को सहयोग देने की चिन्ता ही नहीं करते थे। इस आपसी सहयोग से प्रशासन में अनेक कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती थी।

7. मंत्रियों की दुर्बल स्थिति : मंत्रियों की स्थिति वास्तव में बड़ी दुर्बल थी। उनके पास कोई वास्तविक अधिकार नहीं थे। वे राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी विभागों का संचालन करते थे, किन्तु उनके पास फण्ड नहीं थे। प्रान्तों में वित्त विभाग रक्षित विषय था। अतः यह हर मामले में रक्षित विभागों का पक्ष लेता था और हस्तांतरित विभागों के मार्ग में अनेक प्रकार के रोड़े अटकाता था, ताकि वह सिद्ध हो जाय कि भारतीय मंत्री अयोग्य है। वित्त विभाग का यह पूर्ण प्रयत्न रहता था कि हस्तांतरित विभागों की मांगो पर विचार करने से पूर्व रक्षित विभागों की सारी मांगे पूरी कर दी जाये। अतः हस्तांतरित विभागों के लिये धन का अभाव सदा बना रहता था। इसके अतिरिक्त गवर्नर हस्तांतरित विषयों में हस्तक्षेप कर सकता था तथा बिना कारण बताये किसी मन्त्री को पदच्युत कर सकता था। इसलिये अनेक मंत्री गवर्नर की चापलूसी करने लगे थें ऐसी स्थिति में दोहरे शासन की असफलता स्वाभाविक थी और इसकी काफी जिम्मेदारी गवर्नर की थी।

8. विधान परिषद् का दोषपूर्ण संगठन : प्रान्तों की विधान परिषदों का संगठन भी दोषपूर्ण था। इसमें लगभग 30 प्रतिशत सदस्य सरकारी अधिकारी अथवा सरकार द्वारा मनोनीत गैर सरकारी अधिकारी थे। जो सदस्य निर्वाचित थे, वे विभिन्न सम्प्रदायों तथा विशेषाधिकार प्राप्त तत्वों का प्रतिनिधित्व करते थे। मतदान का अधिकार भी सम्पत्ति आयकर तथा राजस्व सम्बन्धी योग्यता पर आधारित था। अतः विधान परिषद् के अधिकांश सदस्य प्रतिक्रियावादी थे। सभी सदस्य सरकार को हर प्रकार से प्रसन्न रखना चाहते थे, ताकि वे अपने–अपने सम्प्रदायों के लिये अधिक सुविधाएं प्राप्त कर सके।

9. बाहरी परिस्थितियो का उत्तरदायित्व : यद्यपि द्वैध शासन की असफलता का मुख्य कारण 1919 के अधिनियम के आन्तरिक दोष थे, तथापि बाहरी परिस्थितियो ने भी इसकी असफलता में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। जिस समय यह अधिनियम लागू किया गया, उस समय भारत मे इसके अनुकूल परिस्थितियां नहीं थी। प्रथम विश्व युद्ध के बाद अनेक राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना हो गयी थी। ब्रिटेन ने अपने अधिराज्यों के साथ समानता का व्यवहार करना शुरू कर दिया था और एशिया में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नई राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न हो चुकी थी। ऐसी परिस्थिति में भारतीयों को ब्रिटिश सरकार के ये सुधार अपर्याप्त और निराशाजनक प्रतीत हुए। देश में असहयोग आन्दोलन ने सद्भावना के स्थान पर कटुता, अविश्वास और असहयोग का वातावरण उत्पन्न कर दिया। इसलिये सुधारों की असफलता अवश्यंभावी हो गयी। स्वराज्य पार्टी ने विधान मण्डलों में प्रवेश किया, किन्तु वह विधान मण्डलों में इसलिए प्रविष्ट हुई थी कि सरकार के मार्ग में रोड़े अटाक कर द्वैध शासन की अव्यावहारिकता सिद्ध कर दी जाये। 1931 में तो भारतीयों का ध्यान इन सुधारों पर अमल करने की तरफ गया ही नहीं, क्योंकि अब कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना हो गया था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जो नीति अपनाई वह भी सर्वथा अनुचित ही थी कुछ वर्षों बाद जब मोण्टेग्यू, भारत सचिव के पद पर नहीं रहे, तब ब्रिटिश सरकार का दृष्टिकोण भारतीयों को कम से कम स्वशासन देना हो गया। अतः भारत सरकार ने विधान मण्डलों की इच्छाओं की अवहेलना प्रारम्भ कर दी। इसलिये सर तेजबहादुर सप्रू, सी.वाई. चिन्तामणि तथा पण्डित जगत नारायण ने अपने मंत्री पद से त्याग पत्र दे दिये। डॉ. जकरिया ने ठीक ही लिखा है कि, "सरकार के इस निर्णय ने कि सुधारो पर इस तरह अमल किया जाये, जिससे लोगों को कम से कम स्वशासन के अधिकार मिले और दूसरी तरफ स्वराज्य दल की इस नीति ने कि सरकार के संचालन में अधिक से अधिक रूकावटें लगाई जाये, 1919 के सुधारों के भाग्य का पहले से निर्णय कर दिया।" कूपलैड ने भी स्वीकार किया है कि द्वैध शासन असफल रहा, क्योंकि वह अपने रचयिताओं के मूल उद्देश्यों को पूरा न कर सका। इसने भारतीयों को उत्तरदायी शासन का सही प्रशिक्षण नहीं दिया।

द्वैध शासन की असफलताएं :

द्वैध शासन चाहे असफल रहा हो और 1937 में इसको समाप्त भी कर दिया गया (1935 का अधिनियम पारित होने के बाद), परन्तु यह सर्वथा लाभहीन रहा। इसके अन्तर्गत भारतीय मंत्रियों को स्वशासन का प्रशिक्षण मिल गया। उन्हें पता चल गया कि स्वशासन के मार्ग में कौनसी कठिनाइयां आ सकती है और उनका हल कैसे निकाला जा सकता है। भारतीय मंत्रियों को तथा जनता को स्वशासन के प्रति ब्रिटिश सरकार के रवैये का भी पता चल गया। हस्तांतरित विषयों में नौकरशाही के ऊपर मंत्रियों का जो नियन्त्रण स्थापित किया गया, इससे नौकरशाही को महसूस हुआ कि बदलती हुई परिस्थितियों में जनता की मांगों और हितों की और थोड़ा बहुत ध्यान अवश्य देना पड़ेगा। धीरे-धीरे आंशिक उत्तरदायी शासन के साथ-साथ सार्वजनिक सेवाओं का भारतीयकरण होने लगा। इस अधिनियम द्वारा प्रथम बार लोगों को मतदान का अधिकार मिला और प्रथम बार लोगों का मतदान का अधिकार मिला और प्रथम बार बड़े पैमाने पर चुनाव हुए। परिषदों में प्रथम बार संसदीय वातावरण बना। सरकी नौकरशाही ने पहली बार जनता द्वारा निर्वाचित मंत्रियों के आदेशों का पालन किया। मंत्रियों को उन सरकारी रहस्यों का पहली बार ज्ञान हुआ, जिन्हें अब तक पूर्णतया गुप्त रखा जाता था।

5.3 भारत सरकार अधिनियम, 1935 :

भारतीय मंत्रियों ने भी शिक्षा और स्थानीय स्वशासन के सम्बन्ध में काफी प्रशंसनीय कार्य किया। कई प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं का सुधार किया और इसके लिए उन्होंने कुछ आवश्यक कानून भी बनाये। मंत्रियों ने सामाजिक सुधार की तरफ भी ध्यान दिया। मद्रास में इस हेतु हिन्दू धार्मिक दान अधिनियम और बंगाल में बाल अधिनियम पास किये गये। उत्तर प्रदेश और मद्रास में तो पहले दो वर्ष तक काफी ठीक लगा। मंत्रिगण, विधान परिषद के प्रति अपने उत्तरदायित्वि को समझते रहे और अपने विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाने पर वे त्याग पत्र देने के लिए भी तैयार हो जाते थे। किन्तु वास्तविकता यह है कि जब तक मॉण्टेग्यू भारत सचिव रहे, तब तक द्वैध शासन सफलतापूर्वक कार्य करता रहा। वस्तुतः यह अधिनियिम स्वेच्छाचारिता और उत्तरदायत्वि के बीच एक पुल था। श्री के.बी. पुन्नियाह के अनुसार, "द्वैध शासन प्रणाली एक अनोखा प्रयोग थी। इसका मुख्य प्रयोजन और उद्देश्य भारतीयों को उत्तरदायी शासन की कला में प्रशिक्षण देना था। निसन्देह इसके रचयिता इस प्रणाली के दोषों और कमियों से परिचित थे। परन्तु वे सोचते थे कि तत्कालीन परिस्थितियों में इससे अच्छा कोई विकल्प नहीं है।" इस अधिनियम के परीक्षण के बाद ब्रिटिश सरकार, भारतीयों द्वारा उत्तरदायी शासन चलाने की क्षमता पर सन्देह नहीं कर सकती थी। इसलिये ब्रिटिश सरकार ने 1935 का अधिनियम पारित करके प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्तत प्रदान कर दी थी।

1919 के सुधारों ने भारतीयों की आशाओं पर पानी फेर दिया, क्योंकि इन सुधारों में 'सवतन्त्रता की गन्ध भी नहीं थी। कांग्रेस ने उन्हें अपर्याप्त, असन्तोषजनक और निराशापूर्ण घोषित किया। अतः भारतीय राष्ट्रवादी नेता ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध जद्दे जिहाद के लिये उठ खड़े हुए। फलस्वरूप 1919 के सुधारों की जांच करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1927 में साइमन कमीशन भेजा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साइमन कमीशन के सभी सदस्य अंग्रेज थे, अतः भारतीयों ने इसका तीव्र विरोध किया। फिर भी 1930 में इसने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। इस रिपोर्ट ने भारतयों की आकांक्षा को पूरा नहीं किया। भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने इस रिपोर्ट के विरूद्ध 'नेहरू रिपोर्ट' तैयार की, लेकिन ब्रिटिश सरकार ने इसकी उपेक्षा की। फलस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र हो उठा और भारतीयों के असन्तोष में दिन प्रति दिन वृद्धि होने लगी। ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए नन्दन में तीन गोलमेज सम्मेलन आयोजित किये। इन गोलमेज सम्मेलनों में हुए विचार विमर्श के आधार पर मार्च 1933 में ब्रिटिश सरकार ने भारत के भावी सुधारों का एक श्वेत–पत्र प्रकाशित किया। श्वेत–पत्र के प्रस्तावों पर विचार करने के लिए ब्रिटिश संसद ने दोनों के सदस्यों की एक संयुक्त समिति नियुक्त की। जिसकी रिपोर्ट 1934 में प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट तथा श्वेत–पत्र के प्रस्तावों के आधार पर 3 अगस्त, 1935 को ब्रिटिश संसद ने 1935 का भारत सरकार अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित थीं–

5.3.1. गृह सरकार के नियन्त्रण में कमी :

इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में स्वायत्तता तथा केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी सरकार स्थापित की गई। इसके लिए गृह सरकार के अधिकारों में कमी करना आवश्यक था। भारतीय नेता इंडिया कौसिल की कटु आलोचना करते थे। अतः इस अधि ानियम के अन्तर्गत इण्डिया कौसिल को समाप्त कर इसके स्थान पर भारत सचिव के परामर्शदाता नियुक्त किये गये, जिनकी संख्या अधिक से अधिक 6 तथा कम से कम 3 निर्धारित की गई। भारत सचिव इनका परामर्श मानने को बाध्य नहीं था। भारत सचिव का उन मामलों पर नियन्त्रण लगभग समाप्त कर दिया गया तजो हस्तांतरित विषय थे तथा जिनका शासन उत्तरदायी मंत्रियों को सौप दिया गया। जिन विषयों में गवर्नर जनरल तथा गवर्नर अपनी व्यक्तिगत इच्छा से कार्य करते थे, वहां भारत सचिव का नियन्त्रण पूर्ववत् बना रहा। व्यावहारिक रूप में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ा, क्योकि 1935 के अधिनियम का संघीय पक्ष कभी लागू ही नहीं हुआ तथा केन्द्र का प्रशासन 1919 के अधिनियम के अनुसार ही चलता रहा। केवल प्रान्तों में जहां पूर्ण स्वायत्तता दी गई, वहां उसके नियंत्रण में काफी कमी आ गई थी।

5.3.2. अखिल भारतीय संघ की स्थापना :

इस अधिनियम के अन्तर्गत एक अखिल भारतीय संघ स्थापित करने की व्यवस्था की गई, जिसमे 11 गवर्नर जनरल के प्रान्त, 6 चीफ कमिश्नर के प्रान्त और भारत की देशी रियासतो को सम्मिलित करने की व्यवस्था की गई। किसी भी संघ व्यवस्था के लिय तीन तत्वो की आवश्यकता होती है – लिखित संविधान की सर्वोच्चता, अधिकारों का विभाजन तथा न्यायपालिका की विशेष स्थिति। 1935 के अधिनियम मे इन तीनो तत्वों को स्वीकार कर संघ योजना तैयार की गई थी। संघ के दोनों सदनों में देशी राज्यों को उचित प्रतिनिधित्व दिया गया। संघीय विधानसभा में 375 सदस्यों में से 125 सदस्य तथा संघीय राज्य सभा में 260 सदस्यों में से 104 सदस्य देशी रियासतों के प्रतिनिधि होंगे। यह संघ दो शर्तें पूरी होने के पश्चात् शाही घोषणा द्वारा स्थापित किया जाना था –

1. संघीय संसद के दोनों सदन सम्राट को प्रार्थना करें कि संघ की स्थापना की जाये।

2. इतनी देशी रियासतें संघ में सम्मिलित होने की स्वीकृति दे कि उनकी जनसंख्या कुल रियासती जनसंख्या की आधी से अधिक हो तथा जो संघीय राज्य सभा में 52 स्थानों से अधिक स्थानों के अधिकारी हो।

इस अधिनियम के अनुसार ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के लिये संघ में शामिल होना अनिवार्य था, परन्तु देशी रियासतों के लिये ऐच्छिक था। प्रत्येक देशी रियासत का जो संघ में शामिल होना चाहती थी, एक प्रवेश–पत्र या स्वीकृति लेख पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे। इस स्वीकृति लेख में वह रियासत उन शर्तो का उल्लेख करती थी, जिनके आधार पर वह संघ में शामिल होने को तैयार है।इस स्वीकृति लेख में उन सब शक्तियों का वर्णन होता था, जो रियासत संघ को देना चाहती थी। संघ की समस्त इकाइयों को अपने आन्तरिक मामलों में स्वराज्य प्राप्त था। 1935 के अधिनियम में प्रस्तावित भारतीय संघ की स्थापना नहीं हो सकी, क्योंकि देशी रियासतों की निर्धारित संख्या ने संघ में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया। संघ की योजना में उन सभी तत्वों का अभाव था, जो एक संघ योजना के लिये आवश्यक होती है। प्रस्तावित संघ योजना में निरंकुशवाद और प्रजातन्त्रवाद का अनोखा समन्वय था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद, भारतीय राष्ट्रवाद और रियासती सामन्तवाद जैसे विरोधी तत्वों का समन्वय कभी सफल नहीं हो सकता था। एक और देशी रियासतों द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि होंगे तो दूसरी और जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे। निर्वाचित प्रतिनिधि, मनोनीत सदस्यों को प्रजातन्त्र के विकास में बाधक समझते है और देशी रियासतें अपने राज्य में प्रजातन्त्र के विकास से चिंतित रहती है। अतः संघीय योजना कार्यान्वित ही नहीं हो सकी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.3.3. केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना :

1919 के अधिनियम द्वारा प्रान्तों में जो आंशिक उत्तरदायित्व स्थापित किया गया था, उसे द्वैध शासन की संज्ञा दी गई थी। इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन का अन्त कर दिया गया, परन्तु इसको केन्द्र में लागू कर दिया गया। संघीय विषयों को दो भागों में बांटा गया – रक्षित विष्ज्ञय तथा हस्तांतरित विषय। रक्षित विषयों में प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, चर्च सम्बन्धी मामले और कबाइली क्षेत्र के मामले शामिल थे। इनका शासन गर्वनर जनरल अपनी इच्छानुसार चला सकता था। रक्षित विषयों पर विधान मण्डल का नियन्त्रण नाम मात्र भी नहीं था। इन विषयों के प्रशान में गवर्नर जनरल एक कार्यकारिणी परिषद् की सहायता लेता था, जिसमें सदस्यों की संख्या तीन से अधिक नहीं हो सकती थी। उनकी नियुक्त सम्राट करता था तथा वे गवर्नर जनरल के प्रति उत्तरदायी होते थें ये केन्द्रीय विधान मण्डलों के दोनों सदनों के पदेन सदस्य होते थे और उनकी बैठको में भाग लेते थे, किन्तु उनके प्रति उत्तरदायी नहीं थे।

हस्तांतरित विषयों का शासन चलाने के लिये एक मंत्री परिषद होती थी। जो संघीय विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी होती थी। मंत्रियों की नियुक्ति और पदमुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा होती थी। इनकी संख्या दस से अधिक नहीं हो सकती थी। मंत्रियों के लिये यह आवश्यक था कि वे संघीय विधान मण्डल के किसी भी सदन के सदस्य हो। यदि कोई ऐसा व्यक्ति मन्त्री पद पर नियुक्त किया जाता, जो किसी भी सदन का सदस्य न हो, तो उसे 6 महिने के अन्दर सदन का सदस्य बनना पड़ता था या त्याग पत्र देना पड़ता था। यद्यपि गवर्नर जनरल से यह आशा की जाती थी कि वह हस्तान्तरित विषयों में मंत्रियों की सलाह से शासन चलायेगा। किन्तु हस्तांतरित विषयों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल को विशेषाधिकार दिये गये थे। अतः उचित व्यवस्था के नाम पर वह मंत्रियों के कार्य में हस्तक्षेप कर सकता था। 1919 के द्वैध शासन के कटु अनुभव के बाद भी इसे केन्द्र में स्थापित करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों को कोई वास्तविक अधिकार या शक्ति नहीं देना चाहती थी। भारतीय मंत्रियों को जो थोड़ी बहुत शक्तियां दी गई, उन्हें भी गवर्नर जनरल के विशेषाधिकारों द्वारा समाप्त कर दिया गया।

5.3.4. संघीय विधान मण्डल की निर्बलता :

संघीय विधान मण्डल के दो सदन थे – संघीय विधान सभा और संघीय राज्य सभा। संघीय विधान सभी में कुल 375 सदस्य थे, जिनमें 125 स्थान देशी रियासतों के दिये गये। देशी रियासतों के प्रतिनिधि भारतीय नरेशों द्वारा मनोनीत किये जाते थे। प्रान्तों के प्रतिनिधियों का चुनाव सामान्य स्थानों, मुसलमानों व सिक्खों के सुरक्षित स्थानों पर अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा होता था। इसमें 82 स्थान मुसलमानों को प्राप्त थे। इस प्रकार देशी रियासतों के मनोनीत प्रतिनिधि (जो व्यवहार में ब्रिटिश रेजीडेन्ट द्वारा ही मनोतीत होते थें) और मुसलमान सदस्यों को मिलाकर सरकार बड़ी सरलता से अपना स्थायी बहुमत स्थापित कर सकती थी। इसी प्रकार संघीय राज्य सभा में कुल 260 सदस्य रखे गये, जिनमें 104 स्थान देशी रियासतों को दिये गये और 6 स्थानों पर नारियों, अल्पमतों तथा दलित वर्गों को प्रतिनिधित्व देने के लिए गवर्नर जनरल द्वारा मनोनित किये जाते थे। शेष 105 प्रतिनिधियों का चुनाव सम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली के आधार पर अप्रत्यक्ष रीति से होता था। अतः संघीय राज्य सभा में भी सरकार अपना बहुमत स्थापित कर सकती थी।

संघीय विधान मण्डल की शक्तियों को अत्यन्त ही सीमित कर उसे निर्बल बना दिया गया। विधान मण्डल 1935 के अधिनियम में संशोधन नहीं कर सकता था और न ब्रिटिश संसद के कानूनों के विरूद्ध कोई कानून पास कर सकता था। विधान मण्डल द्वारा पारित किसी भी विधेयक को गवर्नर जनरल अस्वीकृत कर सकता था और गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत विधेयक को इंग्लैण्ड की सरकार अस्वीकृत कर सकती थी। विधान मण्डल की वित्तीय शक्तियां भी अत्यन्त सीमित थी। बजट के दो भाग थे – 1. भारत के राजस्व से किया जाने वाला व्यय। 2. शेष व्यय। भारत के राजस्व से किया जानेवाला व्यय सम्पूर्ण बजट का लगभग 80 प्रतिशत होता था, जिस पर विधान मण्डल बहस तो कर सकता था, किन्तु उसमें कोई कटौती नहीं कर सकता था। कोई भी वित्तीय विधेयक गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति के बिना विधान मण्डल में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। विधान मण्डल के अधिवेशन के दौरान भी गवर्नर जनरल को कोई अध्यादेश जारी करने का अधिकार था तथा वह अधिनियम भी पास कर सकता था। गवर्नर जनरल के संकटकालीन अधिकार भी व्यापक थे। वह इस अधिनियम को स्थगित कर न्यायालय के अतिरिक्त समस्त अधिकार अपने हाथ में ले सकता था। वास्तव में विधान मण्डल को निर्बल बनाने की अंग्रेजों की चाल थी, क्योंकि वे भारतीयों को कोई वास्तविक शक्ति देना ही नहीं चाहते थे। प्रो. कीथ ने ठीक ही लिखा है कि इस अधिनियम द्वारा एक और तो भारतीयोयं को यह विश्वास दिलाने की चेष्टा की गई कि उन्हें सब कुछ दे दिया गया है और दूसरी और संरक्षणों और आरक्षण की व्यवस्था कर अंग्रेजों को यह विश्वास दिलाया गया कि उन्होंने कुछ भी नहीं खोया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.3.5. अधिकारों के विभाजन की नई पद्धति :

इस अधिनियम द्वारा विषयों का विभाजन किया गया। जो विषय संघीय सरकार से सम्बन्धित थे, उन्हें संघीय सूची में रखा गया, जिसमें 59 विषय थे। जो विषय प्रान्तीय हित के थे, उनें प्रान्तीय सूची में रखा गया, जिनमें 54 विषय थें जिन विषयों के सम्बन्ध में संघ और प्रान्त दोनों कानून बना सकते थे, उन्हें समवर्ती सूची में रखा गया, जिसमें 36 विषय थे। इस सूची के सम्बन्ध में यदि प्रान्त और केन्द्रीय विधान मण्डल के कानून में किसी प्रकार का विरोध उत्पन्न हो जाये तो केन्द्रीय विधान मण्डल के कानून को माना जायेगा। अवशिष्ट शक्तियों के बारे में यह व्यवस्था की गई कि गवर्नर जनरल अपनी इच्छा से केन्द्रीय विधान मण्डल अथवा प्रान्तीय विधान को इन विषयों पर कानून बनाने की शक्ति दे सकता था।

विश्व के किसी भी संविधान में अधिकारों के विभाजन की ऐसी पद्धति नहीं थी। विश्व के संघीय संविधानों में दो पद्धतियां प्रचलित थी। प्रथम तो यह कि संघ के अधिकार क्षेत्रों की स्पष्ट व्याख्या करके अवशिष्ट शक्तियां संघ की इकाइयों को सौप दी गई थीं दूसरी, संघ की इकाइयों के अधिकार क्षेत्र की स्पष्ट व्याख्या करके अवशिष्ट शक्तियां सघ को सौप दी गई थी। किन्तु इस अधिनियम में एक अनोखी पद्धति अपनाई गई। समवर्ती सूची के सम्बन्ध में संघ को उच्चता दे दी गई और अवशिष्ट शक्तियों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल को अधिकार दे दिया गया।

5.3.6. संघीय न्यायालय की स्थापना :

संघीय व्यवस्था के लिये एक स्वतन्त्र न्यायालय की आवश्यकता होती है इसका मुख्य कार्य संघ की विभिन्न इकाइयों के मध्य उठने वाले तथा संघ और किसी संवर्ग के मध्य उठने वाले विवादों पर निर्णय देना तथा अधिनियम की धाराओं पर मतभेद हा जाने पर धाराओं की सही व्याख्या करना होता है। 1935 के अधिनियम द्वारा एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई, जो न कार्यों को सम्पादित करे। यदि गवर्नर जनरल अपनी इच्छा से किसी भी कानूनी मामले पर इसकी राय मांगे, तो संघीय न्यायालय गवर्नर जनरल को कानूनी परामर्श भी दे सकता था। किन्तु संघीय न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय नहीं था तथा इसके द्वारा की गई अधिनियम की व्याख्या अन्तिम नहीं थी। इसके फैसलों के विरूद्ध निम्नलिखित मामलों में प्रिवी कौसिल की न्याय समिति को अपील की जा सकती थी –

1. ऐसे मामले, जिनमें 1935 के अधिनियम की व्याख्या अथवा इस अधिनियम के अधीन जारी किये गये सपरिषद आदेश की व्याख्या का प्रश्न उत्पन्न होता हो और संघीय न्यायालय द्वारा प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत निर्णय दिया गया हो।
2. ऐसे मामले, जिनमें किसी रियासत के प्रवेश पत्र द्वारा संघ सरकार को दी गई कानूनी और कार्यकारिणी शक्ति के विस्तार का प्रश्न उत्पन्न होता है।
3. संघ में शामिल होने वाली देशी रियासतों में संघीय विधान मण्डल द्वारा बनाये हुए कानूनों को लागू करने से जो मामले उत्पन्न हों।

उपर्युक्त मामलों को छोड़कर शेष मामलों में प्रिवी कौसिल की न्याय समिति की अपीलें केवल संघीय न्यायालय की आज्ञा से की जा सकती थी।

5.4 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – ब्रिटिश संसद में मार्लेमिन्टो विधेयक को कब पास किया?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – अखिल भारतीय संघ की स्थापना पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – 1935 के अधिनियम की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन किजिए?

उत्तर – .....

Kaki Vanka Bharati Institute (Deemed University) Looms

संवर्ग – 5
इकाई – 1
1920–47 तक भारतीय स्वतन्त्रता का संघर्ष

1.0 गांधी युग और राष्ट्रीय आन्दोलन
1.1 प्रथम सत्याग्रह आन्दोलन और अमृतसर हत्याकाण्ड
1.2 खिलाफत आन्दोलन
1.3 असहयोग आन्दोलन
1.3.1 स्वराज्य दल
1.3.2 साइमन कमीशन
1.3.3 नेहरू समिति और स्वराज्य की घोषणा
1.4 सविनय अवज्ञा आन्दोलन
1.4.1 साम्प्रदायिक निर्णय
1.4.2 1935 ई. का कानून और कौसिल प्रवेश
1.4.3 क्रिप्स मिशन
1.5 भारत छोड़ो आन्दोलन
1.5.1 वैवल योजना और शिमला सम्मेलन
1.5.2 कैबिनेट मिशन योजना
1.5.3 माउन्टबेटन योजना भारत का विभाजन और 1947 ई. का स्वतन्त्रता अधिनियम
1.6 बोध प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.0 गांधी युग और राष्ट्रीय आन्दोलन :

प्रथम विश्व युद्ध के बाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप तथा कार्यप्रणाली में आमूल परिवर्तन हुआ। 1918 तक कांग्रेस का नेतृत्व नरम दल के हाथ में रहा, अतः कांग्रेस के आन्दोलन का प्रभाव मध्यम शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रहा। केवल तिलक ऐसा नेता थे, जिन्होंने महाराष्ट्र में व्यापक जन आन्दोलन जागृत किया था। यद्यपि 1905 में बंगाल विभाजन के पश्चात् बंगाल में भी एक आन्दोलन हुआ था, किन्तु 1911 में बंगाल विभाजन रद्द करने के बाद वहां भी जन आन्दोलन समाप्त हो गया था। 1920 में कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथों में चला गया, जिन्होंने दो के राजनीतिक जीवन में एक नई जान डाल दी। उनके नेतृत्व में कांग्रेस के आन्दोलन ने एक नया रूप धारण किया, जिसे हम जन आन्दोनल कह सकते थें वास्तव में राष्ट्रीय स्वाधीनता का संघर्ष 1920 से ही आरम्भ हुआ था। इसलिए प्रथम विश्व युद्ध के बाद भारतीय राजनीति का इतिहास 'गांधी युग' के नाम से प्रसिद्ध है।

जनवरी, 1915 में भारत वापस आने से पूर्व महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को सुविधाएं दिलाने के लिए वहां सत्याग्रह आन्दोलन चलाया था, जिसमें उन्हें काफी सफलता प्राप्त हुई थी। भारत में उन्होने 1917 में सत्याग्रह करके भारतीयों को बलपूर्वक ब्रिटिश उपनिवेशों में मजदूरी करने के लिये ले जाने की पद्धति बन्द करवाई तथा चम्पारण मे नील की खेती में काम करने वाले मजदूरों को उनके मालिकों के अत्याचार से मुक्ति दिलवाई। अगले वर्ष खेड़ा में किसानों को उनके मालिको के अत्याचार से मुक्ति दिलवाई। अगले वर्ष खेड़ा में किसानों को लगान से छूट दिलवाने के लिये, कर नहीं आन्दोलन चलाया और सफलता प्राप्त की। इसी वर्ष अहमदाबाद मे मिल मजदूरो की मांगो के समर्थन मे आमरण अनशन करके, उनकी मांगें पूरी करवाई।

यद्यपि महात्मा गांधी के भारतीय राजनीति में सक्रिय भाग लेना आरम्भ कर दिया था, किन्तु गोखले के विचारों से प्रभावित होने के कारण संवैधानिक सुधारों और सरकार को सहयोग देने के पख मे थे। जिस समय वे भारत लौटे उन दिनो प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था, अतः उन्होंने इस अवसर पर भारत सरकार को पूर्ण सहयेाग दिया। सूद के अनुसार, गांधीजी ब्रिटिश साम्राज्य की नागरिकता में विश्वास करते थे और उसमें गर्व भी अनुभव करते थें इसीलिये उन्होंने भारत सरकार को रंगरूटों की भर्ती तथा घायल व्यक्तियों की देखभाल के लिये भी अपनी सेवाएं अर्पित की। प्रथम महायुद्ध मे की गई सेवाओं के कारण सरकार ने उन्हें पदक भी दिया।'' प्रथम महायुद्ध में की गई सेवाओं के कारण सरकार ने उन्हें पदक भी दिया।'' इस प्रकार गांधीजी ब्रिटिश सरकार के पूर्ण सहयोगी थें इसके बावजूद भी ब्रिटिश सरकार ने भारत को स्वराज्य नहीं दिया। इससे गांधीजी को निराशा हुई, लेकिन गांधीजी ने अपनी सहयोगी नीति को नहीं छोड़ा। 1919 के सुधार अधिनियम से सभी राष्ट्रवादी असन्तुष्ट थे, लेकिन गांधीजी परीक्षण के तोर पर उसे कार्यान्वित करने के पक्ष में थे। उन्होंने अपने पत्र 'यंग इण्डिया' के 31 दिसम्बर, 1919 के अंक में लोगों से अपील की कि इन सुधारों को सफल बनाने के लिये कार्य करे। किन्तु इसके बाद कुछ घटनाएं ऐसी घटित हुई, जिससे गांधीजी असहयोगी बन गये। प्रमुख घटनाएं ऐसी घटित हुई, जिससे गांधीजी असहयोगी बन गये।

1.1 प्रथम सत्याग्रह आन्दोलन और अमृतसर हत्याकाण्ड :

रोलेक्ट एक्ट की स्वीकृति ने महात्मा गांधी को भारतीय राजनीति में आगे ला दिया। अफ्रीका में आंशिक सफलता प्राप्त करने के पश्चात् महात्मा गांधी भारत आ गये थे और 1919 ई. में कांग्रेस के सदस्य बन गये। वे सत्य और अहिसा के पुजारी थे और उनका विश्वास था कि केवल इन्हीं दो सिद्धान्तों का पालन करते हुए वे स्वराज्य प्राप्त कर सकते थे। महात्मा गांधी ने पहिले ही घोषित कर दिया था कि अगर 'रौलट–प्रस्ताव' कानून लगया तो वे सत्याग्रह करेंगे। उसकी स्वीकृति से सम्पूर्ण भारत में असन्तोष फैल गया क्योंकि उससे भारतीयों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया गया था। 30 मार्च, 1919 ई. को भारत में सर्वत्र सत्याग्रह दिवस मनाया गया और यह सत्याग्रह 18 अप्रैल तक चलता रहा। पंजाब और दिल्ली के अतिरिक्त अन्य सभी स्थानों पर सत्याग्रह शान्तिपूर्ण रहा क्योंकि उसके अन्तर्गत केवल शान्तिपूर्वक जलूस निकालने और सार्वजनिक सभाएं करके रौलट–एक्ट के विरूद्ध असन्तोष प्रकट करने का ही कार्यक्रम रखा गया था। परन्तु दिल्ली और अमृतसर में कुछ हिंसात्मक कार्य भी हुए। यह आन्दोलन भारत के सम्पूर्ण भागों में फैल गया। इसकी लोक–प्रियता के कुछ कारण थे। युद्ध से भारत की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खराब हो गयी थी और कृषक, मजदूर तथा शिक्षित वर्ग आदि सभी शासन से असन्तुष्ट थें मुस्लिम वर्ग खिलाफत के प्रश्न को लेकर अंग्रेजों के विरूद्ध था और हिन्दुओं के साथ सहयोग करने को तत्पर था। भारतीय सैनिक, जो युद्ध के पश्चात् नौकरियों से अलग कर दिये गये थे, शासन से असन्तुष्ट थे। ऐसे वातावरण में महात्मा गांधी का यह प्रथम सत्याग्रह आन्दोलन बहुत लोकप्रिय हुआ।

दिल्ली और मुख्यतया अमृतसर की घटनाओं ने भारतीयों को और अधिक उत्तेजित कर दिया। भारत के विभिन्न भागों में उपद्रव हो गये और सरकार ने कठोरता से उनका दमन किया। अमृतसर में एक अत्यन्त भीषण घटना घटी। 13 अप्रैल, 1919 ई. को अमृतसर के जलियांवाला बाग में तीन दिन पहले पुलिस द्वारा चलायी गयी गोलियों के विरोध में एक सार्वजनिक सभा की गयी जिसमें करीब 20,000 पुरूष, स्त्री और बच्चे सम्मिलित हुए। उसी अवसर पर गवर्नर डायर सैनिकों को लेकर वहां पहुंच गया और उसने बाग के दरवाजे को रोक दिया तथा बिना किसी चेतावनी के उस समय तक मशीनगनों और बन्दूकों से गोलियां चलायी जब तक कि वे समाप्त न हो गयी और फिर वह मृतकों और घायलों को छोड़कर चला गया। सरकारी रिपोर्ट के आधार पर वहां 400 व्यक्ति मारे गये और करीब 2,000 व्यक्ति घायल हुए। वास्तविक संख्या तो उससे अधिक ही रही होगी। तत्पश्चात् पंजाब में सैनिक कानून लागू कर दिया गया और नपुसंकता का ऐसा शासन आरम्भ हुआ जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक स्थानों पर व्यक्तियों को कोड़े लगाये जाना, पेट के बल गलियों को पार कराना और सन्देह में ही व्यक्तियों को कारागार में बन्द किया जाना आरम्भ हुआ। सम्पूर्ण देश इन घटनाओं से आतंकित हो गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी सर की उपाधि को त्याग दिया और श्री शंकरराम नागर ने वायसराय की कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिया। सरकार ने अपने अधिकारियों का पक्ष लिया और अंग्रेज नागरिकों ने डायर को पुरस्कार स्वरूप धन अर्पित किया। 1919 ई. में अमृतसर कांग्रेस के अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया कि 1919 ई. के सुधारों में सरकार के साथ सहयोग किया जाय यद्यपि यह कार्ययप में सम्भव न हो सका।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.2 खिलाफत आन्दोलन :

इसी वर्ष 1919 ई. में भारतीय मुसलमानों ने खिलाफत आन्दोलन आरम्भ किया। युद्ध के पश्चात् टर्की के खलीफा के पद को अंग्रेजों द्वारा समाप्त किये जाने के कारण भारतीय मुसलमान उत्तेजित हो उठे थे। मौलाना मोहम्मदअली और मौलाना शौकतअली के नेतृत्व में भारत में एक आन्दोलन खिलाफत आन्दोलन आरम्भ किया गया और अंग्रेजों से मांग की गयी कि वे मुसलमानों के धार्मिक प्रधान के कार्यों या उसकी स्थिति में कोई हस्तक्षेप न करें। 31 अगस्त, 1919 ई. को खिलाफत दिवस मनाया गया। कांग्रेस ने भारतीय मुसलमानों की सहानुभूति प्राप्त करने हेतु खिलाफत आन्दोलन में सहयोग प्रदान किया। इस आन्दोलन का प्रभाव खलीफा की स्थिति पर तो न पड़ा परन्तु इससे कांग्रेस को असहयोग आन्दोलन में मुसलमानों का सहयोग प्राप्त हो गया।

1.3 असहयोग आन्दोलन :

महात्मा गांधी का यह निश्चय दिन–प्रति दिन दृढत्र होता जा रहा था कि अंग्रेजों के साथ सहयोग करना निरर्थक है। इस कारण उन्होंने कांग्रेस से सरकार के प्रति असहयोग करने की आज्ञा चाही। कांग्रेस के 1919 ई. के कलकत्ता अधिवेशन में और 1920 ई. के नागपुर अधिवेशन में महात्मा गांधी के इस प्रस्ताव को स्वीकृति प्राप्त हो गयी। इस कारण गांधी जी ने सरकार से मांग की कि –

1. सरकार अमृतसर हत्याकाण्ड के लिए खेद प्रकट करे
2. टर्की के प्रति अपने व्यवहार को नम्र करे, और
3. भारतीयों को सन्तुष्ट करने` लिए कोई नवीन योजना प्रस्तुत करे।

साथ ही उन्होंने चेतावनी दी कि यदि सरकार उपर्युक्त मांगों को स्वीकार नहीं करेगी तो वे असहयोग आन्दोलन को प्रारम्भ कर देंगे। सरकार ने इस और कोई ध्यान नहीं दिया और अगस्त 1920 ई. में असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर दिया। उसके अनुसार निम्नलिखित कार्यक्रम रखा गया –

1. सरकार उपाधियों और अवैतनिक पदों का त्याग।
2. सरकारी और अर्द्धसरकारी उत्सवों का बहिष्कार
3. सरकारी स्कूलों से बच्चों को हटाना और राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना
4. अंग्रेजी न्यायालयों का बहिष्कार और झगड़ो का राष्ट्रीय पंचायतों द्वारा निर्णय
5. सैनिकों, क्लर्कों और मजदूरों का मैसोपोटामिया में कार्य करने के लिए न जाना।
6. सरकार द्वारा आयोजित चुनावों में किसी भी रूप में भाग न लेना।
7. विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग।

सम्पूर्ण आन्दोलन अहिंसा पर आधारित था। असहयोग आन्दोलन अत्यन्त तीव्रता से सम्पूर्ण भारत में फैल गया। सरकार ने दमन नीति का आश्रय लिया और करीब 30,000 व्यक्ति जेल भेजे गये। नवीन सुधारों का श्रीगणेश करने हेतु भारत आये हुए इंग्लैण्ड के राजकुमार प्रिंस ऑफ वेल्स का स्वागत शान्त शहरों ने किया और कर्मचारियों की हड़ताल के कारण अनेक विदेशी होटल तक बन्द रहे। सरकार ने समझौते का प्रयत्न किया परन्तु गांधीजी ने यह जानकारी कि सरकार नागरिकों की इच्छा का सम्मान करने के लिए तत्पर नहीं है, समझौते को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने वायसराय लॉर्ड रीडिंग के पास 9 फरवरी, 1922 ई. को एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने चेतावनी दी कि यदि एक सप्ताह की अवधि में उनकी मांगों को स्वीकार न किया गया तो वह बारदोली से 'सविनय–अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ कर देंगे। लेकिन उसी अवसर पर गोरखपुर जिले में चौरीचोरा नामक स्थान पर एक दुर्घटना हो गयी। वहां कांग्रेस का एक जुलूस अनियिन्त्रत हो गया और भीड़ ने एक पुलिस थाने को आग लगा दी जिसके परिणाम स्वरूप एक थानेदार और 21 सिपाही मारे गये। इस हिंसात्मक कार्य से दुःखी होकर महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन को मुरन्त स्थगित कर दिया। इस प्रकार फरवरी 1922 ई. में यह आन्दोलन समाप्त हो गया।

यद्यपि यह आन्दोलन स्वराज्य प्राप्ति में सफल न हो सकता परन्तु इसने कांग्रेस के आन्दोलन को जन आन्दोलन का रूप प्रदान किया। इसी ने कांग्रेस के आन्दोलन को संवैधानिक पद्धति से अलग करके संघर्ष के पथ पर अग्रसर किया। इसी ने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सर्वप्रथम बिखरी हुई राष्ट्रीय आशाओं का एकीकरण किया और जन संगठन तथा जन शक्ति को स्पष्ट किया। इस दृष्टिकोण से यह आन्दोलन अत्यधिक सफल माना जा सकता है।

आन्दोलन की समाप्ति के तुरन्त पश्चात् गांधीजी को कैद कर लिया गया और उन्हें छह वर्ष का कारावास दिया गया यद्यपि बीमारी के कारण उन्हें दो वर्ष बाद ही छोड़ दिया गया।

1.3.1 स्वराज्य दल :

असहयोग आन्दोलन की समाप्त के पश्चात यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि 1919 ई. के सुधारो के अन्तर्गत कांग्रेस को व्यवस्थापिका सभाओं में स्थान प्राप्त करना चाहिए अथवा नहीं ? कांग्रेस का बहुत कौसिलों में प्रवेश करने के पक्ष में न था। उनका कहना था कि वे कौसिलों मे प्रवेश सरकार से सहयोग के लिए नहीं वरन् असहयोग को कौसिल तक ले जाने के लिए चाहते है। जब कांग्रेस इस तर्क से सहमत न हुई तो उन्होने नीवन दल स्वराज्य दल की स्थापना कर ली और चुनावों में भाग लिया जिसमें उन्हे आशातीत सफलता प्राप्त हुई। बाद में महात्मा गांधी और कांग्रेस भी स्वराज्य दल से सहमत हो गये और इस प्रकार स्वराज्य दल कांग्रेस का एक अन्तरंग अंग बन गया। स्वराज्य दल ने कौसिलों में पहुंचकर महत्वपूर्ण कार्य किया। पांच या छह वर्षो तक कौसिलों में उनका पूर्ण प्रभाव रहा यद्यपि 1925 ई. मे चित्तरंजन दास की मृत्यु से इस दल की शक्ति क्षीण हो गयी। उनका मुख्य कार्य 1919 ई. के सुधारों के खोखलेपन को स्पष्ट करना था और इस कार्य मे उन्होंने पर्याप्त सफलता पायी।

1.3.2 साइमन कमीशन :

1927 ई. में अंग्रेज सरकार ने नवीन सुधारों की रूपरेखा का निर्माण करने हेतु एक पूर्ण श्वेत सदस्यों के कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की जिसका अध्यक्ष सर जॉन साइमन था। सम्पूर्ण भारत में उसके विरूद्ध प्रदर्शन किये गये क्योंकि उस कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था जो भारतीयों के लिए अपमानसूचक था। लाला लाजपतराय, पं. जवहरलाल नेहरू, पं. गोविन्दबल्लभ पन्तको लाठियों की चोटें आयी। इसी अवसर पर सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में बारदोली में किसान सत्याग्रह आरम्भ किया गया, दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन किया गया और पं. मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में एक समिति की नियुक्ति की गयी जिसका कार्य भारत के लिए एक संविधान की रूपरेखा का निर्माण करना था।

1.3.3 नेहरू समिति और स्वराज्य की घोषणा :

नेहरू समिति ने जिसकी नियुक्ति दिल्ली के सर्वदलीय सम्मेलन ने की थी, एक संविधान का निर्माण किया। समिति की रिपोर्ट के आधार पर सुधारों की मांग बेकार समझी गयी और पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग रखना उपयुक्त माना गया। सरकार से 31 दिसम्बर, 1929 ई. तक उसे अस्वीकार किया तो कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना लक्ष्य घोषित कर देगी और उसकी प्राप्ति के लिए आन्दोलन आरम्भ करेगी। वायसराय लॉर्ड इरविन ने इसके उत्तर में 'गोलमेज–परिषद् का आयोजन करने और राजनीतिक बन्दियों को छोड़ देने का आश्वासन मात्र दिया जिससे कांग्रेस सन्तुष्ट न हुई। 31 दिसम्बर, 1929 ई. को लाहौर के अधिवेशन ने कांग्रेस में 'पूर्ण स्वराज्य' के प्रस्ताव को स्वीकार किया और प्रत्येक 26 जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस मनाया जाना निश्चित किया। 31 दिसम्बर 1929 ई की मध्य रात्रि को रावी के तट पर कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता का झण्डा फहरा दिया।

कांग्रेस लाहौर अधिवेशन के पश्चात् घटनाक्रम और अधिक तीव्र हो गया। महात्मा गांधी ने वायसराय को पत्र लिखकर ग्यारह मांगे प्रस्तुत की जिन्हें स्वीकार न किये जाने पर उन्होंने 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' को आरम्भ करने का निश्चय किया।

1.4 सविनय अवज्ञा आन्दोलन :

गांधी जी ने वायसराय के सम्मुख निम्नलिखित मांगे प्रस्तुत की –

1. मादक वस्तुओं का निषेध किया जाये।
2. रूपये और स्टलिंग के अनुपात में परिवर्तित किया जाये।
3. लगान में कमी की जाये।
4. नमक कर समाप्त किया जाये।
5. सैनिक व्यय में कमी की जाये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. शासन के व्यय में कमी की जाये।

7. विदेशी कपड़े पर कर लगाया जाये।

8. पोस्टल रिजर्वेशन प्रस्ताव को स्वीकार किया जाये।

9. सभी राजनीतिक बन्दियों को छोड़ा जाये।,

10. गुप्तचर विभाग समाप्त कर दिया जाये अथवा उस पर नागरिकों का अधिकार हो।

11. स्वरक्षा के लिए हथियारों के लाइसेन्स दिये जाये।

वायसराय ने उपर्युक्त मांगों पर कोई विचार नहीं किया। इस कारण कांग्रेस कार्यकारिणी ने गांधीजी को 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' आरम्भ करने की आज्ञा प्रदान कर दी। 12 मार्च, 1930 ई. को गांधीजी ने अपने 70 समर्थकों के साथ दांडी के लिए पदयात्रा आरम्भ कर दी और चौबीस दिन में 200 मील की यात्रा करके अप्रेल में डांडी पहुचकर स्वयं नमक तैयार किया। गांधीजी, सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू आदि सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गये। विभिन्न स्थानों पर भारतीयों ने नमक कर तो तोड़ा, विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार किया और शराब की दुकाने बन्दी करायी। सरकार का भी दमन चक्र आरम्भ हो गया और इस अवसर पर करीब एक लाख व्यक्तियों को कारावास दिया गया। इस आन्दोलन में खान अब्दुल गफ्फारखां और उनके समर्थक 'खुदाई खिदमतगार' सबसे आगे रहे। इस अवसर पर श्री तेजबहादुर सप्रू और डा. जयकर ने समझौता कराने का प्रयत्न किया लेकिन यह सम्भव न हो सका क्योंकि सरकार बिना किसी शर्त के आन्दोलन की समाप्ति चाहती थी जिसके लिए कांग्रेस तैयार न हुई।

सरकार ने ब्रिटेन में 12 दिसम्बर, 1930 को प्रथम गोलमेज परिषद का आयोजन किया लेकिन इसमें कंग्रेस ने भाग नहीं लिया। भारत में उसी प्रकार आन्दोलन और दमन चक्र चलता रहा। परन्तु 1931 ई. के आरम्भ में सरकार ने अचानक राजनीतिक कैदियों को छोड़ना आरम्भ कर दिया। इस बार फिर श्री तेजबहादुर सप्रू डॉ. जयकर और भोपाल के नवाब ने समझोते का प्रयत्न किया और 1931 ई. में निम्नलिखित शर्तों पर गांधी इर्विन समझौता हो गया। सरकार ने वायदा किया –

1. हिंसात्मक अपराधियों के अतिरिक्त सभी राजनीतिक कैदी छोड़ दिये जायेंगें।

2. अपहरण की हुई सम्पति वापस कर दी जायेगी।

3. समुद्र तट की एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत नमक तैयार करने की अनुमति दी जायेगी।

4. मदिरा, अफीम और विदेशी वस्तुओं की दुकानों के सम्मुख शान्तिपूर्ण विरोध प्रदर्शन की आज्ञा दी जायेगी।

कांग्रेस की और से गांधीजी ने आश्वासन दिया कि –

1. आन्दोलन स्थगित कर दिया जायेगा।

2. पुलिस के अत्याचारों की जाच की मांग को छोड़ दिया जायेगा, और

3. कांग्रेस द्वितीय गोलमेज परिषद् में भाग लेगी।

उपर्युक्त समझौते के लगभग एक वर्ष तक सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित रहा। परन्तु समझौते की सद्भावना उसी समय नष्ट हो गयी जबकि सरकार ने सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरू को पंजाब विधान सभा में बम फेकने के अपराध में फांसी की सजा दे दी। कुछ समय पश्चात् लार्ड इर्विन के स्थान पर लॉर्ड वैलिंगटन वायसराय बन कर भारत आया। 1931 ई. में गांधीजी कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि बन कर द्वितीय गोलमेज परिषद् में भग लेनेके लिए लन्दन गये परन्तु वहां से निराश वापस आये। इस बीच की भारत में दमनचक्र फिर से आरम्भ हो गया था। कांग्रेस ने पुनः आन्दोलन आरम्भ कर दिया। उस अवसर पर शासन ने पहले से भी अधिक कठोरता से कार्य किया। 1932 ई. में लन्दन में तृतीय गोलमेज परिषद हुई परन्तु इसमें कांग्रेस ने भाग नही लिया। भारत में कांग्रेस अवैध घोषित कर दी गयी।

1.4.1 साम्प्रदायिक निर्णय :

उसी अवसर पर ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मैकडॉनल ने साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा की। जिसके द्वारा अस्पृश्य जातियों को हिन्दुओं से पृथक मानकर उन्हें पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया। गांधीजी ने इसके विरोध में आमरण अनशन कर दियां अन्त में डॉ. अम्बेडकर तथा अन्य हिन्दू नेताओं के प्रयत्नों से सवर्ण हिन्दुओं और अछतों में एक समझौता किया गया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जिसके द्वारा व्यवस्थापिका सभाओं में अछूतों के स्थान हिन्दुओं के अन्तर्गत ही सुरक्षित रखे गये। सरकार से इस समझौते को स्वीकार कर लेने की मांग की गयीं सरकार द्वारा इसे स्वीकार कर लिये जाने पर गांधीजी ने अनशन तोड़ दिया। कुछ समय पश्चात् उन्होंने फिर आत्मशुद्धि के लिए इक्कीस दिन का उपवास किया। स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण वह जेल से छोड़ दिये गये और सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी छह माह के लिए स्थगित कर दिया गया। लेकिन बाद में आन्दोलन पुनः आरम्भ हो गया और 1934 ई. तक चलता रहा।

1.4.2 1935 ई. का कानून और कौंसिल प्रवेश :

1935 ई. के कानून के द्वारा भारत में प्रान्तीय स्वशासन की स्थापना की गयी और सरकार के इस आश्वासन पर कि गवर्नर दिन प्रति दिन के शासन में भारतीय मंत्रियों के कार्यों में हस्तक्षेप न करेंगे, कांग्रेस ने चुनावों में भाग लिया। छह प्रान्तों में कांग्रेस ने मंत्रिमण्डलों का निर्माण किया। असम, सिन्ध और उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त में भी उसने सयुंक्त मंत्रिमण्डलों का निर्माण किया। 1939 ई. में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया और अंग्रेज सरकार ने बिना भारतीय मंत्रियों की सलाह लिये ब्रिटेन की और से भारत को युद्ध में सम्मिलित कर दिया। कांग्रेस ने सरकार से युद्ध के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण की मांग की। वायसराय लिनलिथगों ने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया और केवल एक घोषणा की कि अंग्रेजी सरकार युद्ध के पश्चात् सभी राजनीतिक दलों और देशी नरेशों के परामर्श से 1935 ई. के कानून में परिवर्तन करने का प्रयत्न करेगी। इससे असन्तुष्ट होकर 1939 ई. के अन्तिम दिनो में सम्पूर्ण कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने अपने पदों से त्याग पत्र दे दिया।

युद्ध के समय कांग्रेस ने पुनः अंग्रेज सरकार के साथ सहयोग करने का वायदा किया परन्तु सरकार की और से यह आश्वासन मांगा कि युद्ध के तत्काल बाद भारत को स्वतन्त्र कर दिया जायेगा और उस अवसर पर केन्द्र पर एक अस्थाई सरकार की स्थापना कर दी जायेगी। लेकिन कांग्रेस की यह मांग ठुकरा दी गयी। ब्रिटेन के प्रधान मंत्री चर्चिल ने घोषणा की कि वह अंग्रेजी साम्राज्य को छिन्न–भिन्न करने के लिए ब्रिटेन का प्रधान मंत्री नहीं बना है परन्तु 8 अगस्त, 1940 ई. को वायसराय लिनलिथगों ने एक घोषणा की जिसमें निम्नलिखित बातें थी –

1. अल्पसंख्यकों को आश्वासन दिया गया कि अंग्रेज किसी ऐसी संस्था को शासन नहीं सौपेंगे जिसके विपक्ष में सुदृढ़ मत होगा।
2. संविधान बनाने के भारतीयों के अधिकार को स्वीकार कर लिया गया।
3. युद्ध के बाद एक संविधान सभा के निर्माण का आश्वासन दिया
4. एक युद्ध सलाहकार समिति स्थापित की जायेगी जिसमें भारती भी हो
5. भारतीय उक्त आधारों पर सरकार को युद्ध में सहयोग देंगे।

कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया और व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। आचार्य विनोबा भावे प्रथम सत्याग्रही थे जिन्हे तुरन्त गिरफ्तार कर लिया गया। इसके पश्चात् सत्याग्रह फैलता गया। केवल उत्तर प्रदेश में ही 20,000 व्यक्ति गिरफ्तार किये गये परन्तु गांधीजी उस समय तक जेल से बाहर थे।

1940 ई. में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की मांग प्रस्तुत की। 1909 ई. में पृथक प्रतिनिधित्वप्राप्त करके, कांग्रेस की नम्रता और अंग्रेज का प्रोत्साहन प्राप्त करके मुस्लिम साम्प्रदायिकता तीव्रतर होती जा रही थी। नवाब सलीमउलला ने 1906 ई. में लीग की स्थापना की थी और ब्रिटेन में शिक्षा प्राप्त करने हेतु गये हुए एक साधारण विद्यार्थी के मस्तिष्क में उत्पन्न पाकिस्तान की मांग धीरे–धीरे मुस्लिम लीग का प्रमुख लक्ष्य बन गयी थी। जापान के युद्ध में सम्मिलित हो जाने से 1941 ई. में युद्ध में अंग्रेजों की स्थिति खराब हो गयी। सरकार ने अचानक सत्याग्रहियों को छोड़ना आरम्भ कर दिया और कांग्रेस ने उस अवसर पर सत्याग्रह स्थगित कर दिया। उस अवसर पर सर स्टेफर्ड क्रिप्स को समझौता करने के लिए भारत भेजा गया।

1.4.3 क्रिप्स मिशन :

अप्रैल 1942 ई. में क्रिप्स मिशन भारत आया और भरतीय नेताओं से बातचीत करके उसने समझौता के लिए निम्न लिखित प्रस्ताव रखा –

1. ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जाये। भारत को राष्ट्रमण्डल से पृथक होने का भी अधिकार दिया जाये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. युद्ध के पश्चात्राज्य के विधान मण्डलों के निम्न सदनों द्वारा अनुपातिक प्रणाली के आधर पर एक संविधान सभा का निर्माण किया जाये उस सभा में देशी नरेश भी अपने प्रतिनिधि भेजें। ऐसी सविधान सभा द्वारा बना हुआ संविधान अंग्रेज सरकार द्वारा निम्न शर्तों पर स्वीकार किया जायेगा।

1. तो प्रान्त उसे स्वीकार न करे, वह अपनी यथावत् स्थिति में रह सकता था।
2. संविधान सभा और ब्रिटिश सरकार में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा हेतु एक सन्धि की जायेगी।
3. जब तक संविधान सभा का निर्माण न हो, अंग्रेज ही भारत की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होंगे।

कुछ विद्वानों के अनुसार क्रिप्स योजना अगस्त योजना से अधिक प्रगतिशील थी। परन्तु गांधीजी के शब्दों में, ''यह एक आगे की तरीख का चैक था जिसका बैंक नष्ट होने वाला था। द्वितीय, वह अप्रत्यक्ष रूप से पाकिस्तान की मांग को स्वीकार करती थी और तृतीय भारत की रक्षा की व्यवस्था कांग्रेस के अनुकूल न थी। इस कारण कांग्रेस ने उसे अस्वीकृत कर दिया। मुस्लिम लीग ने भी उसे मानने से इन्कार कर दिया क्योंकि उसमें पाकिस्तान की मांग को स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया गया था। क्रिप्स मिशन के असफल हो जाने पर भारतीयों में यह भावना उत्पन्न हुई कि इस प्रकार तो अंग्रेज उन्हें जापानियों से अपने देश को बचाने का भी अवसर प्रदान नही करेंगे। इस कारण भारत में संघर्ष की भावना पुनः बलवती हो उठी।

1.5 भारत छोड़ो आन्दोलन :

8 अगस्त, 1942 ई. को कांग्रेस कार्य समिति ने भारत छोड़ा प्रस्ताव स्वीकार किया। कांग्रेस का आश्य उसके लिए आन्दोलन प्रारम्भ करने का था। परन्तु उससे पूर्व ही अंग्रेजी सरकार का दमन चक्र आरम्भ हो गया। 9 अगस्त को प्रातः काल समस्त नेता गिरफ्तार कर लिये गये। इसके विरोध में सम्पूर्ण भारत जाग उठा और अनेक स्थानों पर जलूस, हड़ताल और सार्वजनिक सभाओं के अतिरिक्त हिंसात्मक कार्यवाहियां भी हुई। विद्यार्थियों ने उस आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया। अनेक स्थानों पर रेल की पटरियां उखाड़ी गयी, तार और टेलीफोन के तार काटे गये और सरकारी अधिकारियों पर आक्रमण किये गये। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार 250 स्टेशन और 500 डाक पर जलाये गये। बिहार, बलिया, बस्ती, सूरत, आदि स्थानों पर अंग्रेजी शासन प्रायः समाप्त हो गया। गांधीजी ने इन हिंसात्मक कार्यों का कोई उत्तरदायत्वि नहीं लिया तथा अपनी व कांग्रेस की स्थिति को स्पष्ट करने हेतु इक्कीस दिन का उपवास किया। साम्यवादियों ने उस अवसर पर कांग्रेस से 'भारत छोड़ो आन्दोलन को वापस लेने की मांग की। उन्होंने मुस्लिम लीग के साथ समझौता करके पाकिस्तान की मांग को भी स्वीकार कर लेने की मांग की। बिना किसी नेतृत्व के वह आन्दोलन तीन सप्ताह तक चलता रहा। सरकारी अधिकारियों ने उस आन्दोलन के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी अत्याचार किये। उस आन्दोलन ने भारतीयों के उत्साह और साहस को प्रकट किया।

1.5.1 वैवल योजना और शिमला सम्मेलन :

1943 ई. में लॉर्ड वैवेल वायसराय बनकर भारत आया। 1944 ई. में गांधीजी और उसके पश्चात् अन्य भारतीय भी जेल छोड़ दिये गये। उस अवसर पर युद्ध में अंग्रेजों की स्थिति अधिक खराब हो गयी थी। सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द सेना कोहिमा तक आ पहुंची थी। उसी अवसर पर चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने मुस्लिम लीग से निम्नलिखित शर्तों पर समझौता करने की सलाह दी –

1. लीग कांग्रेस के साथ मिलकर पूर्ण स्वराज्य की मांग करे।

2. स्वतन्त्रता के पश्चात् मुस्लिम बहुत प्रान्तों में जनमत लिया जाये कि क्या वे पृथक राज्य चाहते है? और यदि वे ऐसा चाहते हो तो रक्षा और विदेश वार्ता के सम्बन्ध में पारस्परिक समझौता करके उनकी मांग को स्वीकार कर लिया जाये।

गांधीजी ने उपर्युक्त शर्तों पर मोहम्मदअली जिन्ना से बातचीत की परन्तु उसने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। इसके एक वर्ष के पश्चात् 1945 ई. में वैवेल योजना प्रस्तुत की गयी और शिमला में सभी भारतीय नेताओं का एक सम्मेलन किया गया। एक अस्थाई भारतीय मंत्रीमण्डल की स्थापना का प्रस्ताव किया गया जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बराबर सदस्य हो और विदेश वार्ता को छोड़कर सभी विषय उसके अधिकार में हो। परन्तु यह योजना भी असफल हुई क्योंकि मि. जिन्ना ने मौलाना अबुलकलाम आजाद को कांग्रेस के सदस्य के रूप में मंत्रीमण्डल में सम्मिलित किया जाना स्वीकार नहीं किया।

शिमला सम्मेलन की असफलता के पश्चात् सम्पूर्ण भारत में चुनाव हुए। कांग्रेस ने सभी गैर मुस्लिम सीटों पर और लीग ने सभी मुस्लिम सीटों पर अधिकार किया। केवल उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त में मुस्लिम सीटें भी कांग्रेस को प्राप्त हुई। कांग्रेस और लीग ने अपने–अपने बहुमत वाले प्रान्तों में मंत्रीमण्डलों का निर्माण किया। लॉर्ड वैवेल ने घोषणा की कि चुनावों के पश्चात्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संविधान सभा का निर्माण किया जायेगा और केन्द्रीय कार्यकारणि का संगठन दुबारा होगा। उसी अवसर पर कैबिनेट मिशन के भारत आने की घोषणा की गयी।

1.5.2 कैबिनेट मिशन योजना :

1946 ई. में कैबिनेट मिशन भारत आया। उस समय युद्ध के पश्चात् बिलटेन में मि. एटली के नेतृत्व में मजदूर दल की सरकार स्थापित हो चुकी थी। भारत में जल सेना पर अंग्रेजों का विश्वास नहीं रह गया था और स्वयं ब्रिटेन भी संसार की तीसरी शक्ति रह गया था। इस कारण भारत में समझौते की आवश्यकता अधिक अनुभव की गयी। कैबिनेट–मिशन ने विभिन्न राजनीतिक दलों से वार्तालाप करके निम्न सुझाव रखे –

1. भारत में एक संघ राज्य की स्थापना की जाये जिसमें देशी नरेशों के राज्य भी सम्मिलित हो। यातायात विदेश वार्ता और रक्षा उसके हाथों में हो।
2. साम्प्रदायिक प्रश्न उस सम्प्रदाय के सदस्यों द्वारा ही निर्धारित किये जाये।
3. शेष सभी शक्तियां प्रान्तों के हाथों में हो।
4. प्रान्त में आपस में मिलकर गुट बना सकते थे।
5. योजना में संविधान सभा के सदस्यों की संख्या और निर्वाचन का तरीका भी बताया गया था। संविधान सभा को तीन भागों में विभक्त किया गया था।
6. एक अन्तरिम सरकार का गठन किया जाये जिसमें सभी राजनीतिक दलों के सदस्य हो।
7. संविधान सभा ब्रिटेन से एक सन्धि करेगी।

उपर्युक्त योजना की विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा विभिन्न प्रकार से आलोचना की गयी परन्तु अन्त में सभी राजनीतिक दलो ने उसे स्वीकार कर लिया। इस आधार पर संविधानसभा के चुनाव हुए। कांग्रेस ने 199 सीटें और मुस्लिम लीग ने 73 सीटें प्राप्त की। कांग्रेस ने इस सभा को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न माना जबकि मुस्लिम लीग ने उसे ऐसा मानने से इंकार कर दिया।

1.5.3 माउन्टबेटन योजना भारत का विभाजन और 1947 ई. का स्वतन्त्रता अधिनियम :

इस प्रकार जब संविधान सभा के संगठन के प्रश्न को लेकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग में मतभेद हो गया। 1946 ई. के मध्य में इस योजना को अस्वीकृत कर दिया। सितम्बर 1946 ई. में कांग्रेस ने सरकार का निर्माण किया परन्तु आरम्भ में लीग ने उसमें भाग नहीं लिया। मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही का सहारा लिया जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण भारत में साम्प्रदायिक दंगे हुए। पंजाब, त्रिपुरा, बिहार आदि स्थानों पर भंयकर अत्याचार हुए। अक्टुबर में मुस्लिम लीग के भी पांच सदस्य अन्तरिम सरकार में सम्मिलित कर लिये गये। परन्तु मुस्लिम लीग का रूख सहयोग पूर्ण न था और उसने संविधान सभा के कार्य में भाग लेने से इंकार कर दिया। ऐसी स्थिति में भारत के विभिन्न भागों में साम्प्रदायिक दंगे होते रहे। गांधीजी ने अंग्रेजों को तुरन्त भारत छोड़ने की राय दी। अंग्रेजी सरकार इससे पूर्व फरवरी 1947 ई. में यह घोषणा कर चुकी थी कि अंग्रेज जून 1948 ई. से पूर्व ही भारत को अवश्य छोड़ देंगे। उस अवसर पर लॉर्ड वैवेल के स्थान पर लॉर्ड माउण्टबेटन को वायसराय बनाकर भारत भेजा गया और उसकी योजना तथा राय से कांग्रेस भारत विभाजन के लिए तैयार हो गयी, यद्यपि गांधीजी इससे सहमत न थे। इस आधार पर अंग्रेजी संसद ने भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947 ई. पारित किया जिसके आधार पर भारत और पाकिस्तान दो स्वतन्त्र राज्यों का निर्माण हुआ।

1.6 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – जलियावाला बाग हत्याकाण्ड कब हुआ?

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में सविनय अवज्ञा आन्दोलन की भूमिका को समझाइयें ?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 2

साम्प्रदायिक राजनीति का विकास तथा भारत का विभाजन

2.0 सम्प्रदायवाद का अथ
2.1 मुस्लिम जनता में साम्राज्यवाद के विकास के कारर्ण
2.2 तीसरे दशक में साम्प्रदायिक राजनीति का विकास
2.3 गोलमेज सम्मेलनों में मुस्लिम सम्प्रदायवाद का कार्य भाग
2.4 पाकिस्तान का विचार
2.4.1 लीग का राष्ट्रीयता विरोधी रूख
2.4.2 मुस्लिम नेताओं द्वारा भारत को एक राष्ट्र न मानना
2.4.3 पाकिस्तान के विचार का आविर्भाव
2.4.4 पाकिस्तान के विचार का जन्मदाता
2.4.5 राजगोपालाचारी प्रस्ताव में पाकिस्तान
2.4.6 युद्ध के पश्चात् लीग का कार्यभाग
2.4.7 स्वतन्त्रता की ओर
2.4.8 माण्टबेटन योजना में पाकिस्तान की स्वीकारोक्ति
2.5 बोध प्रश्न

2.0 सम्प्रदायवाद का अर्थ :

भारत मे राष्ट्रवाद का अग्रदूत शिक्षित वर्ग रहा था। परन्तु मुसलमानों मे मध्यम वर्ग का उदय बहुत देर में हुआ। अंग्रेजों के आने के पूर्व देश के शासन की बागडोर मुसलमानों के हाथो मे थी। अतः मुसलमान अपने आपको इस देश का शासक समझते थे तथा हिन्दुओ को शासित। देश पर अंग्रेजो के शासन के स्थापित होने के बाद भी उन्हें अपनी सोई हुई स्थिति का आभास नहीं हुआ। इसलिए इस नये सन्दर्भ में भी उन्होने जीवन यापन के पुराने तरीको को कायम रखा। उनमे से बहुत थोड़े लोगों ने पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण की, उनमें से बहुत थोड़ लोगो ने व्यापार और उद्योग के माध्यम से अपनी जीविका को उपार्जित करने का प्रयत्न किया। जबकि हिन्दू आधुनिक शिक्षा प्राप्त करके सरकारी नौरियो में स्थान प्राप्त कर रहे थे, अन्यथा व्यापार के द्वारा अपने जीवन स्तर को ऊपर उठा रहे थे, अथवा कानुन और डाक्टरी जैसे व्यवसायों को अपनाकर सामाजिक प्रतिष्ठा को ऊँपर उठा रहे थे, अथवा कानून और डाक्टरी जैसे व्यवसायों को अपनाकर सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त कर रहे थे, मुसलमान अपनी पुरानी दुनिया मे ही मस्त थे। उनके वे ही पुराने मकतब थे जिनमें उनके पूर्वजों ने कभी शिक्षा ग्रहण की थी। उनके वे ही पुराने तौर तरीके थे जिनका आधुनिक जीवन के साथ दूर का भी रिश्ता नहीं था। फलस्वरूप जब उनमें भी मध्यम वर्ग का उदय होना आरम्भ हुआ तो उन्होने देखा कि सरकारी सेवाओ में, तथा व्यापार एवं उद्योग में हिन्दू पहले से ही प्रतिष्ठित पदों पर आसीन है। इस नवोदित मुस्लिम मध यम वर्ग के लिए यह अनिवार्य था कि वह इन सभी क्षेत्रों में अपना स्थान बनाने के लिए उन लोगों से संघर्ष एक ही वर्ग के भीतर पाये जाने वले अन्तर्विरोधों की अभिव्यक्ति मात्र था। परन्तु निहित स्वार्थों ने इस संघर्ष को साम्प्रदायिक रूप प्रदान किया और कहा कि यह वास्तव में हिन्दू मुसलमान का संघर्ष है। यहां यह उल्लेखनीय है कि मुसलमानों में जो उच्च वर्ग था उसका सम्बन्ध मुख्यतः पुराने नवाबो और जमीदारो के साथ था और यह बात भी किसी से छिपी हुई नहीं है कि अन्य देशो की ही भांति भारत में भी समान वर्ग की सहानुभूति राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ नहीं थी, अपितु उन लोगों के साथ थी जो राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध करते थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मुस्लिम सामन्त भी इसका अपवाद नहीं हो सकते थे। अतः इन्होंने अपने निहित उन्होंने अपने आपको ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग में संगठित किया। मुसलमानों में सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देने में अंग्रेजों की फूट डालो और शासन करो की नीति की मुख्य भूमिका रही। इस नीति की कार्यान्विति साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों की स्थापना, साम्प्रदायिक आधार पर भरित मतदान की प्रणाली तथा साम्राज्यवादी हितों के लिए प्रान्तों के पुनर्गठन के द्वारा हुई। ऊँपर कहा जा चुका है मुसलमानों को राष्ट्रीय नेताओं की कुछ भूलों, विशेषतः उग्र राष्ट्रवाद में हिन्दू पुनरूत्थानवाद पर बल के दिये जाने का भी योगदान रहा।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि सम्प्रदायवाद मुख्यतः ब्रिटिश शासन में भारत के सामाजिक अर्थतन्त्र के विशिष्ट विकास का आत्मज था। इस काल में विभिन्न सम्प्रदायों का जो आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास हुआ था उसमें बड़ी असमानता थी। इस असमानता के कारण जो खाई उत्पन्न हुई थी, उसे अंग्रेजों की फुट डालने की नीति तथा विभिन्न सम्प्रदायों में पाये जाने वाले निहित स्वार्थों ने और भी अधिक चौड़ा कर दिया।

2.1 मुस्लिम जनता में साम्राज्यवाद के विकास के कारण :

जहां तक भारतीय मुसलमानों में राजनीतिक जागृति का प्रश्न है – खिलाफत आन्दोलन की इस सम्बन्ध में जो भूमिका रही थी वह निस्सन्देह महत्वपूर्ण थी। इस आन्दोलन में यह बात भली प्रकार स्पष्ट हो गई कि राजनीतिक चेतना अब केवल मुस्लिम सामन्त परिवारों तक ही सीमित नहीं है, अपितु उसकी जड़े उन वर्गों तक भी पहुचने लगी है जिन्हें हम 'सर्वसाधारण' की श्रेणी में स्थान देते है। यह सही है कि खिलाफत का प्रश्न एक धार्मिक प्रश्न था परन्तु स्वराज्य के संघर्ष के साथ सम्बद्ध होने के कारण मुस्लिम जनता की राष्ट्रीय चेतना को अगे बढ़ाने में निस्सन्देह उसका योगदान महत्वपूर्ण था। इस आन्दोलन ने अपनीसमस्त दुर्बलताओं के बावजूद हिन्दू और मुसलमानों के बीच भाई चारे और एकता की भावनाओ को विकसित किया था।

चौरीचौरा की घटना के उपरान्त जब गांधी जी ने आन्दोलन को वापस ले लिया तो उसे समूचे देश में निराशा की भावना व्याप्त हो गई। मुसलमान इस व्यापक निराशा के प्रभाव से बचे रहते ऐसा सम्भव नहीं था। खिलाफत आन्दोलन के समय में जिस हिन्दू मुस्लिम एकता की नींव डाली गयी थी, वह छिन्न–भिन्न होने लगी। राष्ट्रीय एकता ने साम्प्रदायिक वैमनस्य तथा तनावों के लिए स्थान रिक्त कर दिया। आन्दोलन के वापस लिये जाने के बाद समूचे देश में साम्प्रदायिक दंगों का एक प्रकार से तांता सा लग गया, इन दंगों में कोहाट का दंगा सबसे अधिक गम्भीर था। लेनिन ने लिखा है 'क्रांति प्रतिक्रान्ति को संगठित करती है। खिलाफत आन्दोलन ने राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने वाली क्रान्तिकारी शक्तियों को संगठित किया था। आन्दोलन के वापस होने के कारण ये शक्तियां निष्क्रिय हो गई। फलतः प्रतिक्रान्ति की शक्तियों को सिर उठाने का अवसर प्राप्त हो गया और उन्होंने साम्प्रदायिक दंगों के माध्यम से अपने जघन्य रूप को व्यक्त किया।

जवाहर लाल नेहरू ने 1922 ई. के बाद के युग में पायी जाने वाली राजनीतिक निराशा की व्याख्या अपनी आत्मकथा में इन शब्दों में की है, 'यह सम्भव है कि एक महान् आन्दोलन के आकस्मिक रूप से वापिस लिये जाने के कारण देश में ये दुखद घटनाये घटी हो। निरर्थक हिंसा की और प्रवृत्ति को रोक दिया गया था, परन्तु इस हिंसा को जिसे अभी तक दबा कर रखा गया था अब अपने आप को व्यक्त करने का अवसर प्राप्त हो गया और आने वाले वर्षों में साम्प्रदायिक समस्या को जटिल बनाने में उसका बहुत बड़ा हाथ रहा।

नेहरू जी ने इस काम में पायी जाने वाली साम्प्रदायिक समस्या की जो व्याख्या की है, वह यथार्थ में अधूरी है। सम्भवतः इस समस्या को उग्र रूप प्रदान करने में दो कारणों ने निर्णयक भूमिका अदा की। प्रथम, राष्ट्रीय चेतना मुसलिम जनता में, विशेषतः उसके पिछड़े हुए वर्गों में कभी, भी गहरी जड़े नहीं पा सकी। द्वितीय खिलाफत आन्दोलन के समापन के उपरान्त राष्ट्रीय नेता देश के समक्ष कोई ऐसा समीचीन कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं कर सका जो मुस्लिम जनता को अपनी और आकर्षित कर सकता। बताने की आवश्यकता नहीं कि गांधी जी ने जिस रचनात्मक कार्यक्रम को तैयार किया था, वह मूलतः अराजनीतिक था। उदाहरण के लिए, नशाबन्दी, सूत कातना, छुआछूत का खात्मा, ये सब कार्यक्रम रचनात्मक तो थे, परन्तु इनमें मुस्लिम जनता की रूचि नहीं थी। इस पृष्ठभूमि में यदि साम्प्रदायिक प्रचार मुस्लिम जनता को अपनी और आकर्षित करसका तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राष्ट्रवाद की मुख्य धारा में मुसलमानों के अलगाव का एक और कारण भी था। यद्यपि राष्ट्रीय कांग्रेस एक असाम्प्रदायिक एवं धर्म–निरपेक्ष संगठन था तथापि उसके प्रमुख नेता बहुधा राष्ट्रीय आन्दोलन को विकसित करने के लिए हिन्दू धर्म की शब्दावली को प्रयुक्त करते थ। उदाहरण के लिए, गांधी जी ने अपने स्वराज्य के लक्ष्य की व्याख्या रामराज्य के रूप में की थी। स्पष्टतः इस व्याख्या से मुसलमानों में उत्साह का संचार नहीं हो सकता था।

2.2 तीसरे दशक मे साम्प्रदायिक राजनीति का विकास :

तीसरे दशक में ब्रिटिश सरकार ने भारत की राजनीतिक समस्या का अध्ययन करने के लिए साइमन कमीशन की नियुक्ति की। इस कमीशन में चूंकि सभी अंग्रेज थे, इसलिए देश मे सामान्यतः इसके विरूद्ध प्रतिक्रिया हुई। इस समय मुस्लिम लीग पर मुसलमान रूढ़िवादियों का ही सर्वाधिक प्रभाव था, परन्तु वह भी इस व्यापक प्रतिक्रिया से अपने आपको पूर्णतः मुक्त नहीं रख सकी। साइमन कमीशन के प्रति क्या रूख अपनाया जाये, इस प्रश्न पर मुस्लिम लीग में फूट पड़ गयी। उसके एक भाग ने सर मौहम्मद शफी की अध्यक्षता में लाहौर में एक अधिवेशन किया जिसमे सर फीरोज खां नून, सर मौहम्मद इकबाल भी शामिल थे और उसमें एक प्रस्ताव पारित करके साइमन कमीशन का स्वागत किया। दूसरे भाग ने जिन्ना ककी अध्यक्षता में कलकत्ते में अपना अधिवेशन किया जिसमें आयोग का बहिष्कार करने का निर्णय लिया गया।

इसी काल में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने नेहिरू रिपोर्ट को प्रकाशित किया जिसमें भारत के प्रस्तावित संविधान की बुनियादी विशेषताओं को वर्णन था। कमेटी ने अल्संख्यकों के लिए स्थानो की सुरक्षा के साथ संयुक्त मताधिकार की व्यवस्था किये जाने की संस्तुति की थी। उसने सिन्ध, बलूचिस्तान तथा उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त को अन्य प्रान्तों के समकक्ष बनाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया था। उसने पृथक, निर्वाचन प्रणाली की आलोचना की थी तथा साथ ही में उसने कहा था कि केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधान मण्डलों में मुसलमानों के लिए उनकी कुल जनसंख्या के अनुपात में स्थान सुरक्षित रखे जाने चाहिए। मुस्लिम लीग ने जिन्ना के माध्यम से कोंग्रेस के पास एक सुझाव भेजा कि नेहरू रिपोर्ट में यह बात जोड़ी जाये कि केन्द्रीय विधान मण्डल में मुस्लिम स्थान कुल सदस्य संख्या का एक तिहाई होगा। कांग्रेस ने इस सुझाव को नामंजूर कर दिया और इस प्रकार 1916 इमें स्थापित कांग्रेस लीग समझौते का हमेशा के लिए अन्त हो गया।

1929 में जिन्ना ने अपने 14 सूत्री कार्यक्रम को प्रस्तुत किया। इन प्रस्तावों को नेहरू रिपोर्ट के मुकाबले में निर्मित किया गया था और इनमें देश में एक संघीय राज्य की स्थापना की बात कही गई थी, जिनमें अवशिष्ट शक्तियां प्रान्तों में निहित होनी थी। केन्द्रीय विधानमण्डल में एक तिहाई मुस्लिम प्रतिनिधित्व की मांग की गई थी, पृथक निर्वाचन प्रणाली को जारी रखने का प्रस्ताव था तथा केन्द्र एवं प्रान्त दोनों की सरकारों में एक तिहाई मुस्लिम मंत्रियों के शामिल किये जाने की मांग थी।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में मुस्लिम साम्प्रदायिकता इस प्रकार भड़काने लगी थी। थोड़े से राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता अवश्य कांग्रेस के साथ रहे और धर्मनिरपेक्ष नीति को मानते रहे, परन्तु अधिकांश मुस्लिम नेता यद्यपि विभिन्न संगठनों में विभक्त थे, तथापि उनका दृष्टिकोण साम्प्रदायिकतावादी बना रहा। इन संगठनों में से सीमा प्रान्त के खुदाई खिदमतगारों के आतिरिक्त शेष सब कांग्रेस विरोधी रहे और कांग्रेस को हिन्दू संस्था मानते रहे। इसलिए उन्होंने कांग्रेस के कार्यक्रम के प्रति उदासीनता तथा प्रतिक्रियावादिता दर्शाना आरम्भ कर दिया। 1929 के कांग्रेस अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट को अस्वीकार कर दिया गया था क्योंकि उसका उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य था, जबकि कांग्रेस का युवा वर्ग पण्डित नेहरू के नेतृत्व में पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग पर आ गया। इसके बाद जब गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया तो मुस्लिम संगठन इसे हिंसात्मक कहने लगे और उन्होंने इसका बहिष्कार किया। ये सभी साम्प्रदायिक आधार पर संवेधानिक मांगे करने लगे। इन्होंने सर सैयद अहमद खां की ब्रिटिश राजभक्ति की नीति का भी बहिष्कार कर दिया और अब वे ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की फूट डालों और शासक करों की नति के शिकार बनकर भारतीय स्वतन्त्रता की तुरन्त प्राप्ति के मार्ग में सबसे भयानक तक सिद्ध होने लगे।

2.3 गोलमेज सम्मेलनों में मुस्लिम सम्प्रदायवाद का कार्य भाग :

गोलमेज सम्मेलनों में भारतीय मुसलमान संगठनों का कार्यभाग पूर्णतया पृथकवादी बना रहा, जिसमें साम्प्रदायिक आधार पर पृथक निर्वाचन प्रणाली तथा मुस्लिम अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व को महत्त्व प्रदान करने की मांगों ने सम्मेलन के आयोजन कों को भावी शासन सुधारों में अपने मन की करने में अच्छी सफलता प्राप्त कर ली। परिणामस्वरूप प्रधानमंत्री ने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कम्पूनल एवार्ड की घोषणा की जिसने साम्प्रदायिकता के विष को भारतीय राजनीति के अन्दर और अधिक तीव्र बनाया। जब 1935 के भारतीय शासन अधिनियम को ब्रिटिश संसद ने पास कर दिया तो भारत की जनता की सबसे बड़ी प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस के तीव्र विरोध के बावजूद साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का और अधिक प्रसार किया गया। इस अधिनियिम के अन्तर्गत जब निर्वाचन हुए तो कांग्रेस व लीग दोनों ने पूरे जोर से निर्वाचनों में संघर्ष किया। परन्तु लीग को अपनी आशा के अनुकूल सफलता नहीं मिली। केवल सिन्ध प्रान्त में उसे सर्वाधिक बहुमत मिला। बंगाल में भी वह फॉरवर्ड ब्लाक के सहचार से मंत्रिमण्डल बना सकने की स्थिति में आ गई।पंजाब में उसे विभिन्न दलों संयुक्त मोर्चे के समक्ष विरोधियों के रूप में रहना पड़ा। केन्द्र में भी लीग को अधिक सफलता नहीं मिली। जब 6 प्रान्तों में, जहां कांग्रेस पूर्ण बहुमत में थी, कांग्रेस ने पद ग्रहण नहीं किया तो इनमें से कुछ प्रान्तों में लीग ने अपनी सरकार बनाने की पेशकश की। परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। कांग्रेस द्वारा पद ग्रहण स्वीकार कर लेने पर लीग ने सरकार की शक्ति प्राप्त करने का धोखा नहीं छोड़ा। संयुक्त प्रान्त में लोगों के आवेदन पर कांग्रेस मुस्लिम लीग को इस शर्त पर मंत्रीमण्डल में कुछ स्थान देने को राजी हो गई कि लीग विधानसभा में पृथक दल के रूप में नहीं बैठेगी और उपनिर्वाचनों में पृथक से अपने उमीदवार खड़ा नहीं करेगी। कांग्रेस के लिए जो पूर्ण बहुमत में थी, लीग के हित में इतना त्याग करना बहुत अधिक था, परन्तु लीग का रवैया इतना हठी था कि मानो वह बस कुछ प्राप्त कर लेना चाहती थी, चाहे उसका कोई औचित्य हो या नहीं ऐसी स्थिति में लीग की यह मनोकामना सफल नहीं हुई। यद्यपि 1935 के एक्ट के अनुसार कांग्रेस त्रिमण्डलों वाले प्रान्तों में सरकारों ने अत्यन्त सराहनीय कार्य करने सहान् लोकप्रियता प्राप्त की तथापि मुस्लिम सम्प्रदायवादियों को काग्रेस की इस लोकप्रियता से बड़ी ईर्ष्या होने लगी। अत: मुस्लिम लीग ने अब इन सरकारों को हिन्दू अधिनायकवाद कहकर, बदनाम करने का प्रचार आरम्भ किया। यह स्थिति अधिक दिन नहीं रह सकी, क्योंकि सितम्बर 1939 में द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार की युद्ध नीति से कांग्रेस रूष्ट हो गई और अक्टूबर 1939 में कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिये। मुस्लिम लीग अब भी यह प्रयास करने लगी कि उसे इन प्रान्तों में सरकार बनाने में सफलता मिल जाये। परन्तु यह सम्भव नहीं था। इसके पश्चात् कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन की अवधि में लीग ने कांग्रेस की नीति का विरोध जारी रखा।

2.4 पाकिस्तान का विचार :

2.4.1 लीग का राष्ट्रीयता विरोधी रूख :

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत बीसवीं सदी के आरम्भ से लेकर पूरे चार दशकों तक मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने जिस हठ धर्मिता का रूख अपनाकर आन्दोलन के मार्ग मे रोड़े अटकाने का का सतत प्रयास किया, उसके पीछे स्पष्टत: ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का हाथ था। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम पृथकतावाद को यथासम्भव बढ़ावा दिया। मुस्लिम साम्प्रदायिक संगठनों के इन कार्यकलापों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हिन्दू महासभा के द्वारा भी उनका विरोध करना कोई अस्वाभविक बात नहीं थी। परन्तु साम्प्रदायिकतावादी मुसलमान चाहते थे कि वे तो सब कुछ कर तथा कह सकते है, क्योंकि वे अल्पसंख्यक है, साथ ही उनकी गतिविधियों को तत्कालीन सरकार का समर्थन भी प्राप्त रहता था। परन्तु वे यह सहन नहीं कर सकते थे कि हिन्दू महासभा सदृश कोई अन्य संगठन बने जो कि मुस्लिम सम्प्रदायवाद का विरोध करे। कांग्रेस आरम्भ से अन्त तक धर्मनिरपेक्षता की नीति पर चलती रही। यहां तक कि अनेक बड़े–बडे राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता इसके सदस्य बने रहे। कुछ राष्ट्रवादी मुसलमान नेता भी जो कभी कांग्रेस के समर्थक थे, धीरे–धीरे सम्प्रदायवाद के चक्कर में फंसने लगे थे। यहां तक कि लीग के प्रमुख नेता जिन्ना भी बहुत लम्बी अवधि तक राष्ट्रवादी ही थे।

2.4.2 मुस्लिम नेताओं द्वारा भारत को एक राष्ट्र न मानना :

जब मुस्लिम सम्प्रदायवादी प्रवृतियों के विकास ने 1916 के कांग्रेस लीग समझौते का अन्त कर दिया तो यह निश्चित हो गया था कि अब हिन्दू मुस्लिम एकता के द्वारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयास असम्भव है। बीसवीं सदी के तीसरे दाक की अन्तिम अवधि तक अनेक मुस्लिम नेता सार्वजनिक रूप से यह दलील देने लग गये थे कि भारत एक राष्ट्र नहीं है। अत: विभिन्न राष्ट्रीयताओं को एक स्वतन्त्र राज्य के अन्तर्गत बलात् रखना उचित नहीं हे। यद्यपि इस धारणा के पीछे वास्तविक तथ्यों का अभाव था, क्योंकि भारत में मुस्लिम समुदाय के व्यक्ति समूचे देश में फैले हए थे और धार्मिक विश्वास के अतिरिक्त जीवन के विविध क्षेत्रों में उनकी समस्याएं अन्य भारतीयों से घुलमिल गई थी। यह मानना भी युक्तिसंगत नहीं है कि धर्म ही एकमात्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राष्ट्रीयता का निर्धारक तत्व होता है। इस दृष्टि से मुसलमानों की पृथक राष्ट्रयीयता की कल्पना केवल साम्प्रदायिक की द्योतक थी। इसके आधार पर पृथक राष्ट्रीय राज्य की धारणा भारत सदृश्या देश में कौरी भ्रान्ति थी। फिर भी मुस्लिम सम्प्रदायवादी नेता मुस्लिम राष्ट्रीयता के अधार पर पृथक स्वतन्त्र राज्य का स्वप्न देखने लग गये थे। उनका यही स्वप्न पाकिस्तान के रूप में साकार हुआ।

2.4.3 पाकिस्तान के विचार का आविर्भाव :

पाकिस्तान का विचार सर्वप्रथम सर मुहम्मद इकबाल के मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ था। 1930 के लीग के अधिवेशन में भाषण करते हुए उन्होंने कहा था कि यदि भारत के मुसलमान मुस्लिम भारत के निर्माण की मांग करते है तो ऐसी मांग पूर्णतया न्यासंगत है। पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिन्ध तथा बिलोचिस्तान को मिलकर एक राज्य के रूप में देखना मेरी कामना है। दस वर्ष पश्चात् 1940 के लीग के अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास किया गया वह पाकिस्तान प्रस्ताव ही कहलाया। इसमें कहा गया था कि किसी भी सांविधानिक योजना के सफल कार्यान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि भारत के उत्तर पश्चिमी तथा पूर्वी भाग का एक प्रभुत्व सम्पन्न स्वतन्त्र राज्य बनाया जाये। इस प्रकार स्पष्ट हो गया था कि लीग का उद्देश्य भारत के मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों का एक स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य बनाना था।

2.4.4 पाकिस्तान के विचार का जन्मदाता :

परन्तु पाकिस्तान का विचार सर्वप्रथम 1940 में केम्ब्रिज के चार मुस्लिम विद्यार्थियों के द्वारा प्रकाशित किया गया। इनका नेता चौ. रहमत अली था। चार पृष्ठ की एक पुस्तिका में चौ. रहमत अली की अध्यक्षता में यह विचार व्यक्त किया गया था कि भारत में रहने वाले मुसलमानों के हित में पंजाब, उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्त काश्मीर, सिन्ध और बिलोचिस्तान में रहने वाले तीन करोड़ मुसलमानों की इच्छा एक पृथक् संघ में संगठित स्वतन्त्र पाकिस्तान के निर्माण की है बाद में रहमत अली ने पाकिस्तान को जो नक्शा खींचा उसको तीन नाम दिये –

1. पाकिस्तान जो पूर्वोक्त उत्तर पश्चिमी भारत के प्रदेशों का बनता,
2. बंग ए इस्लाम, अर्थात् बंगाल तथा असम के मुस्लिम बहुल क्षेत्र, और
3. उस्मानिस्तान अर्थात हैदराबाद के निजाम की रियासत।

उसका यह स्पप्नभारत में इस्लामिस्तान स्थापित करने का था। यद्यपि मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्दर पृथक मुस्लिम राष्ट्र के सिद्धान्तों को पर्याप्त उग्र बना दिया था तथापित अब भी मुस्लिम रवैये में एकता तथा स्पष्टता का अभाव था। युद्धकाल में सांविधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए विविध प्रस्ताव रखे जाने लगे। लीग काअसहयोगपूर्ण रूख बना रहा। ऐसा लगता था कि लीग सब कुछ चाहती है या कुछ नहीं चाहती है। स्वयं भारतीय मुस्लिम नेतृत्व समूचे रूप में किसी एक मांग का समर्थक नहीं था। लीग किसी भी ऐसे प्रस्ताव को मानने को तैयार नहीं थी जिसमें उसे अपनी मांगों के रत्ती भर अंश का उत्सर्ग करना पड़े। ऐसी स्थित में ब्रिटिश सरकार जो भी प्रस्ताव रखती उसमें लीग के विरोध के कारण किसी भी पक्ष का राजी होना असम्भव था।

2.4.5 राजगोपालाचारी प्रस्ताव में पाकिस्तान :

इन सब परिस्थितियों के आधार पर अप्रैल 1942 में चक्रवर्ती राजगोपलाचारी ने यह राय व्यक्त की कि भारत की राजनीतिक समस्या का समाधान बिना पाकिस्तान की मांग को पूरा किये सम्भव नहीं है, क्योंकि मुस्लिम साम्प्रदायिकता की हठधर्मिता बिना पाकिस्तान का पृथक राज्य स्वीकार किये किसी भी सांविधान योजना को सफल नहीं होने देगी। उनकी इस ध ारणा का कांग्रेस महासभा ने विरोध किया, अतः राजाजी ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया और अपने प्रस्ताव के सम्बन्ध में जनमत प्राप्त करने का विचार करने लगे। 1942 के क्रिप्स प्रस्ताव की असफलता पर गांधी जी ने कांग्रेस का नेतृत्व करते हुए जब 'भारत छोडो' आन्दोलन प्रारम्भ किया तो मुस्लिम लीग ने इस आन्दोलन की भर्त्सना की। 1944 में राजाजी जेल में गाधी जी से मिले और उनके समक्ष अपना प्रस्ताव तथा देश विभाजन की रूपरेखा प्रस्तुत की। गांधी जी ने राजाजी के प्रस्ताव को युक्तिसंगत मान लिया। युद्ध की समाप्ति पर जब पुनः भारत के सांविधानिक गतिरोध को समाप्त करने के प्रयास ब्रिटिशसरकार ने प्रारम्भ किये तो मुस्लिम लीग का रवैया पूर्ववत् बना रहा। इस अवधि में लीग को अपनी पाकिस्तान की मांग तीव्र करने में अधिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रोत्साहन मिलने लग गया था, विशेष रूप से जब लीग ने देखा कि कांग्रेस के वयोवृद्ध नेता राजाजी तक इसका समर्थन करने लगे थे।

2.4.6 यृद्ध के पश्चात् लीग का कार्यभाग :

1945 के शिमला सम्मेलन तथा केबिनेट मिशन योजना को पुनः लीग ने नाटकीय ढंग से असफल कर देने में पूर्ण ताकत लगायी। 1946 का वर्ष मुस्लिम साम्प्रदायिकता का चरमोत्कर्ष था। ब्रिटिश सरकार ने अन्तिम रूप से भारतवासियों को देश की राजनीतिक सत्ता हस्तान्तरित करने का संकल्प करने केबिनेट मिशन भारत भेजा था। इस मिशन की राय में पाकिस्तान का निर्माण अव्यवहार्य था। परन्तु लीग ने प्रत्यक्ष कार्यवाही तथा साम्प्रदायिक दंगे छेड़ने का मार्ग अपनाकर देश का वातावरण गन्दा कर दिया। केबिनेट मिशन योजना ने संविधान निर्माता सभा तथा अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार की स्थापना का संकल्प कर लिया था। जब अन्तरिम सरकार की स्थापना पण्डित नेहरू के नेतृत्व में की गयी तो लीग प्रारम्भ में इसमें शामिल नहीं हुई। बाद में जब वह शामिल हुई तो उसने अन्तरिम सरकार की सफल कार्यविधि के मार्ग में बाधक बनने का कार्यभार सम्पन्न करना प्रारम्भ किया। दिसम्बर 1946 में जब संविधान सभा का उद्घाटन हुआ तो लीग ने इनका बहिष्कार किया और कभी भी उसमें शामिल नहीं हुई।

2.4.7 स्वतन्त्रता की ओर :

भारत की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त नाजुक हो रही है। साम्प्रदायिक तनाव का जैसा वातावरण यहां बन चुका था, उससे निबटना ब्रिटिश सरकार के लिए कठिन था। ऐसी स्थिति में फरवरी 1947 में ब्रिटिश सरकार ने भारत से सत्ता छोड़ने की तिथि 15 अगस्त 1947 घोषित कर दी। लॉर्ड माउण्टबेटन को गवर्नर जनरल बनाकर भारत भेजा गया और उन्हें यह कार्य दिया गया कि वे ब्रिटिश सरकार के इरादे को अन्तिम रूप दें।

2.4.8 माण्टबेटन योजना में पाकिस्तान की स्वीकारोक्ति :

लार्ड माउण्टबेटन ने भारत में आते ही अपनी योजना बनायी और उसमें अन्तिम रूप से भारत विभाजन को स्वीकार कर लिया गया। अब कांग्रेस के समक्ष भारत विभाजन स्वीकार करके देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रह गया था। ब्रिटिश संसद ने भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम पारित करने में कोई देरी नहीं लगायी। परन्तु मुस्लिम सम्प्रदायवाद का यहीं पर अन्त नहीं हुआ। लीग द्वारा 1946 में प्रारम्भ की गयी प्रत्यक्ष कार्यवाही नेसाम्प्रदायिक दंगों को भड़काया था। जब माउण्टबेटन योजना तथा स्वतन्त्रता अधिनियम के अनुसार पंजाब तथा बंगाल में सीमा आयोग ने कार्य प्रारम्भ किया और जनसंख्या का भारत पाकिस्तान में आवागमन शुरू होने लगा तो पाकिस्तान वाले क्षेत्र से गैर मुस्लिम जनता को निकालने में जो अन्याय अत्याचार किये गये उन्होंने मोन मानवता को दानवता में परिणत कर दिया था। इसकी प्रतिक्रिया दूसरे क्षेत्र में होना भी कोइ अस्वाभाकि बात नहीं थी। इस प्रकार 14 अगस्त 1947 को मुस्लिम सम्प्रदायवाद ने एक स्वतन्त्र राष्ट्र पाकिस्तान को जन्म दिया।

2.5 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – राजगोपालाचार्य प्रस्ताव कब पारित हुआ ?

(अ) 1943 ई. (ब) 1942 ई.

(स) 1945 ई. (द) 1944 ई.

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – 'सम्प्रदायवाद का अर्थ स्पष्ट किजिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – भारत मे साम्प्रदायिक राजनीतिक के विकास को विवेचित किजिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 3
भारतीय संविधान की विशेषताएँ

3.0 भूमिका
3.1 संविधान की प्रस्तावना : प्रभुता और एकता
3.2 संविधान की अन्य विशेषताए
3.2.1. लिखित और विश्व का सबसे बड़ा संविधान
3.2.2. इकहरी नागरिकता
3.2.3. समाजवादी राज्य
3.2.4. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना
3.2.5. आत्मा से एकात्मक, स्वरूप से संघात्मक शासन की स्थापना
3.2.6. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार
3.2.7. संसदीय सरकार की स्थापना
3.2.8. मौलिक अधिकार
3.2.9. अलपसंख्यकों के हितों की रक्षा
3.2.10. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्त
3.2.11. स्वतन्त्र एवं सर्वोच्च न्यायपालिका
3.2.12. धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना
3.2.13. संविधान कुछ लचीला और कुछ कठोर
3.2.14 संविधान पर व्यापक विदेशी प्रभाव
3.2.15. नागरिकों के मूल कर्तव्य
3.2.16. सामाजिक समानता की स्थापना
3.2.17. एक राष्ट्रभाषा की व्यवस्था
3.2.18. विश्व शांति का समर्थक
3.3 बोध प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.0 भूमिका :

संविधान निर्मात्री सभा ने 2 वर्ष 11 महीने और 18 दिन का लम्बा समय लगाकर भारत के नवीन संविधान का निर्माण किया। संविधान सभा के 11 अधिवेशन हुए और 165 दिन उसकी बैटक हुई। 26 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा के अध्यक्ष के हसताक्षर के बाद भारत का संविधान पूरा हो गया। संविधान की कुछ धाराओं को 26 नवम्बर को क्रियान्वित कर दिया गया, लेकिन सम्पूर्ण सविधान को 26 जनवरी, 1950 को देश के एक कोने से दूसरे कोने तक सब प्रदेशों और सब जातियों पर लागू कर दिया गया।

भारत का संविधान समाजवाद, पूंजीवाद या साम्यवाद जैसे किसी विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दर्शन का अनुगामी नहीं है। उसके मूल सिद्धान्त किन्हीं वादों और सूत्रों की सीमाओं से बंधे न होकर, व्यावाहरिक है। संविधान में किसी वर्गविशेष के हितों का संरक्षण नहीं किया गया है वरन् वह साधारण जनहित की भावना से अनुप्राणित है। उसमें मानवाधिकारों की सुरक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संविधान के मूल सिद्धान्त उसकी प्रस्तावना में, मूल अधिकारों

सम्बन्धी तीसरे भाग में और राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों सम्बन्धी चौथे भाग में विशेष रूप से उल्लिखित है।

3.1 संविधान की प्रस्तावना : प्रभुता और एकता :

संविधान की प्रस्तावना में समूचे संविधान का सार है। इसमें जिन तथ्यों सिद्धान्तों और आदर्शों का निरूपण हुआ है वे समूचे संविधान में विद्यमान है। डॉ. सुभाष कश्यप के अनुसार – ''प्रस्तावना आधुनिक युग की तीन महान् क्रान्तियों से प्रभावित है – फ्रांसीसी, अमेरिकी और रूसी। फ्रांसीसी क्रान्ति में स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व पर बल दिया गया था, अमेरिकी क्रांति में राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा व्यक्ति–स्वातन्त्र्य पर और रूसी क्रांति में आर्थिक समानता पर। भारतीय क्रांति के सूत्रधारों ने आरम्भ से ही इन तीनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया।''

संविधान की जो मूल प्रस्तावना थी उसमें 42वें सांविधानिक संशोधन द्वारा कुछ शब्द और भाव जोड़े गए। संशोधित प्रस्तावना (जिसमें समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष तथा अखण्डता – ये नए शब्द जोड़े गए हैं) इस प्रकार –

''हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सबमें व्यक्त की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धता बढाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 (मिती मार्गशीष शुक्ला सप्तमी, संवत् 2006) को इस एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते है।''

44 वें संविधान संशोधन अधिनियम अधिनियम, 1978 (जिसे 30 अप्रैल, 1979 को राष्ट्रपति ने स्वीकृति प्रदान की) द्वारा प्रस्तावना के अन्तर्गत धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी शब्दों को बनाए रखा है। इस संशोधन के अनुसार 'धर्मनिरपेक्षता' का आशय है – सभी धर्मों के प्रति समान आदर एवं समाजवाद का अर्थ है – सभी प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक शोषण से मुक्ति।

प्रस्तावना का विश्लेषण करने पर ये मुख्य बातें स्पष्ट होती है –

1. प्रभुसत्ता अन्ततः जनता में निहित है। सरकार अथवा राजसत्ता के विभिन्न अंगों को जो भी शक्तियाँ प्राप्त है उनका स्रोत जनता है।
2. हम भारत के लोग पदावली से प्रकट है कि हम भारत के लोग है, राज्यों के नहीं अर्थात् सारे भारत के लोग एक है। संविधान का निर्माण राज्यों या राज्यों के लोगों ने नहीं किया है बल्कि सम्पूर्ण भारत के लोगों ने अपनी सामूहिक क्षमता में किया है।
3. संविधान का भारत की जनता ने निर्मित और अंगीकृत किया है, अतः भारतीय संघ का कोई राज्य या अवयवी एककों का समूह संविधान को समाप्त नहीं कर सकता अथवा संविधान द्वारा निर्मित संघ में सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर सकता।
4. भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य है। भारत में लोकतन्त्र व्यापक दृष्टिकोण से अपनाया गया है जिसमें राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र शामिल है।
5. संविधान न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व और राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।

3.2 संविधान की अन्य विशेषताएं :

स्वतन्त्र भारत के संविधान की अन्य प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है –

3.2.1. लिखित और विश्व का सबसे बड़ा संविधान :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भारत का संविधान पूर्ण रूप से लिखित और विश्व के संविधानों में सबसे ज्यादा विस्तृत है। 44वें संशोधन के पश्चात् संविधान में अब कुल 404 अनुच्छेद हो गए है जो 24 भागों में विभक्त है और इसमें साथ ही नौ अनुसूचियां भी है। मूल संविधान में कूल 395 अनुच्छेद थे जो 22 भागों में विभाजित थे।

भारतीय संविधान की इस व्यापकता के कुछ मुख्य कारण ये है –

(1) शासन सम्बन्धी सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

(2) केन्द्रीय सरकार के साथ ही राज्य सरकारों के ढांचे का भी वर्णन है।

(3) केन्द्र और राज्यों के बीच के जटिल सम्बन्धों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

(4) संघ और राज्य–सूची के साथ ही समवर्ती सूची भी सम्मिलित है, एवं

(5) मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त राज्य के नीति निर्देशक तत्व भी विस्तार से उल्लिखित है।

3.2.2. इकहरी नागरिकता :

सारे भारत में केवल एक नागरिकता भारतीय नागरिकता है।प्रत्येक भारतीय सम्पूर्ण देश का नागरिक है, पृथक से किसी राज्य का नहीं। संयुक्तराज्य अमेरिका जैसे संघात्मक संविधानों में नागरिकों को दोहरी नागरिकता प्राप्त है, अपने राज्य की और संघ की। लेकिन भारत में एक ही नागरिका प्रदान कर देश के लिए समान शासन–व्यवस्था निरूपण किया गया है। नागरिकता का विनिमय करने का अधिकार संघीय संसद को है, राज्यों का उसमें कोई हाथ नहीं है।

3.2.3. समाजवादी राज्य :

संविधान सभा में इस प्रश्न पर बड़ा वाद–विवाद हुआ था कि भारत समाजवाद को राज्य दर्शन के रूप में स्वीकार करे या नहीं। अन्त में यही विचार मान्य हुआ कि किसी एक विशेष दर्शन को स्वीकार करने से नवीन विवादों को बल मिलेगा। फिर भी इस बात के लिए आम सहमति थी कि भारत के लिए समाजवाद का मार्ग ही उपयुक्त हो सकता है। इसी सामान्य भावना को आधार मानकर 42वें सांविधानिक संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में भारत को समाजवादी राज्य घोषित किया गया। मार्च, 1977 में जनता पार्टी सत्तारूढ़ हुई जिसने 44 वें सांविधानिक संशोधन द्वारा 42वें संशोधन की अनेक असंगतियों और अवांछितबातों को दूर किया। लेकिन प्रस्तावना में समाजवादी शब्द को रहने दिया गया। 44वें संशोधन अधिनियम में समाजवाद का अर्थ बतलाया है – सभी प्रकार के सामाजिक, राजनितिक तथा आर्थिक शोषण से मुक्ति।

उल्लेखनीय है कि प्रस्तावना में भारत को समाजवादी राज्य घोषित करने से भारत किसी विशेष दर्शन से बंधा नहीं है। द्वितीय, समाजवाद शब्द स्वयं में बहुत अधिक अस्पष्ट और साथ ही बहुत अधिक व्यापक है। भारतीय राजनीतिक नेतृत्व अनेक बार यह स्पष्ट कर चुका है कि देश अपनी विशेष परिस्थितियों के अनुकुल समाजवाद को अपनाएगा और भारतीय समाजवाद अन्य अधिक परिचित समाजवादों से भिन्न होगा।

3.2.4. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना :

संविधान भारत को पूर्ण रूप से प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य घोषित करता है जिस पर कानूनी दृष्टि से किसी आन्तरिक अथवा बाह्य शक्ति का प्रतिबन्ध नहीं है। यद्यपि संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण किया गया है, तथापि यंहा विभाजित प्रभुता के सिद्धान्त के लिए कोई स्थान नहीं है। सामान्य काल में शक्तियों का वितरण कायम रखने की व्यवस्था है, लेकिन आपात्काल में और कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में संघीय सरकार राष्ट्रहित में राज्यों की शक्तियों का अतिक्रमण कर सकती है।

राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से भारत की प्रभुसत्ता पर कोई आघात नहीं पहुंचता। राष्ट्रमण्डल प्रभुत्व–सम्पन्न राज्यों का एक ऐच्छिक निकाय है जिसमें रहना या न रहना भारत की इच्छा पर है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भारत लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है, लोकतन्त्र केवल मात्र एक शासन–व्यवस्था ही नहीं हे। भारतीय संविधान में लोकतन्त्र को जीवनयापन की एक सम्पूर्ण व्यवस्था के रूप में जीवन के एक समग्र दर्शन के रूप में अपनाया गया है। संविधान राजनीतिक लोकतन्त्र के साथ–साथ सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र का आधार भी प्रस्तुत करता है।

3.2.5. आत्मा से एकात्मक, स्वरूप से संघात्मक शासन की स्थापना :

भारत का संविधान एकात्मक आत्मा वाला संघीय संविधान है। संविधान भारत में एक संघ की स्थापना करता है। इसमें संघात्मक संविधान की सभी विशेषताएं निहित है, यथा – (1) लिखित विधान, (2) राज्यों तथा केन्द्र के बीच विवादों का निर्णय करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय, (3) सम्यक् नागरिकता, (4) केन्द्र और राज्यों की शक्तियों का स्पष्ट वितरण, किन्तु इसके साथ ही भारतीय संविधान में कुछ विशेषताएं ऐसी है जो एकात्मकता सिद्ध करती है यथा – (क) संघ किसी भी दशा में भंग नहीं किया जा सकता और न कोई संवर्ग ही अपना पृथक् संविधान बना सकती है, (ख) संकटकाल में यह एकात्मक संविधान की भांति कार्य करता है, तथा (ग) हमारे संघ का निर्माण अन्य देशों के विपरीत एकात्मक राज्य से हुआ है।

3.2.6. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार :

जहां विश्व के अनेक समुन्नत और समृद्ध लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रों में स्त्रियों को मतदान का अधिकार काफी संघर्ष के बाद प्राप्त हुआ, वहां भारत के संविधान ने देश के प्रत्येक वयस्क नर–नारी को एकदम एक साथ मताधिकार प्रदान कर देश में एक नई सामाजिक क्रांति का आरम्भ किया है।

3.2.7. संसदीय सरकार की स्थापना :

सविधान ने अमेरिका की अध्यक्षात्मक प्रणाली के स्थान पर ब्रिटिश परम्परा के अनुसार भारत में संसदीय प्रणाली की स्थापना की है। भारत सरकार की वास्तविक कार्यकारी शक्तियां मंत्रिमण्डल में निहित है, जो संसद के प्रति उत्तरदायी है। लोकसभा अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मंत्रीमण्डल को कभी भी पदच्युत कर सकती है, पर भारत की संसदीय प्रणाली में, ब्रिटिश सम्राट् के समान, भारत के राष्ट्रपति के आदेशों पर मन्त्रियों के हस्ताक्षर आवश्यक नहीं है। इसी तरह भारत का राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन को अथवा दोनों सदनों को कोई सन्देश भेज सकता है और साधारण विधेयकों पर अस्थायी 'वीटो' का प्रयोग भी कर सकता है। साथ ही राष्ट्रपति के पद में स्थायित्व लाकर संविधान–निर्माताओं ने भारत के सांविधानिक अध्यक्ष के लिए अमेरिका को आदर्श माना है इस प्रकार भारतीय संविधान में शासन–प्रणाली प्रधानतः संसदीय होते हुए भी उसमें अध्यक्षीय शासन–प्रणाली के तत्व सन्निहित है।

3.2.8. मौलिक अधिकार :

संविधान में नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किए गए है। इन मौलिक अधिकारों का आधार श्रेष्ठतम लोकतंत्र की भावना है। नागरिकों को समता और स्वतन्त्रता का अधिकार, शोषण के विरूद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, सांस्कृतिक एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार, सांविधानक उपचारों का अधिकार आदि प्रदान किए गए है। देश के प्रत्येक 21 वर्ष के नर–नारी को बिना किसी भेद–भाव के मतदान का अधिकार है। संविधान में साम्प्रदायिक निर्वाचनों का अन्त कर संयुक्त निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था की गई है जिससे भारत की एकता अक्षुण्ण रही है। छुआछूत को समाप्त कर दिया गया है और बेगार को कानून द्वारा बन्द कर दिया गया है।

3.2.9. अलपसंख्यकों के हितों की रक्षा :

संविधान में अल्पसंख्यकों के हितों का विशेष ध्यान रखा गया है। अनुसूचित जातियो के लिए विधान सभाओं में स्थान सुरक्षित रखे गए है। सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए इन्हें कतिपय विशेष सुविधाएं प्रदान की गई है। इनमें शिक्षा का प्रसार तथा इनके आर्थिक स्तर को उन्नत करने के लिए संविधान में विशेष रूप से व्यवस्था है। संविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजाति क्षेत्रों के नागरिकों को सेवाओं, विधान सभाओं और अन्य क्षेत्रों में सरक्षण प्रारम्भ में 1960 ई. तक के लिए दिया गया था किन्तु 23वें संशोधन द्वारा इसे जनवरी, 1980 तक बढ़ाया गया। 14 जनवरी, 1980 को श्रीमती गांधी पुनः प्रधानमंत्री बनीं और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नवनिर्मित सातवीं लोकसभा ने 24 जनवरी, 1980 को 45वां संविधान संशोधन विधेयक पारित कर हरिजनों, आदिवासियों और एंग्लो इण्डियनों के लिए लोक सभाओ में दस वर्ष और आरक्षण बढ़ा दिया।

3.2.10. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्त :

संविधान में राज्य की नीति के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सिद्धान्तों का उल्लेख है। इन्हें राज्य–नीति के निर्देशक सिद्धान्त कहा गया है जिसका आशय यह है कि, ''जनता राज्य से अपेक्षा करती है कि वह नीति–निर्माण करते समय इन सिद्धान्तों का अवश्य ध्यान में रखे।'' आयरलैण्ड के संविधान के अतिरिक्त अन्य किसी भी देश के संविधान में ऐसे तत्वों या सिद्धान्तों का प्रावधान नहीं है। ये सिद्धान्त भारत में लोक–कल्याणकारी राज्य की स्थापना में सहायक है। यद्यपि इन तत्वों के पीछे न्यायालय की शक्ति नहीं है, अर्थात् इनका पालन कराने के लिए नागरिक न्यायालय की शरण नहीं ले सकता, फिर भी संविधान का यह आदेश है कि ''वे देश के शासन के मूलभूत आधार होंगे और उनका पालन करना राज्यों का नैतिक कर्तव्य होगा।'' कतिपय प्रमुख नीति–निर्देशक सिद्धान्त ये है –

1. समान कार्य के लिए समान वेतन,
2. सभी नागरिकों को जीवन निर्वाह के साधनों का समान अधिकार
3. स्वास्थ्य संचरण और शोषण से सुरक्षा
4. अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का प्रयास और कलात्मक तथा ऐतिहासिक वस्तुओं की सुरक्षा
5. ग्राम पंचायतों की स्थापना और स्वशासन की क्रियाशील इकाइयों के रूप में उनका विकास
6. न्यायपालिका और कार्यपालिका का पृथक्करण, तथा
7. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की वृद्धि का प्रयत्न, आदि।

3.2.11. स्वतन्त्र एवं सर्वोच्च न्यायपालिका :

दुर्गादास वसु के शब्दों में – ''भारतीय संविधान में विचित्र ढंग से अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की सर्वोच्चता के सिद्धान्त और ब्रिटिश संसदयी सर्वोच्चता के सिद्धान्त के बीच का मार्ग ग्रहण किया गया है।'' अमेरिका की भांति भारत में स्वतंत्र और सर्वोच्च न्यायपालिका की व्यवस्था है जिसे न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त है। वह केन्द्र तथा राज्यों के पारस्परिक विवादों का निर्णय करता है। न्यायाधीशो की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा की जाती है, लेकिन उनका अपदस्थ करने की शक्ति कार्यपालिका में निहित नही है। उन्हे केवल महाभियोग द्वारा ही अपदस्थ किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय को विस्तृत शक्तियां प्रदान की गई है और कार्यों को निष्पक्षता से पूर्ण करने के लिए न्यायाधीशों की स्वतंत्रता के लिए संविधान मे आवश्यक उपबंधों का प्रावधन है।

3.2.12. धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना :

संविधान का धार्मिक स्वतंत्रता सम्बन्धी उपबंध, धर्म निरपेक्ष अथवा असाम्प्रदायिक राज्य की आधारशिला है। धर्म–निरपेक्ष राज्य अधार्मिक या धर्म–विरोधी नहीं होता, अपितु केवल विभिन्न धर्मो के संदर्भ में पूर्ण तटस्थ रहता है। किसी धर्म–विशेष से उसका लगाव नहीं होता। भारतीय संविधान के अनुसर राज्य के अन्तर्गत धर्म को नितान्त वैयक्तिक मामला समझा गया है, उसे राजनीति पर हावी नहीं होने दिया है।

3.2.13. संविधान कुछ लचीला और कुछ कठोर :

भारतीय संविधान लचीलेपन और कठोरता का सुन्दर सम्मिश्रण है। यह न तो इतना कठोर है जितना अमेरिका का संविधान और न इतना लचीला है जितना इंग्लैण्ड का संविधान। भारतीय संविधान के सभी अनुच्छेदों के संशोधन की प्रणाली एक–सी नहीं है। संशोधन की दृष्टि से संविधान के अनुच्छेदों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है –

प्रथम श्रेणी में कुछ ऐसे अनुच्छेद है जिसमें संसद साधारण बहुमत से ही संशोधन कर सकती है। नए राज्यों का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निर्माण, राज्यों का पुनर्गठन, नागरिकता सम्बन्धी कानून आदि विषय इसी श्रेणी में आते है।

द्वितीय श्रेणी में कुछ ऐसे अनुच्छेद सम्मिलित है जिनमें संशोधन के लिए संसद के दोनों संदनों द्वारा अपने कुल सदस्यों के बहुमत से और उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित होना आवश्यक है। संविधान के अधिकांश अनुच्छेद इसी श्रेणी में आते है।

तृतीय श्रेणी में वे अनुच्छेद आते है जिनका सम्बन्ध भारत में संघीय शासन की स्थापना से है। इनमें संशोधन के लिए संसद् के सभी सदस्यों के साधारण बहुमत और उपस्थित मत देने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत के अतिरिक्त कम से कम आधे राज्यों के विधान–मण्डलों का अनुसमर्थन भी आवश्यक है। संशोधन की यह प्रणाली कठोर है।

3.2.14 संविधान पर व्यापक विदेशी प्रभाव :

हमारे संविधान पर विदेशी प्रभाव बहुत अधिक है। संविधान का निर्माण करते समय संविधान–निर्माताओं ने संसार के सभी श्रेष्ठ संविधानों से सहायता ली और उन्हे अपने देश की विशेष आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुसार ढालने का प्रयत्न किया। हमारे नवीन संविधान का एक प्रमुख स्रोत 1935 का भारत सरकार अधिनियम है। संविधान के आकार, उसकी विषय–सूची और उसकी भाषा आदि पर इस अधिनियम की गहरी छाप दृष्टिगोचर होती है। ब्रिटेन, अमेरिका, कनाड़ा, ऑस्ट्रेलिया, स्विट्जरलैण्ड, आयरलैण्ड एवं दक्षिणी अफ्रीका के संविधानो का हमारे संविधान पर स्पष्ट प्रभाव है। संविधान के सम्पूर्ण संसद स्वरूप और उसकी क्रियान्विति के नियमों को ब्रिटिश संविधान तथा उसकी परम्पराओं से लिया गया है। संविधान की रक्षा, संविधान की संशोधन प्रक्रिया आदि पर अमेरिकी संविधान की छाप है। राज्य के नीति–निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वचक मण्डल का प्रावधान आदि व्यवस्थाओ पर आयरलैण्ड के संविधान का प्रभाव है। कनाड़ा के संविधान के आदर्श पर ही भारतीय संघ को भी 'यूनियन' नाम दिया गया है और कनाड़ा की तरह यहां भी अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को प्रदान की गई है। केन्द्र और राज्य के पारस्परिक विवादों को निपटाने की प्रणाली बहुत कुछ ऑस्ट्रेलिया के संविधान से ली गई है। भारत के राष्ट्रपति को संकटकालीन अवस्था में संविधान स्थगित करने की जो शक्तियां दी गई है वे जर्मनी के वाइमर संविधान के समान है। लेकिन इन प्रभावों का यह आशय नहीं है कि हमने दूसरे संविधानों की नकल की है। हमारे संविधान में केवल अन्य संविधानों की अच्छी बातों को ग्रहण कर उन्हें अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला गया है। ऐसा करने में हमारी अपनी मौलिकता रही है, विदेशी संविधान की अन्धे होकर नकल नहीं की गई हे। सही अर्थों में भारतीय संविधान एक आदर्श और विशिष्ट संविधान है।

3.2.15. नागरिकों के मूल कर्तव्य :

संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा संविधान में एक नया भाग–4क जोड़ा गया है जिसमें नागरिकों के दस मूल कर्तव्यों का उल्लेख है। मूल संविधान में नागरिकों के केवल मौलिक अधिकारों का ही उल्लेख किया गया था, उनके कर्तव्यों के बारे में कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं थे। इस संशोधन के बाद,, संविधान के अधीन अब भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि –

1. ''वह संविधान का पालन करे तथा राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करे।
2. स्वतन्त्रता आन्दोलन के आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उसका पालन करे।
3. भारत की प्रभुता, एकता व अखण्डता की रक्षा करे।
4. आह्वान करने पर सेना में भर्ती होकर देश की रक्षा में याद दे।
5. भारत के सभी लोगों में समरूपता और भ्रातृभाव का निर्माण करे।
6. नारी विरोधी प्रथाओं का त्याग करे।
7. भारत की संस्कृति का परिक्षण करे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और संवर्द्धन तथा प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखे।

9. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद, ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।

10.सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करे और व्यक्तिगत तथा सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष के लिए प्रयास करे।''

3.2.16. सामाजिक समानता की स्थापना :

सामान्यता: संविधानों में नागरिकों की राजनीतिक और कानूनी समानता पर ही बल दिया जाता है। सामाजिक समानता पर नहीं किन्तु भारतीय संविधान में एक मुख्य विशेषता यह है कि इसमें सामाजिक क्षेत्र में भी नागरिकों की समानता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। अनुच्छेद 17 में कहा गया है – ''अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। किसी भी रूप में अस्पृश्यता का आचरण कानून के अनुसार दण्डनीय होगा।'' सामाजिक समानता की स्थापना के लिए ही दलित वर्गों की गिरी हुई स्थिति में सुधार लाने के लिए संविधान में व्यवस्थाएं की गई है।

3.2.17. एक राष्ट्रभाषा की व्यवस्था :

संविधान–निर्माता राष्ट्रीय एकता के प्रति जागरूक थे अत: उन्होंने हिन्दी को देवनागरी लिपिक में भारत की राष्ट्रभाषा घोषित किया। किन्तु व्यावहारिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद तक संघीय सरकार के कार्यालयों में अंग्रेजी के प्रयोग की अनुमति भी प्रदान की। 1965 ई. में 'सहभाषा विधेयक' पारित कर हिन्दी के साथ अंग्रेजी को जारी रखने की अनुमति दी गई।

उल्लेखनीय है कि एक राष्ट्रभाषा का प्रावधान क्षेत्रीय भाषाओं की प्रगति में बाधक नहीं है संविधान में भारतीय भाषाओं को विभिन्न राज्यों में प्रादेशिक भाषा के रूप में प्रयोग के लिए स्वीकार किया गया है।

3.2.18. विश्व शांति का समर्थक :

भारत के परम्परागत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श के अनुपालन में संविधान में नीति निर्देशक तत्वों में विश्व शान्ति का समर्थन किया गया है। यह उल्लेख है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का तथा राष्ट्रों के बीच न्याय एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने का प्रयत्न करेगा। भारत की शान्ति, सहअस्तित्व और गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति संविधान निर्माताओं की इच्छा के अनुरूप है।

संक्षेप में, 1950 का भारत का संविधान एक ऐसा आदर्श प्रलेख है जिसमें सिद्धान्त और व्यावहारिकता का श्रेष्ठ समन्वय किया गया है।

3.3 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – भारत का संविधान कब पूरा हुआ?

(अ) 26 अक्टूबर, 1949 (ब) 26 नवम्बर, 1949

(स) 26 जनवरी, 1949 (द) 26 अप्रैल, 1949

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – भारतीय संविधान की प्रस्तावना बताइयें ? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं बताइयें।

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 4

भारतीय राज्यों का एकीकरण और 1956 ई. में उनका पुनर्गठन

4.0 भूमिका
4.1 रजवाड़े का विलय
4.2 जूनागढ
4.3 हैदराबाद
4.4 कश्मीर
4.5 राज्यों का पुनर्गठन
4.6 जे.वी.पी. प्रतिवेदन
4.7 बोध प्रश्न

4.0 भूमिका :

भारत में अंग्रेजों को सत्ता अक्समात् ही नहीं मिली अपितु उन्हे संघर्ष के लम्बे दौर से गुजरना पड़ा। यह सत्य है कि साम्राज्यवादी शक्ति ने योजनाबद्ध तरीके से भारतीय शासकों को धीरे–धीरे अलग–थलग करके उनकी सत्ता पर कब्जा किया था।। भारतीय प्रदेश जैसे–जैसे नियंत्रण में आये वैसे–वैसे प्रान्तों का विनिर्माण हुआ। दूसरे शब्दों में प्रान्तों के निर्माण में किसी सिद्धान्त अथवा पद्धति को नहीं अपना गया अपितु विजित प्रदेशों की सरंचना, सुरक्षा सुविधा एवं राजनीतिक आवश्कता के आध ाार पर की गई। इस इकाई का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है जिन प्रदेशों पर अंग्रेजों का सीधा नियंत्रण नहीं था उन राजें की विल योजना पर चर्चा। सर्वप्रथम पहले गोलमेज सम्मेलन में भारती राज्यो की समस्या को उठाया गया। किन्तु 1946 में केबिनेट मिशन द्वारा पेरामाउंटसी की समाप्ति की घोषणा ने, रजवाड़ों की समस्या को अधिक जटिल बना दिया पूर्व में औपनिवेशिक सत्ता रजवाड़ों को यह आश्वासन देती रही थी कि पारस्परिक सम्बन्धों की ऐतिहासिक प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए उनकी सहमति बिना किसी नवीन सरकार जो भारतीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी हो, के अधीन नहीं किया जायेगा। यह बात 3 जून, 1947 की घोषणा से भी स्पष्ट हुई कि भारत के विभाजन के सम्बन्ध में उनके प्रस्ताव केवल ब्रिटिश शासित प्रदेशों पर ही प्रभावी होंगे। इस घोषणा के आधार पर रजवाड़े अपनी स्वतन्त्र सत्ता की कल्पना करने लगे। भारतीय राज्यों के पुनर्गठन से पूर्व रजवाड़ों के विलय की चर्चा अपेक्षित है, क्योंकि पहली चर्चा दूसरी की परस्पर पूरक है।

4.1 रजवाड़े का विलय :

आजादी से पूर्व भारत में 562 रियासमों का क्षेत्रफल भारत के क्षेत्रफल का 2/5 था तथा 1/4 जनसंख्या इन राज्यो की नागरिक थी। जनसंख्या, क्षेत्रफल एवं वित्तीय संसाधनो को दृष्टि से विश्लेषण किया जाये तो यही कहा जायेगा कि परस्पर इनमें बड़ी विषमताएं थी, 20 राज्यो में कुल राज्यों की जनसंख्या का 2/3 भाग और शेष 542 राज्यों में 1/3 आबादी रहती थी। जैसा कि आप जानते है कि 1856 ई. के पश्चात् इन राज्यों के क्राउन के साथ सम्बन्ध को पेरामाउंटसी से सम्बोधित किया जाता था। कैबिनेट मिशन ने भारतीय राज्यों को भी संविधान सभा में उसी आधार पर प्रतिनिधित्व देने का प्रस्ताव रखा जिस प्रकार प्रान्तो का था अर्थात् 10 लाख जनसंख्या के आधार पर 1 प्रतिनिधि किन्तु कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन योजना की इस बात के लिये आलोचना की कि इसमे रजवाड़ों से चुने हुए प्रतिनिधि भेजे जाने का प्रावधान नहीं किया थां 3 जून, 1947 की माउंटबेटन योजना की घोषणा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के बाद राज्यों के प्रति एक निश्चित नीति का निर्धारण आवश्यक हो गया। माउंटबेटन राजाओ को इतिहास की एक अनावश्यकता मानते थे, इसी दृष्टिकोण से उनहोंने 25 जुलाई, 1947 को 75 बड़े राजाओ की मीटिंग आयोजित की। उस दिन की कार्यवाही को लियोनोर्ड मोस्ले ने रखांकित किया है, ''माउंटबेटन की चतुराई, आकर्षण तथा समझाने बुझाने की पराकाष्ठा की कला की संभवतः शानदार मिसाल थी। बीकानेर के महाराजा जो माउंटबेटन के मित्र थे से कहा ''यदि वे अधिराज्य में सम्मिलित हो जाते है तो उन्हें इंग्लैण्ड के राजा की प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती है, क्योंकि ये अधिराज्य ब्रिटिश कामनवेल्थ के भाग रहेंगे, उसने बीकानेर महाराज से पूछा कि, वह पहला राज्य नहीं होना चाहेगा जो इस पर हस्ताक्षर करे।'' महाराजा ने माउंटबेटन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और इस तरह राज्यों के विलय को महान् योजना शुरू हुई। इस शृंखला में बड़ौदा दूसरे सोपान पर था, हस्ताक्षर करने के बाद बड़ौदा राजा वी.पी. मेनन के गले मे हाथ डाल कर रोने लगा। एक शासक के हस्ताक्षर करने के बाद दिल का दौरा पड़ गया। माउंटबेटन की चतुराई, मेनन की कूटनीतिज्ञता और सरदार पटेल के दृढ़ निश्चय के फलस्वरूप 565 मे से 562 ने 15 अगस्त से पूर्व अधिराज्य मे सम्मिलित होने के पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। अन्तरिम सरकार मे देशी राज्यों के चिलय योजना को मूर्तरूप वल्लभ भाई पटैल की अध्यक्षता में स्थापित पृथक रियासती विभाग ने किया। वी.पी. मेनन को इस विभाग ने सचिव बनाया था। तीन राज्य जिन्होंने इस योजना को स्वीकार नहीं किया, उसमें जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर थे। इन राज्यों का भारत में शामिल किये जाने के लिए भारत सरकार को अलग उपाय करने पड़े।

4.2 जूनागढ़ :

काठियावाड़ में स्थित जूनागढ़ एक छोटा–सा राज्य, जिसकी तीन–चौथाई आबादी हिन्दू और शासक मुसलमान था। पड़ौसी बड़ौदा और भावनगर पूर्व में ही भारतीय संघ में शामिल हो चुके थे। जूनागढ़ नवाब की रंगीन तबियत का व्यक्ति था जिसके कई पत्नियां थीं लगभग 240 मील समुद्री मार्ग द्वारा जूनागढ़ का पाकिस्तान से सम्पर्क संभव था। 15 अगस्त को नवाब ने पाकिस्तान में मिलने की घोषणा की, इस निर्णय की पृष्ठभूमि में नवाब के दीवान शाह नवाज खां की पाकिस्तान से सांठ–गाठ थी। नवाब को पाकिस्तान से मिलने की घोषणा से भारत सरकार के समक्ष असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो गयी। एक और बहुसंख्यक हिन्दू जनता, सोमनाथ जैसे महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल एवं भातीय संघ की प्राकृतिक सीमा में पाकिस्तानी राज्य का अस्तित्व जैसे कई सवालों को लेकर स्थानीय जनता विलासी अकर्मण्य एवं अत्याचारी नवाब के विरूद उठ खडी हुई। स्थानीय लोगों को नेतृत्व सामलदास गांधी ने प्रदान कियां आज लोगों के इस विद्रोह ने जार पकड़ा तथा भारत सरकार से विद्रोहियों ने सहयोग की मांग की, इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय सेना ने कमान संभाली।

इस अवसर पर पाकिस्तान में शामिल होने की घोषणा कर चुके मानवदर का मामला उठा, जिसका क्षेत्रफल केवल 100 मील था, उसके तीन और जूनागढ़ तथा उत्तर में गोडल राज्य था। इसी तरह 21 गांवों तक विस्तृत मांग्रोल का शेख जूनागढ़ के अधीन था। पोरबन्दर एवं जूनागढ़ के बीच स्थित मांग्रोल भी भारत के लिए महत्त्व का कारण था। स्थानीय शेख भारत में शामिल होने को सहमत थे लेकिन जूनागढ़ नवाब इसके लिये सहमत नहीं हुआ, अतः शेख नेभारत में शामिल होने से इन्कार कर दियां इन इलाकों में पाकिस्तानी लोग हिन्दू प्रजा को त्रस्त कररहे थे। ऐसे अवसर पर विद्रोही संगठन एवं भारतीय सेना का प्रयास कारगर साबित हुआ।

नवाब अपनी चार पत्नियों एवं खतरनाक कुत्तों के साथ कीमती सामान लेकर निजी हवाई जहाज से पाकिस्तान भाग गया। जूनागढ़ दीवान ने जिन्ना को 7 नवम्बर, 1947 को सूचित किया कि पाकिस्तान से अपर्याप्त सहायता के कारणवह काठियावाड़ जनमोर्चे का मुकाबला करने में असमर्थ है। तद्न्तर उसने भारत सरकार को अवगत करवाया कि वह जूनागढ़ पर आधिपत्य स्थापित करे और इसके बाद दीवान भी पाकिस्तान कूच कर गया। इस तरह जूनागढ़ का भारतीय संघ में विलय संभव हुआ।

4.3 हैदराबाद :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निजाम हैदराबाद को पूरी तरह स्वतंत्र रखने को उत्सुक था। उसकी राजा के दैवीय अधिकार में आस्था थी और अधिकाधिक सोना एवं जवाहरात एकत्र करने में रूचि। कहा जाता है कि उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति 300 करोड़ की थी। हैदराबाद की 85 प्रतिशत जनता हिन्दू थी, इन परिस्थितियों में स्वतंत्र रहने की विचारधारा को माउंटबेटन ने प्रोत्साहित नहीं किया। किन्तु 3 जून, 1947 की घोषणा के प्रत्युत्तर में निजाम ने 15 अगस्त, 1947 को हैदराबाद को भारत एवं पाकिस्तान में शामिल न करते हुए सर्वसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र राज्य बनाये रखने की घोषणा की। दूसरी ओर भारतीय अधिराज्य में शामिल होने की शर्त पर माउंटबेटन ने निजाम के लिये कुछ विशेष सुविधाएं प्रस्तावित की, इस विषय में पटेल की भी सहमति थी। निजाम ने माउण्टबेटन द्वारा प्रस्तावित योजना को अस्वीकार कर दिया।

इस दौरान 'इतिहादुल मुसलिम' नामक एक साम्प्रदायिक संगठन ने कासिम रिजवी की अध्यक्षता में हैदराबाद में एक आन्दोलन शुरू किया। उक्त संस्था से सम्बद्ध सैनिक रजाकारों ने हिन्दुओं मेंआतंक फैलाया। देश के अन्य भागों में से लोगों ने रजाकारों के अत्याचारों को रोकने के लिए भारत सरकार से प्रभावी कार्यवाही करने की अपील की। माउण्टबेटन के भारत से लौट जाने के बाद निजाम ने उक्त योजना को स्वीकारकरने की सहमति व्यक्त की, जिसे उसने ठुकरा दिया था। लेकिन निजाम की अपील को अस्वीकार करते हुए केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की रक्षा समिति से अनुमति प्राप्त कर पटेल ने मेजर जनरल जे. एन. चौधरी की अध्यक्षता में भारतीय सेनाओं ने हैदराबाद में प्रवेश की आज्ञा दी। 13 सितम्बर को सैनिक अभियान की शुरूआत हुई अधिक प्रतिरोध के अभाव में जनरल चौधरी ने 18 सितम्बर को हैदराबाद पर कब्जा कर लिया। सितम्बर, 1949 तक हैदराबाद में सैनिक शासन रहा। 1952 में हुए सार्वजनिक चुनावों में रामकृष्ण राव की अध्यक्षता में कांग्रेस मंत्रिमण्डल बना और निजाम को सरकार का वैधानिक राजप्रमुख घोषित किया।

4.4 कश्मीर :

मुस्लिम बहुल आबादी वाले कश्मीर प्रदेश पर राजा हरिसिंह का शासन था। राजा ने भारत औरपाकिस्तान दोनों से अलग रहने की घोषणा की। मामले की गंभीरता को समझते हुए स्वयं माउण्टबेटन कश्मीर गये। जवाहर लाला नेहरू एवं महाराजा के परस्पर सम्बन्ध ठी न थे और उन्होंने अपने को इस समस्या से कुछ समय के लिए अलग रखा। माउण्टबेटन ने राजा को भारत या पाकिस्तान में से किसी एक में शामिल होने की सलाह दी। राजा एवं प्रधानमंत्री पण्डित काक अपने दुराग्रह पर अड़े रहे एवं भारत तथा पाकिस्तानको आमन्त्रित कर यथास्थिति संधि का प्रस्ताव रखा। पाकिस्तानने सन्धि स्वीकार कर ली, भारत ने संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये। पाकिस्तान ने अब कश्मीर पर दबाव डालना शुरू किया। राजा की अनिर्णयात्मक स्थिति में पाकिस्तान ने कबीलों को आक्रमण करने के लिए उत्तेजित किया। 22 अकटूबर, 1947 को कबाइलियों के आक्रमण से राजा घबरा गया। उरी एवं बारामूला को कबाइलियों ने अपने कब्जे में ले लिये। इसाई मिशनरियों से जुड़ कई लोग मार डाले गये तथा आगजनी एवं लूटपाट का दौर शुरू हुआ। अन्ततः राजा ने भारत में अपने राज्य के विलय का अनुरोध किया तथा आक्रमणकारियों का मुकाबला करन हेतु भारत सरकार से सहायता चाही गई। 26 अकटूबर को कश्मीर शासक ने भारतीय संघ में शामिल होने के पत्र पर हस्ताक्षर किये। नेशनल कान्फ्रेंस जो सबसे बड़ा राजनीतिक दल था, के नेता शेख अब्दुल्ला ने भी इस अधिमिलन पर सहमति व्यक्त की। कश्मीर शासक के अनुरोध पर भारत सरकार ने 27 अक्टूबरको हवाई मार्ग से सैनिक सहायता मुहैया करवाई। भारत सरकार ने पाकिस्तान को कबाइलियों पर नियंत्रण स्थापित करने का भी अनुरोध किया। पाकिस्तान से प्रत्युत्तर न मिलने पर भारत ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् से हस्तक्षेप करने को कहा। संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में 1 जनवरी, 1949 को दोनों पक्ष युद्ध विराम के लिए सहमत हुए। वी.आर. कुलकर्णी ने जिक्र किया है कि 'निव स्टेटसमैन और नेशन ने 20 फरवरी, 1948 के अंक में लिखा कि इसमें सन्देह नहीं कि यदि भारत ने पिछले अक्टूबर में हस्तक्षेप ने किया होता तो श्रीनगर और सुन्दर कश्मीर घाटी बर्बाद हो जाते और खंडहरवत् दिखाई देते। अन्तिम निर्णय जनमत संग्रह द्वारा किया जाना निश्चित हुआ लेकिन आक्रमणकारियों ने अपने कब्जे वाला क्षेत्र खाली नहीं किया। मताधिकार का प्रयोग सम्पूर्ण क्षे. के लिये ही प्रभावी होना था क्षेत्र विशेष के लिए नहीं। पाकिस्तान यह भी स्वीकार किया कि कबाइलियों को उसका समर्थन प्राप्त था और उनके द्वारा अधिकृत क्षेत्र खाली करने से इनकार कर दिया गया। इस तरह काफी समय तक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनिर्णयात्मक स्थिति बनी रही। अन्ततः 26 जनवरी, 1948 को अन्तिम रूप से भारत सरकार ने कश्मीर विलय की घोषणा की। इस प्रकार कश्मीर भारत का अंग बना।

समस्त रजवाड़ों को भारतीय संघ में शामिल किये जाने के बाद पटेल ने राजाओं को चेतावनी दी कि देश में अशांति एवं अव्यवस्था फैलाये जाने पर भारत सरकार हस्तक्षेप करेगी। उनहोंने राजाओं की व्यक्तिगत सम्पत्ति एवं अधिकारों को सुरक्षित रखने का आश्वासन दिया। अबुल कलाम आदाज के अनुसार पटेल ने भारतीय राज्यों के विलय के बादपुनर्गठन हेतु दो प्रकार की नीतियां अपनाई। बाह्य विलय की नीति द्वारा छोटे–छोटे राज्यों को लेकर अथवा पड़ोसी प्रान्तों में विलय करके बड़े राज्य का निर्माण किया। साथ ही आन्तरिक सगठन द्वारा इनमें प्रजातंत्रीय प्रणाली की प्रतिस्थापना की गई। यहां उल्लेखनीय है कि विलय योजना में कुछ देशी राजाओं ने आगे बढ़कर सहयोग किया था किन्तु कुछ प्रदेशों का स्थानीय जनता द्वारा संचालित प्रजामण्डल आन्दोलनों के कारण विलय किया जा सका। सुमित सरकार ने विवरण दिया है कि 'दिसम्बर, 1947 में हठी राजाओं द्वारा गठित पूर्व राज्यों का संघ नीलगिकर, धनेकलाल और तलचर जैसी उड़िया रियासमों के सशक्त प्रजामण्डल आन्दोलनों के आगे भहराकर गिर पड़ा। जूनागढ़ को भी इसी श्रेणी में रखना होगा।

4.5 राज्यों का पुनर्गठन :

हमने देखा है कि माउण्टबेटन के सहयोग से शुरू की गई विलय योजना को सरदार पटेल ने पूरा किया। जब एक और सरदार पटेल एवं मेनन विलय द्वारा एकीकृत भारत की आधारशिला तैयार कर रहे थे दूसरी और भारत के विभिन्न भागों में भाषाा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग बुलन्द हुई। विपिनचन्द्र एवं अन्य ने जिक्र किया है – ''यह राष्ट्र की एकता और उसके समेकन का एक महत्वपूर्ण पहलू था। चूंकि अंग्रेजों का भारत विजय करीब सौ वर्ष चलने के बाद ही सम्पन्न हो पाया इसलिये उन्होंने भारतीय प्रदेशों की जो सीमाएं बनाई थी वह अस्वाभाविक और अतार्किक थी। उन्होंने प्रदेशों के निर्धारण में भाषा या सस्कृति की समरूपता का कोई ध्यान नहीं रखा था। इसलिये ज्यादातर राज्य बहुभाषी और बहुसंस्कृति युक्त थे। बीच–बीच में पड़ने वाले देशी रियासत और रजवाड़ों ने प्रादेशिक विभागों को और भी बेमेल बना दिया था। देशी राज्यों के विलय के बाद कांग्रेस सरकार ने स्वतंत्र भारत को चार श्रेणियों में विभक्त किया –

पहली श्रेणी में – असम, बिहार, मध्यप्रदेश, बम्बई, मद्रास, उड़ीसा, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल जैसे भूतपूर्व ब्रिटिश प्रान्त थे।

हैदराबाद, जम्मू कश्मीर मध्यभारत, मैसूर, पटियाला, पूर्वी पंजाब की रियासतों का संघ, राजस्थान, सौराष्ट्र तथा त्रावनकोर–कोचीन को बड़ी देशी रियासतों तथा देशी रज्यों के परस्पर विलय से निर्मित संघ को दूसरी शृंखला में रखना होगा।

तीसरी श्रेणी में अजमेर, भोपाल, कुर्ग, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, कच्छ, विध्यप्रदेश मणिपुर तथा त्रिपुरा को रखा जा सकता है।

अन्तिम शृंखला में अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह शामिल थे।

स्पष्टतः इन चार भागों में विभक्त राज्यों की आबादी, आकार तथा आर्थिक संसाधनों मे काफी अन्तर था एवं इनकी शासन व्यवस्था भी पूरी तरह असमान। उल्लेखनीय है कि राज्यों को चार श्रेणियों में रखे जाने से पूर्व ही भाषा के आधार पर इनके पुनर्गठन की मांग की जाने लगी थी। भाषा को आधार बनाकर आन्ध्र प्रदेश को पृथक् राज्य बनाने की मांग ने उग्र रूप धारण कर लिया। लेकिन आन्दोलन को दबाने की कोशिश का कोई लाभ नहीं हुआ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग को देखकर भारत सरकार ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश एस.के. दर के नेतृत्व में एक आयोग बनाया, जिसने 10 अक्टूबर, 1948 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। दर आयोग के अनुसार प्रशासनिक सुविधाओं के आधार पर रज्यों का पुनर्गठन हो, आयोग ने उस समय भाषा को आधार माने जाने को पूर्णतः अनुचित माना। इससे राष्ट्रीय एकता खतरा तथा प्रशासनिक दृष्टि से भी इस आधार को अनुपयुक्त कहा गया। दर आयोग की सिफारिसों के आधार पर संविधान सभा ने राज्यों के आधार पर संविधान सभा ने राज्यों के पुनर्गठन हेतु भाषा के आधार को खारिज कर दिया। इस निर्णय का दक्षिण में घोर विरोध हुआ। इसने नये आयोग के गठन का मार्ग प्रशस्त किया। दिसम्बर, 1948 में एक नया आयोग बना।

4.6 जे.वी.पी. प्रतिवेदन :

दूसरे आयोग ने जवाहर लाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल, पट्टाभिसीतारमैया को रखा गया। भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन को इस आयोग ने भी स्वीकार नहीं किया, किन्तु यह अवश्य माना कि जनमत भाषागत राज्यों के पक्ष बस्तियों का शासन मुख्य आयुक्त के माध्यम से केन्द्र सरकारद्वारा संचालित किया जाने लगा। 29 दिसम्बर, 1962 को भारत में शामिल कराण्डिचेरी राज्य अस्तित्व में लाया गया। पुर्तगाल ने फ्रांस का अनुगमन नहीं किया। अतः दिसम्बर, 1961 में भारतीय सेनाओं ने गोवा, दमन एवं ड्यू पर कब्जा कर लिया।

बारहवें संशोधन द्वारा गोवा दमन एवं दीव को वैध रूप से भारत में शामिल किया गया और 27 मार्च, 1962 को अनुच्छेद 240 तथा प्रथम अनुसूची का संशोधन किया।

असम के नागा जनजाति ने अगस्त, 1962 में पृथक् नागालैण्ड की मांग को दृष्टिगत रखते हुए तेरहवें संशोधन द्वारा पृथक् राज्य की स्थापना की गई। इस तरह नागालैण्ड भारत का सोलहवां राज्य बना।

हरियाणा की स्थापना – पंजाब के कुछ भागों से नवम्बर, 1966 में की गई। उल्लेखनीय है कि पंजाब के कुछ पहाड़ी क्षेत्र हिमाचल प्रदेश को इसी समय दिये गये थे लेकिन हिमालच के पूर्ण राज्य का दर्जा 1975 में यहां यह उल्लेख करना अपेक्षित है कि 1975 को हिमाचल प्रदेश तथा मेघालय, मणिपुर त्रिपुरा को 1972 में पूर्ण राज्य का दर्जा मिला था। इसी प्रकार 1975 में सिक्किम भारतीय गणराज्य में शामिल किया गया। सिक्किम भारतीय गणराज्य का बाईसवां राज्य बना, चोग्पाल का पद समाप्त कर दिया गया। मई, 1975 को बी.बी. लाल राज्य के पहले राज्यपाल नियुक्त हुए और काजी लन्दुप दोरजी को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई गई। आगे मार्च 1985 एवं 1989 में नर बहादुर भण्डारी सिक्किम के मुख्यमंत्री बने। आगे जाकर झारखण्ड, उत्तरांचल, छत्तीसगढ़ की मांग भी उठाई गई, जिसकी क्रियान्वति कुछ समय पहले हुई है।

नवगठित राज्यों में छत्तीसगढ़ का उल्लेख करना होगा। इक्कीसवीं सदी का यह राज्य भारतीय संघ के 26वीं राज्य के रूप में 1 नवम्बर, 2000 को अस्तित्व में आया। यह राज्यपूर्व में दक्षिणी झारखण्ड और उड़ीसा, पश्चिम में मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी झारखण्ड तथा दक्षिण में आन्ध्र प्रदेश से घिरा हुआ है।

उत्तराचंल की मांग काफी पहले से की जा रही थी, अन्ततः 27 जुलाई 2000 को उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक 2000 लोकसभा में प्रस्तुत हुआ एवं 9 नवम्बर, 2000 को देश के 27वें नवगठित राज्य के रूप में उत्तरांचल का विनिर्माण हुआ। इसकी अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएं उत्तर प्रदेश और दक्षिण में उत्तर प्रदेश स्थित है।

जहां तक झारखण्ड का प्रश्न है 15 नवम्बर, 2000 को संघ के 28वें राज्य के रूप में अस्तित्व में आया। छोटा नागपुर पठार और संथाल परगना इसमें शामिल है। इसके पूर्व में पश्चिम बंगाल, पश्चिम में उत्तर प्रदेश और छत्तीसगढ़, उत्तर में बिहार तथा दक्षिण में उड़ीसा स्थित है। इस क्षेत्र में संथाल, उरांव, हो एवं मुंडा जैसी महत्वपूर्ण जनजातियां निवास करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अन्त में, कहा जा सकता है कि लार्ड माउण्टबेटन, सरदार वल्लभ भाई पटेल एवं वी.पी. मेनन जैसे राजनीतिज्ञों के प्रयासों से भारतीय राज्यों का विलय संभव हुआ और प्रशासनिक सुविधा, भाषागत कारणों एवं एकता तथा अखण्डता को दृष्टिगत रखते हुए प्रान्तों की संरचना की गई। हाल ही में यह विचार उभरकर आया है कि छोटे राज्यों का विकास तेजी से संभव हो पाता है, केरल, हरियाणा, पंजाब जैसे कईराज्य इसके उदाहरण है।

4.7 बोध प्रश्न :

प्रश्न 1 – आजादी के पूर्व भारत में कुल कितनी रियासतें थी ?

(अ) 558 (ब) 560

(स) 564 (द) 562

उत्तर – .....

प्रश्न 2 – भारतीय राज्यों में हैदराबाद के विलीनीकरण पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – .....

प्रश्न 3 – भारतीय राज्यों का विलीनीकरण को सविस्तार से विवेचित किजिए?

उत्तर – .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्नातक (बी.ए.) तृतीय वर्ष

विषय : इतिहास

प्रथम पत्र : आधुनिक भारत का इतिहास

(1740 ई. – 1956 ई.)

संवर्ग

संवर्ग–1	अंग्रेज एवं मराठा संघर्ष
संवर्ग–2	ब्रिटिश सत्ता के बढ़ते चरण
संवर्ग–3	1857 की क्रान्ति एवं परिणाम
संवर्ग–4	मारतीय राष्ट्रीयता
संवर्ग–5	मारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन : पूर्व एवं पश्चात की स्थिति

विशेषज्ञ समिति

1. श्रीमती संतोष व्यास
2. श्रीमती स्वाति चतुर्वेदी
3. डॉ. अरुणा सोनी
4. श्रीमती कंचन भार्गव

लेखक

डॉ अरुणा सोनी

कॉपीराइट
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 200

प्रकाशक :
जैन विश्वभारती संस्थान,
लाडनूँ–341 306 (राजस्थान)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

संवर्ग–1 : अंग्रेज एवं मराठा संघर्ष

इकाई – 1 पानीपत का तृतीय युद्ध : कारण एवं परिणाम 1

इकाई – 2 मराठों का उत्थान : महादजी सिन्धिया एवं नाना फडनवीश के नेतृत्व में 9

इकाई – 3 आंग्ल–मराठा संघर्ष 15

इकाई – 4 मराठों की असफलता के कारण 26

संवर्ग–2 : ब्रिटिश सत्ता के बढ़ते चरण

इकाई – 1 बंगाल में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना 30

इकाई – 2 प्रशासनिक बदलाव एवं नीतियाँ (1772–1793 ई.) 47

इकाई – 3 मैसूर का ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष और उनका ब्रिटिश साम्राज्य में विलीनीकरण 61

इकाई – 4 पंजाब का ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष और उनका ब्रिटिश साम्राज्य में विलीनीकरण 68

इकाई – 5 अवध का ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष और उनका ब्रिटिश साम्राज्य में विलीनीकरण 80

संवर्ग–3 : 1857 की क्रान्ति एवं परिणाम

इकाई – 1 1857 ई. का विद्रोह 85

इकाई – 2 ब्रिटिश सर्वोच्चता का भारतीय रियासतों में विकास 93

इकाई – 3 ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था एवं कृषक वर्ग पर प्रभाव 100

संवर्ग–4 : भारतीय राष्ट्रीयता

इकाई – 1 ब्रिटिश सत्ता की आर्थिक नीतियां एवं उनका प्रभाव 108

इकाई – 2 भारतीय राष्ट्रीयता के उदय के कारण 120

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 3 राष्ट्रीयता के विकास में उदारवाद की भूमिका 124

इकाई – 4 राष्ट्रीयता के विकास में उग्रवाद की भूमिका 129

इकाई – 5 भारत सरकार के अधिनियमों की प्रमुख विशेषता विशेषतः 1909, 1919 और 1935 ई. 132

संवर्ग–5 : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन : पूर्व एवं पश्चात की स्थिति

इकाई – 1 1920–47 तक भारतीय स्वतन्त्रता का संघर्ष 145

इकाई – 2 साम्प्रदायिक राजनीति का विकास तथा भारत का विभाजन 153

इकाई – 3 भारतीय संविधान की विशेषताएँ 159

इकाई – 4 भारतीय राज्यों का एकीकरण और 1956 ई. में उनका पुनर्गठन 166

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun